Sociological Thought

DSOC401

Edited by:
Dr. Sukanya Das

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

समाजशास्त्रीय विचारधारा

SOCIOLOGICAL THOUGHT

Edited By
Dr. Sukanya Das

Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

DLP-7772-095-SOCIOLOGICAL THOUGHT (H) C—4796/012/02
Typeset at : Goswami Associates, Delhi Printed at : Sanjay Printers & Publishers (P) Ltd., Delhi

पाठ्यक्रम
(SYLLABUS)
समाजशास्त्रीय विचारधारा
(Sociological Thought)

उद्देश्य

- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और बौद्धिक संदर्भों में एक विशिष्ट विषय के रूप में उभरे समाजशास्त्र से छात्रों को परिचित कराना।
- समाजशास्त्र में इसके उत्कृष्ट योगदानों से संबंद्ध जानकारी प्राप्त करना तथा उसकी समसामयिक दिलचस्पी बनाये रखने में छात्रों की मदद करना।

Objectives

- To familiarise the students with the social, political, economic and intellectual contexts in which sociology emerged as a distinctive discipline.
- To help students gain an understanding of some of the classical contributions in sociology and their continuing relevance to its contemporary concerns.

Sr. No.	Content
1	The Development of Sociology in the 19th Century
2	Auguste Comte: Intellectual Background, Theory of evolution and progress, The law of three stages, Hierarchy of the sciences, Social statics and social dynamics
3	Karl Marx: Intellectual Background, Materialistic interpretation of history, Emergence of capitalism, theory of capitalist development- Commodities, surplus value, and processes of capitalism
4	Karl Marx: Emergence of classes and class conflict, Alienation in the capitalist society, Marx’s theory of social change
5	Emile Durkheim: Intellectual Background, Contribution to the methodology of Sociology – Sociology as a Science - concept of social facts
6	Emile Durkheim: Division of labour in Society – mechanical solidarity and organic solidarity, Theory of suicide, Theories of Religion
7	Max Weber: Intellectual Background, Sociology as an interpretative science, Concepts of Verstehen and ideal types, Theory of social action – types of social actions
8	Max Weber: Analysis of modern capitalism. Protestant ethic and emergence of capitalism, Concepts of status, class and power, Authority and power – types of authority, Bureaucracy
9	Vilfredo Pareto: Intellectual Background, Contribution to the methodology – logico – experimental method,
10	Vilfredo Pareto: Classification of logical and non-logical actions, Theory of residues and derivatives, Theory of social change- Types of elites, their classification, circulation of Elites.

(Units)	(CONTENTS)	(Page No.)

1. 19वीं सदी में समाजशास्त्र का विकास (Development of Sociology in 19th Century) — 1
Sukanya Das, Lovely Professional University

2. ऑगस्ट कॉम्ट : बौद्धिक पृष्ठभूमि (Auguste Comte: Intellectual Background) — 9
Sukanya Das, Lovely Professional University

3. उद्विकास एवं प्रगति के सिद्धांत (Theory of Evolution and Progress) — 15
Sukanya Das, Lovely Professional University

4. तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages) — 19
Sukanya Das, Lovely Professional University

5. विज्ञानों का संस्तरण (Hierarchy of Sciences) — 24
Sukanya Das, Lovely Professional University

6. सामाजिक स्थैतिकी या स्थिति-विज्ञान तथा सामाजिक गति-विज्ञान (Social Statics and Social Dynamics) — 32
Sukanya Das, Lovely Professional University

7. कार्ल मार्क्स : बौद्धिक पृष्ठभूमि (Karl Marx: Intellectual Background) — 37
Sukanya Das, Lovely Professional University

8. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History) — 43
Sukanya Das, Lovely Professional University

9. पूँजीवाद का उद्भव, पूँजीवादी विकास के सिद्धांत, अतिरिक्त मूल्य एवं पूँजीवाद की प्रक्रिया
(Origin of Capitalism, Theories of Capitalistic Development, Surplus Value and Process of Capitalism) — 52
Sukanya Das, Lovely Professional University

10. वर्गों का उद्भव एवं वर्ग-संघर्ष (Origin of Class and Class-Struggle) — 61
Sukanya Das, Lovely Professional University

11. पूँजीवादी समाज में अलगाव (Alienation in Capitalistic Society) — 68
Sukanya Das, Lovely Professional University

12. सामाजिक परिवर्तन का मार्क्स का सिद्धांत (Theory of Marx of Social Change) — 75
Sukanya Das, Lovely Professional University

13. इमाइल दुर्खीम : बौद्धिक पृष्ठभूमि (Emile Durkheim: Intellectual Background) — 80
Sukanya Das, Lovely Professional University

14. समाजशास्त्र की पद्धति में योगदान-विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र-सामाजिक तथ्य की अवधारणा
(Contribution in Sociological Method Sociology-as a Science, the Concept of Social Facts) — 84
Sukanya Das, Lovely Professional University

15. समाज में श्रम-विभाजन-यांत्रिक एवं सावयवी एकता (Division of Labour in Society-Mechanical and Organic Solidarity) — 97
Sukanya Das, Lovely Professional University

(Theory of Derivations)

16. आत्महत्या का सिद्धांत (Theory of Suicide) 115
Sukanya Das, Lovely Professional University

17. धर्म का सिद्धांत (Theory of Religion) 122
Sukanya Das, Lovely Professional University

18. मैक्स वेबर : बौद्धिक पृष्ठभूमि। (Max Waber: Intellectual Background) 128
Sukanya Das, Lovely Professional University

19. एक व्याख्यात्मक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र, वर्स्टेहन की अवधारणा तथा आदर्श प्रारूप
(Sociology as a Interpretative Science, Concept of Verstehen and Ideal Type) 134
Sukanya Das, Lovely Professional University

20. सामाजिक क्रिया के सिद्धांत एवं सामाजिक क्रिया के प्रकार (Theory of Social Action and Types of Social Action) 141
Sukanya Das, Lovely Professional University

21. आधुनिक पूँजीवाद का विश्लेषण, प्रोटेस्टेंट नैतिकता एवं पूँजीवाद का उद्‌भव
(Analysis of Modern Capitalism, Protestant Ethics and Origin of Capitalism) 150
Sukanya Das, Lovely Professional University

22. प्रस्थिति, वर्ग एवं शक्ति की अवधारणाएँ (Concept of Status, Class and Power) 158
Sukanya Das, Lovely Professional University

23. सत्ता एवं सत्ता के प्रकार (Authority and Types of Authority) 163
Sukanya Das, Lovely Professional University

24. नौकरशाही (Bureaucracy) 167
Sukanya Das, Lovely Professional University

25. विल्फ्रेडो परेटो : बौद्धिक पृष्ठभूमि (Vilfredo Pareto: Intellectual Background) 175
Sukanya Das, Lovely Professional University

26. पद्धतिशास्त्र में योगदान-तार्किक पद्धति (Contribution in Methodology-Logical Method) 180
Sukanya Das, Lovely Professional University

27. तार्किक एवं अतार्किक क्रियाओं का वर्गीकरण (Classification of Logical and Non-Logical Action) 184
Sukanya Das, Lovely Professional University

28. विशिष्ट चालक या अवशिष्ट (Residues) 191
Sukanya Das, Lovely Professional University

29. भ्रांत तर्क का सिद्धांत (Theory of Derivatives) 195
Sukanya Das, Lovely Professional University

30. सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत-अभिजनों के प्रकार, उनका वर्गीकरण, अभिजनों का परिभ्रमण
(Theory of Social Changes-Types of Elite, Classification, Circulation of Elite) 199
Sukanya Das, Lovely Professional University

नोट

इकाई–1 : 19वीं सदी में समाजशास्त्र का विकास (Development of Sociology in 19th Century)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

1.2 समाजशास्त्र की उत्पत्ति (Origin of Sociology)

1.3 समाजशास्त्र का विकास (Development of Sociology)

1.4 सारांश (Summary)

1.5 शब्दकोश (Keywords)

1.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समाजशास्त्र के उद्‌भव की पृष्ठभूमि को जानना।
- नये समाज-विज्ञान (समाजशास्त्र) के प्रारम्भिक स्वरूप को जानना।
- समाजशास्त्र के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

यों तो सामाजिक ज्ञान उतना ही प्राचीन है जितना कि मानवीय समाज। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव अपने सामाजिक जीवन के बारे में सोचता आया है और सोचता रहा है। समूह के क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए यह आवश्यक है कि आने वाली विभिन्न समस्याओं को सुलझाया जाए। इन्हीं प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप ही समाजशास्त्र की उत्पत्ति हुई है और विकास अविराम गति से होता जा रहा है। वास्तव में समाजशास्त्र का अतीत बहुत लम्बा है परन्तु इतिहास उतना ही छोटा है।

नोट

एक पृथक् विषय के रूप में समाजशास्त्र का इतिहास 150 वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इस विषय के अन्तर्गत समाज का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। पूर्व में समाज, सामाजिक सम्बन्धों, परिवार, विवाह, सम्पत्ति, सामाजिक संस्थाओं, आदि पर धर्म का स्पष्ट प्रभाव था। ईसा के जन्म के पूर्व भारत, चीन, अरब, ग्रीस, रोम आदि देशों में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर दार्शनिक दृष्टिकोण से चिन्तन प्रारम्भ हुआ। इस समय मनु, कौटिल्य, कन्फ्यूशियस, प्लेटो तथा अरस्तु प्रसिद्ध सामाजिक दार्शनिक हुए। यद्यपि प्रारम्भ में समाज और सामाजिक जीवन को धार्मिक एवं दार्शनिक आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया, लेकिन धर्म और दर्शन की पद्धतियों में वस्तुनिष्ठता व तटस्थता का अभाव था, निरीक्षण एवं परीक्षण को कोई महत्त्व नहीं दिया गया था।

तत्पश्चात् इतिहास की सहायता से समाज और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयत्न किया गया। समाजशास्त्र के अन्तर्गत इतिहास की सहायता से बीते हुए युग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गयी। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों एवं उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इतिहास एवं दर्शन की अध्ययन-विधियों का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार की विश्लेषण पद्धति के विकास में जर्मन दार्शनिक हीगल का विशेष योगदान था। इससे समाजशास्त्र के विकास में काफी सहायता मिली। इस समय यूरोप में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्षों के लिए राजनीतिक अर्थतन्त्र नामक विषय को काफी महत्त्व दिया गया। इस विषय से सम्बन्धित अध्ययनों ने समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

1.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

समाजशास्त्र का उद्भव (Origin of Sociology)

जब हम समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास पर विचार करते हैं तो तीन विश्लेषण पद्धतियाँ उभरकर सामने आती हैं:

(*i*) प्रथम विश्लेषण पद्धति मानव चिन्तन की निरन्तरता पर जोर देती है। इसमें समाजशास्त्र के उदय एवं विकास को प्राचीन युग के सामाजिक चिन्तन के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया गया। वार्न्स एवं टिमैरोफ ने समाजशास्त्र का आरम्भ चिन्तन के एक निरन्तर प्रवाह के एक भाग के रूप में माना है। इसके अनुसार, प्राचीनकाल में ग्रीस, रोम, भारत, चीन और अरब देशों में समाजशास्त्र का उदय हुआ। सामाजिक जीवन का विश्लेषण करने वाले विभिन्न सामाजिक विज्ञानों जैसे इतिहास, राजनीतिशास्त्र, दर्शन, अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त अध्ययन-विधियों के सम्मिलित प्रभाव के परिणामस्वरूप समाजशास्त्र की उत्पत्ति हुई।

(*ii*) द्वितीय विश्लेषण पद्धति सिद्धान्तों तथा तथ्यों के विवेचन पर जोर देती है। इस पद्धति के प्रतिपादक मर्टन का कहना है कि समाजशास्त्र के सिद्धान्तों पर विचार करते समय इसके इतिहास के अध्ययन पर जोर नहीं देकर सिद्धान्तों एवं तथ्यों के विश्लेषण पर जोर देना चाहिए।

(*iii*) तृतीय विश्लेषण पद्धति से सम्बन्धित विद्वानों का कहना है कि तत्कालीन यूरोप के सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्र के उदय तथा विकास पर विचार किया जाना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में औद्योगीकरण व पूंजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में जो बदलाव आया, उसके सन्दर्भ में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास का पता लगाया जाना चाहिए।

समाजशास्त्र के उद्भव की पृष्ठभूमि (Background of Origin of Sociology)

अठारहवीं शताब्दी के यूरोप की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक परिस्थितियों ने समाजशास्त्र के उद्भव और विकास में विशेष योग दिया। अब राज्य व समाज की उत्पत्ति में दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत में विश्वास कम हुआ।

नोट

अब इनकी उत्पत्ति में मानवीय प्रयत्नों को महत्त्वपूर्ण माना गया। इंग्लैण्ड में राजा के अधिकार कम हुए एवं संसद के अधिकार बढ़े। फ्रांस में राज्यक्रांति हुई, कारखानों पर आधारित नवीन अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आयी, नगरों का विकास हुआ तथा समुदायों की दमनात्मक शक्ति में कमी आयी। इन सबके परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन होने लगे। इससे समाज में बदलाव आया, समाज की नई संरचना विकसित हुई। इस संरचना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(*i*) राजतंत्र के स्थान पर लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ।

(*ii*) भूमि तथा कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था की जगह औद्योगिक व्यवस्था का उदय हुआ।

(*iii*) गाँवों से लोग या तो अन्य देशों की ओर या अपने ही देश में नगरों की ओर जाने लगे।

(*iv*) परम्परागत सामुदायिक सम्बन्धों एवं दबाव वाली सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिवादी विचारधारा का विकास हुआ।

फ्रांस में राज्यक्रांति (1789) के परिणामस्वरूप सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में तेजी आयी। इस क्रांति के फलस्वरूप स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के विचार पनपे। फ्रांस में राजतंत्र के स्थान पर लोकतांत्रिक राजप्रणाली प्रारंभ हुई। राज्यक्रांति के पश्चात् फ्रांस में पनपी सामाजिक अव्यवस्था ने फ्रांस में सेण्ट साइमन तथा ऑगस्त कॉम्ट को काफी प्रभावित किया। इन दोनों विद्वानों ने व्यवस्था, पुनर्गठन एवं समाज की वैज्ञानिक व्याख्या हेतु एक नए समाज-विज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया।

नोट्स सामाजिक संबंधों में उत्पन्न अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए समाजशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पड़ी।

करीब-करीब इसी समय प्राकृतिक विज्ञानों का विकास हुआ और इसका प्रभाव सामाजिक विज्ञानों पर भी पड़ा। अब यह महसूस किया जाने लगा कि जिस प्रकार सार्वभौम सिद्धांतों की सहायता से भौतिक जगत की व्याख्या की गयी है, इसी प्रकार से सामाजिक विज्ञानों में भी सार्वभौम सिद्धांतों का प्रतिपादन कर सामाजिक जगत की व्याख्या की जा सकती है। जिस प्रकार की अध्ययन-विधियों जैसे निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोग का सहारा प्राकृतिक विज्ञानों में लिया जाता है, उसी प्रकार की अध्ययन-विधियों का उपयोग सामाजिक विज्ञानों में भी किया जा सकता है। यहाँ भी वस्तुनिष्ठ तरीके से या तटस्थ रहकर समाज का अध्ययन करना सम्भव है। इन मान्यताओं ने समाजशास्त्र के विकास में विशेष योग दिया।

ब्रिटिश समाजशास्त्री बॉटोमोर का कहना है कि अठारहवीं शताब्दी की बौद्धिक परिस्थितियाँ समाजशास्त्र के उदय में सहायक प्रमाणित हुईं। इस समय राजनीतिक दर्शन, इतिहास के दर्शन, उद्विकास के प्राणिशास्त्रीय सिद्धांत, सामाजिक-राजनीतिक सुधार आंदोलन तथा सामाजिक सर्वेक्षण विधि के विकास ने समाज के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

इतिहास की दार्शनिक व्याख्या करने वालों में ऐडम फर्ग्युसन का नाम उल्लेखनीय है। आपने राज्य, समाज, परिवार, नातेदारी, जनसंख्या, प्रथा एवं कानून पर विचार व्यक्त किये। आपकी मान्यता है कि समाज पारस्परिक रूप से सम्बद्ध संस्थाओं की प्रणाली है। फर्ग्युसन के चिन्तन का प्रभाव हीगल तथा सेण्ट साइमन के विचारों पर पड़ा। हीगल का प्रभाव कार्ल मार्क्स पर तथा सेण्ट साइमन का ऑगस्त कॉम्ट पर पड़ा।

नोट

नये समाज-विज्ञान का प्रारम्भिक रूप (Early form of New Social Science)

इस नवीन समाज-विज्ञान के सम्बन्ध में सेण्ट साइमन ने निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया–

(*i*) वैज्ञानिक अन्वेषणों, औद्योगिक क्रांति एवं राजनीतिक उथल-पुथल के फलस्वरूप सामाजिक संरचना काफी कुछ बदल चुकी है। अतः परिवर्तित सामाजिक संरचना के विश्लेषण के लिए एक नये समाज-विज्ञान की आवश्यकता है।

(*ii*) इस नवीन विज्ञान में प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाली पद्धतियों को काम में लिया जाना चाहिए।

(*iii*) आज की बदली हुई परिस्थितियों में आस्था, कल्पना एवं तर्क पर आधारित धार्मिक एवं दार्शनिक विवेचन का कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

(*iv*) अपने उपर्युक्त तर्कों को मूर्त रूप देने हेतु सेण्ट साइमन ने ऑगस्त कॉम्ट के साथ मिलकर सामाजिक जीवन का अध्ययन करने हेतु एक नये विज्ञान-सामाजिक भौतिकी को विकसित करने का प्रयत्न किया जिसे बाद में समाजशास्त्र नाम दिया गया। इस विज्ञान के द्वारा सामाजिक जीवन का उसी प्रकार अध्ययन किया जाएगा जिस प्रकार भौतिकशास्त्र द्वारा भौतिक जगत का अध्ययन किया जाता है।

ऑगस्ट कॉम्ट एवं सेण्ट साइमन दोनों सामाजिक भौतिकी (समाजशास्त्र) को विकसित करने हेतु कुछ वर्षों तक साथ-साथ काम करते रहे। इन दोनों विद्वानों ने सामाजिक विज्ञानों को धर्म एवं दर्शन के प्रभाव से मुक्त कराने का प्रयत्न किया। इन दोनों का कार्ल मार्क्स पर प्रभाव रहा है। इस काल को बॉटोमोर चिन्तन की दृष्टि से 'समाजशास्त्र' का प्रागैतिहासिक काल मानते हैं।

1.2 समाजशास्त्र की उत्पत्ति (Origin of Sociology)

सन् 1838-1839 में ऑगस्त कॉम्ट ने उपर्युक्त प्रस्तावित विज्ञान को 'सोशियोलॉजी' नाम दिया। यह लैटिन के 'सोश्यस' तथा ग्रीक के 'लोगस' शब्द से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है–समाज का विज्ञान या शास्त्र। इसे ही हिन्दी में समाजशास्त्र कहा गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में समाजशास्त्र के विकास में ऑगस्त कॉम्ट, कार्ल मार्क्स तथा हर्बर्ट स्पेन्सर का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इस समय समाजशास्त्री समाज के वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रति जागरूक थे। इस दिशा में कॉम्ट ने 'वैज्ञानिक दर्शन का सिद्धांत' प्रतिपादित किया। मार्क्स ने इसी समय 'वैज्ञानिक समाजवाद' नामक सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस समय समाजशास्त्र पर एक ओर तो भौतिक विज्ञानों का एवं दूसरी ओर प्राणी-विज्ञानों का प्रभाव पड़ा। इसी समय सामाजिक उद्विकास, उन्नति एवं प्रगति के सिद्धांतों तथा सोपानों का पता लगाने का प्रयत्न किया गया। तीन विचारकों–कॉम्ट, मार्क्स तथा स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास पर प्रकाश डाला। कार्ल मार्क्स ने आदिम साम्यवाद के स्तर से शुरू करके साम्यवाद तक की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' के सिद्धांत के आधार पर किया। स्पेन्सर ने बताया कि प्राणी-जगत के समान ही समाज का भी उद्विकास हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जर्मन समाजशास्त्री टॉनीज, जार्ज सिमेल एवं फ्रेंच समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के प्रतिपादन में योग दिया। टॉनीज ने समाज का समुदायों एवं समितियों के रूप में वर्गीकरण प्रस्तुत किया। सिमेल ने 'स्वरूपात्मक समाजशास्त्र' के विकास में योग दिया जिसके अनुसार समाजशास्त्र की प्रमुख विषय-वस्तु सामाजिक अन्तःक्रिया के स्वरूपों का अध्ययन है। जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर का भी समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के विकास में काफी योगदान रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अमरीका के कुछ विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रारंभ हो चुका था। इस समय यहाँ थार्स्टन वेबलन, फ्रेकवार्ड तथा ई.ए. रॉस प्रसिद्ध समाजशास्त्री हुए। इटली में विल्फ्रेडो पैरेटो ने 'अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धांत' प्रतिपादित किया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. उन्नीसवीं शताब्दी में समाजशास्त्र के विकास में ऑगस्त, कॉम्ट, कार्ल मार्क्स तथा हर्बर्ट स्पेन्सर का योगदान ········ है।
2. मार्क्स ने इसी समय ········ नामक सिद्धांत प्रतिपादित किया।
3. स्पेन्सर ने बताया कि ········ के समान ही समाज का भी उद्‌विकास हुआ है।

> *क्या आप जानते हैं* प्लेटो लिंग के आधार पर असमानता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि स्त्री एवं पुरुषों के गुणों तथा सामर्थ्य में विशेष अन्तर नहीं है।

1.3 समाजशास्त्र का विकास (Development of Sociology)

अब हम यहाँ समाजशास्त्र के विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर विचार करेंगे।

(I) समाजशास्त्र के विकास की प्रथम अवस्था (First Stage of Development of Sociology)

साधारणत: यह माना जाता है कि समाजशास्त्र के विकास की प्रारम्भिक अवस्था यूरोप से शुरू हुई, परन्तु कुछ भारतीय विचारकों की मान्यता है कि समाज जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण बातें वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकव्यों एवं स्मृतियों आदि से मिलती है। यहाँ प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय चिन्तकों ने समाज और जीवन की एक व्यापक व्यवस्था का विकास पाश्चात्य विद्वानों के इस दिशा में चिन्तन के बहुत पहले ही कर लिया था, लेकिन यहाँ हमें इतना अवश्य ध्यान में रखना होगा कि भारतीय विद्वानों के समाज सम्बन्धी विचार, धर्म, राजनीति एवं अर्थ से काफी प्रभावित थे।

पश्चिमी समाजों में समाज सम्बन्धी अध्ययनों का प्रारंभ यूनानी विचारकों से हुआ। **प्लेटो** तथा **अरस्तु** की रचनाएँ इस दिशा में प्रमुख प्रयास थे। प्लेटो ने अपनी पुस्तक **'रिपब्लिक'** (427-347 ई.पू.) तथा अरस्तू ने **'इथिक्स एण्ड पॉलिटिक्स'** (384-322 ई.पू.) में समाज जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं एवं घटनाओं का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया। आपने अपनी रचनाओं में पारिवारिक जीवन, रीति-रिवाजों, परम्पराओं, स्त्रियों की स्थिति, सामाजिक संहिताओं आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इन विद्वानों के विचारों में स्पष्टता का अवश्य अभाव था और ये एक ओर समाज, समुदाय तथा राज्य में और दूसरी ओर दर्शन एवं विज्ञान में स्पष्ट भेद नहीं कर पाये। उस समय समाज में धर्म और जादू-टोने का विशेष बोलबाला था। इसी कारण उस समय सामाजिक घटनाओं का अध्ययन प्रमुखत: वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं किया जा सका। प्लेटो तथा अरस्तू के पश्चात् समाज-जीवन के अध्ययन एवं समाजशास्त्र के विकास में लुक्रेशियस (96-55 ई. पू.), सिसरो (106-43 ई. पू.), मारकस आरेलियस (121-108 ए.डी.), सेण्ट आगस्टाइन (354-430 ए.डी.) आदि का उल्लेखनीय योगदान है। भारतीय विचारों के इतिहास में मनु एवं कौटिल्य (चाणक्य) का योगदान काफी उल्लेखनीय है। मनु ने अपनी रचना 'मनुस्मृति' में भारतीय समाज व्यवस्था का और कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का विवेचन प्रस्तुत किया है।

(II) समाजशास्त्र के विकास की द्वितीय अवस्था (Second Stage of Development of Sociology)

छठी शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक का काल समाजशास्त्र के विकास की द्वितीय अवस्था मानी जाती है। इस काल में भी काफी लम्बे समय तक सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए धर्म और दर्शन का सहारा लिया जाता रहा,

नोट

लेकिन तेरहवीं शताब्दी में सामाजिक समस्याओं को तार्किक ढंग से समझने का प्रयत्न किया गया। धीरे-धीरे सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में तर्क का महत्त्व बढ़ता गया। **थॉमस एक्यूनस** (1227-1274) तथा दान्ते (1265-1321) की रचनाओं से यह बात भली-भांति स्पष्ट है। इन विद्वानों ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना और समाज को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए सरकार की आवश्यकता पर जोर दिया। **एक्यूनस** ने सामाजिक सहयोग, न्याय, ईश्वर, श्रद्धा, एकता आदि का अध्ययन किया। इसी काल में समाज को परिवर्तनशील माना गया और साथ ही बतलाया गया कि इस परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित नियम, सामाजिक क्रियाएँ एवं शक्तियाँ कार्य करती हैं। इस समय सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों को समझने के लिए उस विधि के प्रयोग पर जोर दिया गया जिसका प्रयोग प्राकृतिक घटनाओं एवं तथ्यों को समझने हेतु किया जाता था। परिणामस्वरूप इस काल के विचारकों के चिन्तन में वैज्ञानिकता का प्रभाव दिखाई देने लगा। अब समाज के अध्ययन में कार्यकारण सम्बन्धों पर जोर दिया जाने लगा।

(III) समाजशास्त्र के विकास की तृतीय अवस्था (Third Stage of Development of Sociology)

इस अवस्था का प्रारंभ पन्द्रहवीं शताब्दी से माना गया है। इस काल में सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग प्रारंभ हुआ। इस समय समाज-जीवन के विभिन्न पक्षों—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जाने लगा। परिणामस्वरूप विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों, जैसे अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, इतिहास आदि का विकास हुआ। इस काल के विचारकों के बौद्धिक चिन्तन के फलस्वरूप समाजशास्त्र के विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार हो सकी। **हॉब्स**, **लॉक** तथा **रूसो** के द्वारा 'सामाजिक समझौते का सिद्धांत' प्रतिपादित किया गया। **सर थॉमस मूर** ने अपनी पुस्तक **'यूटोपिया'** में दिन-प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओं को समझाने का प्रयत्न किया। इसी पुस्तक में आपने इंग्लैण्ड की सामाजिक व्यवस्था एवं तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का विवरण दिया है। **माण्टेस्क्यू** ने अपनी पुस्तक **'दी स्पिरिट ऑफ लॉज'** में मानव समाज पर भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। विको नामक विद्वान ने 'दी न्यू साइन्स' में सामाजिक शक्तियों की उद्देश्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की। माल्थस ने जनसंख्या-सिद्धांत और जनाधिक्य से सम्बन्धित समस्याओं पर प्रकाश डाला। **एडम स्मिथ** ने आर्थिक मनुष्यों का विचार दिया। **कन्डोरसेट** ने सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत प्रतिपादित किया। **जेम्स हेरिंगटन** ने इतिहास की आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित सिद्धांत प्रस्तुत किया। इन सभी और अनेक अन्य विद्वानों का यद्यपि समाजशास्त्र के विकास में काफी योगदान है, परन्तु इनके अध्ययनों में एकरूपता और विशेषीकरण का अभाव है। कई विद्वान सामाजिक घटनाओं को आर्थिक घटनाओं से पृथक् करके उनका अध्ययन नहीं कर पाये।

(IV) समाजशास्त्र के विकास की चतुर्थ अवस्था (Fourth Stage of Development of Sociology)

समाजशास्त्र के विकास की इस चतुर्थ अवस्था का प्रारंभ **ऑगस्ट कॉम्ट** (1798-1857) के समय से माना जाता है। यही समाजशास्त्र के वैज्ञानिक विकास की वास्तविक अवस्था है। फ्रांसीसी विद्वान **ऑगस्ट कॉम्ट** के गुरु **सेण्ट साइमन** भौतिक विज्ञानों के समान समाज को एक ऐसा विज्ञान बनाना चाहते थे जिसमें सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन तथा विश्लेषण किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक नियमों का पता लगाया जा सके। **ऑगस्ट कॉम्ट** ने अपने गुरु के इन्हीं विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया। आपने समाज से सम्बन्धित अध्ययन को **'सामाजिक भौतिकी'** (Social Physics) के नाम से पुकारा। सन् 1838-1839 में आपने इस नाम को बदलकर इसे **'समाजशास्त्र'** (Sociology) नाम दिया। यही कारण है कि आपको समाजशास्त्र का जन्मदाता या पिता (Father of Sociology) कहा जाता है।

नोट

समाजशास्त्र रूपी विशाल भवन का आधार **ऑगस्ट कॉम्ट** का चिन्तन ही है। आपने ही सर्वप्रथम सामाजिक दर्शन और समाजशास्त्र में अन्तर स्पष्ट किया। आपने ही समाजशास्त्रीय प्रणाली का विकास किया। आपने स्पष्टत: बताया है कि प्राकृतिक घटनाओं के समान सामाजिक घटनाओं का भी वैषयिक तरीके से प्रत्यक्ष विधि की सहायता से अध्ययन किया जा सकता है। सन् 1849 में **जान स्टुअर्ट मिल** ने इंग्लैण्ड को समाजशास्त्र शब्द से परिचित कराया। बाद में प्रसिद्ध ब्रिटिश समाजशास्त्री **हरबर्ट स्पेन्सर** ने समाजशास्त्र के विकास में सक्रिय योग दिया। आपने ही अपनी रचना 'सिन्थेटिक फिलॉसफी' के एक भाग 'प्रिन्सीपल्स ऑफ़ सोशियोलॉजी' में **कॉम्ट** के विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया। आपने अपने प्रसिद्ध 'सावयवी सिद्धांत' में समाज की तुलना मानव शरीर से की है। **सर्वप्रथम अमरीका के येल विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रारंभ हुआ।**

समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक् एक स्वतंत्र एवं वैषयिक विज्ञान बनाने का श्रेय फ्रांसीसी विद्वान **इमाइल दुर्खीम** (1858-1917) को है। आपने समाजशास्त्र को सामूहिक प्रतिनिधानों (Collective Representations) का विज्ञान माना है। एडवुड ने बताया है कि यद्यपि **कॉम्ट** ने फ्रांस में समाजशास्त्र की नींव डाली, लेकिन इसे वैषयिक विज्ञान बनाने वाली विचारधारा का जनक दुर्खीम को ही माना जा सकता है। आपने ही समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों जैसे मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र और इतिहास से स्वतंत्र किया। प्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री **मैक्स वेबर** (1864-1920) ने समाजशास्त्र को विज्ञान का रूप देने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इटली के समाजशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो (1848-1923) का समाजशास्त्र के व्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकास में काफी योगदान है।

समाजशास्त्र के विकास में विश्व के विभिन्न देशों के विद्वानों का महत्त्वपूर्ण सहयोग है। विशेषत: 20वीं शताब्दी में फ्रांस, जर्मनी एवं संयुक्त राज्य अमरीका में इस विषय का काफी विकास हुआ। इंग्लैण्ड में इसके विकास की गति धीमी रही। अमरीका में समाजशास्त्र के विकास तथा अध्ययन-अध्यापन पर काफी ध्यान दिया गया, लेकिन वहाँ भी 20वीं शताब्दी में ही इस विषय का विकास हुआ। यह इस बात से स्पष्ट है कि हार्वर्ड जैसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में सन् 1930 तक समाजशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की कोई व्यवस्था नहीं थी।

समाजशास्त्र के विकास में इंग्लैण्ड के हरबर्ट स्पेन्सर, मिल, चार्ल्स बूथ, हॉबहाउस, वेस्टरमार्क, मानहीम, गिन्सबर्ग आदि का उल्लेखनीय योगदान है। इन्होंने इंग्लैण्ड में समाजशास्त्र के विकास की दृष्टि से सराहनीय कार्य किया। वहाँ सन् 1907 में समाजशास्त्र का अध्यापन-कार्य प्रारंभ हुआ। **फ्रांस** में दुर्खीम, टार्डे, लीम्ले आदि ने समाजशास्त्र के विकास की दृष्टि से सराहनीय कार्य किया। वहाँ सन् 1889 में समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हुआ। **जर्मनी** में 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में समाजशास्त्र के विकास में टॉनीज, वान विज, **मैक्स वेबर**, **कार्ल मार्क्स**, **वीरकान्त**, **सिमैल** आदि विद्वानों का काफी योगदान रहा। **अमरीका** में समाजशास्त्र का बहुत विकास हुआ। वहाँ गिडिंग्स, समनर, वार्ड, पार्क, बर्गेस, सॉरोकिन, जिमरमैन, मैकाइवर, ऑगबर्न, पारसन्स, मर्टन, यंग, कॉजर, रॉस आदि ने इस दिशा में विशेष सहयोग दिया। वहाँ सन् 1876 में येल विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम समाजशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रारंभ हुआ। सन् 1924 में मिस्र में और 1947 में स्वीडन में समाजशास्त्र विभाग स्थापित किये गए। वर्तमान में सभी विकसित और विकासशील देशों में समाजशास्त्र का अध्ययन साधारणत: प्रारंभ हो चुका है, यद्यपि कुछ देश अपवाद अवश्य हैं। वर्तमान में समाजशास्त्र की उपयोगिता और लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है।

टास्क समाजशास्त्र के विकास में फ्रांस की राज्य क्रांति की क्या भूमिका थी?

नोट

1.4 सारांश (Summary)

- ब्रिटिश समाजशास्त्री बॉटोमोर का कहना है कि अठारहवीं शताब्दी की बौद्धिक परिस्थितियाँ समाजशास्त्र के उदय में सहायक प्रमाणित हुई।
- फ्रांस की राज्यक्रांति (1789) के परिणामस्वरूप सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में तेजी आई। इस क्रांति के फलस्वरूप स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के विचार का विकास हुआ।
- उन्नीसवीं शताब्दी में समाजशास्त्र के विकास में **ऑगस्ट कॉम्ट**, **कार्ल मार्क्स** तथा **स्पेन्सर** का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इस समय समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया।
- समाजशास्त्र के विकास को चार चरणों में विभाजित किया गया है।

1.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **वैज्ञानिक विधि (Scientific Method):** ज्ञान को प्राप्त करने का एक ऐसा तरीका जिसमें तथ्यों का व्यवस्थित अवलोकन, परीक्षण, सामान्यीकरण एवं सत्यापन किया जाता है वैज्ञानिक विधि कहलाती है।
2. **सामाजिक (Social):** एक ऐसी स्थिति जिसमें एक व्यक्ति अपने आप को किसी समूह के साथ सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ अनुभव करता है तथा समूह के हितों के प्रति जागरूक रखता है।
3. **समाजशास्त्र (Sociology):** एक ऐसा विज्ञान जिसमें समाज अर्थात् सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग पहली बार **ऑगस्ट कॉम्ट** ने किया था।

1.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. समाजशास्त्र के उद्भव की पृष्ठभूमि क्या थी?
2. समाजशास्त्र के विकास के विभिन्न चरणों को बताएँ।
3. 19वीं सदी में समाजशास्त्र का विकास किस तरह हुआ?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. महत्त्वपूर्ण 2. वैज्ञानिक समाजवाद 3. प्राणी-जगत।

1.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र–NCERT (11वीं एवं 12वीं कक्षा)।
2. प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक–दोषी एवं जैन।
3. सामाजिक विचारधारा–रविन्द्रनाथ मुखर्जी।
4. सोशियोलॉजी–टी.बी. बोटोमोर।

नोट

इकाई–2 : ऑगस्ट कॉम्ट : बौद्धिक पृष्ठभूमि (August Comte Intellectual Background)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

2.2 सारांश (Summary)

2.3 शब्दकोश (Keywords)

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- ऑगस्ट कॉम्ट की युगीन परिस्थितियों को जानना।
- ऑगस्ट कॉम्ट के जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानना।
- कॉम्ट के विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव।
- कॉम्ट के सामाजिक योगदान को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

कॉम्ट का नाम केवल इसलिए प्रसिद्ध नहीं है कि आपने सामाजिक विचारधारा का आधार कल्पना न रखकर वैज्ञानिक तथ्य, निरीक्षण, परीक्षण तथा वर्गीकरण रखा; अपितु आपका नाम ***समाजशास्त्र के जनक*** (*Father of Sociology*) के रूप में भी सर्वत्र परिचित है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कर सकें–इस प्रकार के एक पृथक् सामाजिक विज्ञान की आवश्यकता आपने ही सर्वप्रथम अनुभव की और उस विज्ञान का नामकरण पहले 'सामाजिक भौतिकशास्त्र' और बाद में 'समाजशास्त्र' किया। दूसरे शब्दों में, 'समाजशास्त्र' का जन्म **कॉम्ट** की विचारधारा में ही हुआ।

नोट

अपने को वैज्ञानिक स्तर तक उन्नत करने के कार्य में **कॉम्ट** को उनके समय की कुछ सामाजिक परिस्थितियों ने पर्याप्त सहायता की थी। उदाहरणार्थ, फ्रांसीसी क्रांति ने उस सामाजिक व्यवस्था को बिखरा दिया जोकि राजाओं की ईश्वरीय सत्ता, कुलीन वर्ग के विशेषाधिकार, कैथोलिक चर्च की सत्ता और जनता की आज्ञानता पर आधारित थी। इस क्रांति के फलस्वरूप राजाओं की ईश्वरीय सत्ता का अन्त हुआ, कुलीन वर्ग के विशेषाधिकार छिन गए, कैथोलिक चर्च की सत्ता व धन कम हुआ और जनता की आँखें खुलीं। इन सबसे लाभ उठाकर नेपोलियन अपने को अधिनायक बनाने में सफल हुए। ये सभी 'अशान्तिमय प्रगति' के लक्षण थे। स्वभावत: ही इन सबका कॉम्ट के मस्तिष्क में गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय की सर्वप्रथम सामाजिक समस्या केवल सामाजिक व्यवस्था से ही नहीं बल्कि सामाजिक प्रगति से भी सम्बन्धित थी। फ्रांसीसी क्रांति व नेपोलियन की लड़ाइयों से सामाजिक व्यवस्था में जो उथल-पुथल हुई थी उसके कारण सामाजिक प्रगति को एक निश्चित दिशा में चालित करना असम्भव न सही, कठिन अवश्य ही था। इस कारण उस समय ऐसे विचारकों की आवश्यकता थी जो कि केवल सामाजिक प्रगति के ही नहीं अपितु सामाजिक व्यवस्था के भी निर्देशक बन सकें। कॉम्ट ने घोषणा की कि सामाजिक प्रगति या पुनर्सगठन की सभी योजनाएँ कुछ ऐसे वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए जिनका कि आधार अनुभव और प्रयोग हो सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में यही **कॉम्ट** का सर्वप्रमुख योगदान है। अब हम इनके विषय में विस्तारित अध्ययन करेंगे।

2.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख विचारकों में अग्रणी ऑगस्ट कॉम्ट का जन्म 19 जनवरी, सन् 1798 में फ्रांस के मॉण्टपेलियर नामक स्थान में एक कैथोलिक परिवार में हुआ। था। उनके पिता कर विभाग के उच्च पदाधिकारी थे। बचपन से ही कॉम्ट के व्यक्तित्व में दो विलक्षणताएँ स्पष्ट होने लगी थीं—एक तो उनकी प्रखर बौद्धिक क्षमता और दूसरे समस्त स्थापित सत्ता का विरोध करने की मनोवृति। उनके माता-पिता कट्टर राजभक्त थे। कॉम्ट एक लोकतंत्रवादी थे। उनके माता-पिता कट्टर कैथोलिक थे जबकि कॉम्ट उसी कैथोलिक धर्म के कटु आलोचक थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके ही नगर में हुई थी और उसके बाद आपका दाखिला पेरिस के एक पॉलिटेक्निक स्कूल में कर दिया गया था। वहाँ आप विद्यार्थियों में अपनी उपर्युक्त दो विलक्षणताओं के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गए, विशेषकर उस समय जबकि आपने उस स्कूल के एक प्रोफेसर को निकाल देने के आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। उन्होंने तेरह वर्ष की आयु में ही अपने परिवार के राजनीतिक तथा धार्मिक विश्वासों को त्याग दिया था; चौदह वर्ष में आपने समाज का पुनर्निर्माण करना चाहा और सोलह वर्ष की आयु में गणितशास्त्र में लेक्चर दिये। इस प्रकार विभिन्न रूप में उन्होंने यह प्रमाणित किया कि आप एक साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु एक निर्भीक तथा स्वतंत्र विचारक थे।

अपने स्कूल के जीवन में **कॉम्ट, बेंजामिन फ्रांकलिन** द्वारा अत्यन्त प्रभावित थे। **कॉम्ट** उनको एक आदर्श पुरुष मानते थे और उनका अनुकरण करना चाहते थे। अपने स्कूल के एक मित्र को उन्होंने एक बार लिखा था, "मैं आधुनिक सुकरात का अनुकरण करना चाहता हूँ, उनके बौद्धिक गुणों का नहीं बल्कि उनके जीवन के तरीके का। तुम जानते हो कि जब वे केवल पच्चीस वर्ष के ही थे तभी उन्होंने अपने को पूर्णतया बुद्धिमान व्यक्ति सोच लिया था। मैंने भी उसी विचार को ग्रहण करने का साहस किया है यद्यपि अभी मेरी आयु बीस वर्ष की भी नहीं है।"

केवल बीस वर्ष की आयु में ही **कॉम्ट** को उस समय के सर्वप्रमुख दार्शनिक **सेंट साइमन** के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दोनों का घनिष्ठ सम्पर्क सन् 1818 से लेकर सन् 1824 तक बना रहा। कहा जाता है कि **सेंट साइमन** के विचारों का **कॉम्ट** पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा और कुछ विचार जो कि **कॉम्ट** की महान् कृतियों में हमें संशोधित तथा परिवर्द्धित रूप में देखने को मिलते हैं, **सेंट साइमन** के मस्तिष्क की ही उपज थी। परन्तु

नोट

कॉम्ट, सेंट साइमन के अनुयायी थे, यह सोचना शायद उचित न होगा; फिर भी **विस्काउंट मार्ले** के विचारानुसार, कॉम्टीस्ट विचारधारा को **सेंट साइमन** की दो स्पष्ट देन हैं—**प्रथम** तो यह कि विज्ञानों का एक वैज्ञानिक वर्गीकरण अति आवश्यक है और दूसरा यह कि दर्शन का वास्तविक ध्येय सामाजिक होना चाहिए और सामाजिक विचारकों का उचित उद्देश्य नैतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं का पुनर्संगठन। परन्तु इसका तात्पर्य न यह हो कि **कॉम्ट** की समस्त विचारधारा **सेंट साइमन** द्वारा प्रभावित थी और न यह कि **कॉम्ट** की महान् बौद्धिक सफलताएँ **सेंट साइमन** के कारण ही सम्भव हुईं। इसका कारण भी स्पष्ट था और वह यह कि **सेंट साइमन** की विचारधारा में क्रमबद्धता का अभाव था जबकि **कॉम्ट** अपनी विचारधारा में यथार्थता, सुतथ्यता तथा तार्किकता पर अत्यधिक बल देते थे।

कुछ विद्वानों का मत था कि **कॉम्ट** के ग्रन्थों तथा जीवन में एकरूपता का पर्याप्त अभाव था। बहुत-से लोग ऐसे हैं जिन्होंने कि **कॉम्ट की** *Positive Philosophy* का हृदय से स्वागत किया परन्तु *Positive Polity* की उतनी ही निंदा की। जैसाकि पहले कहा गया है, **जॉन स्टुअर्ट मिल** का यह निश्चित मत था कि प्रथम कृति के सृजन के पश्चात् ही **कॉम्ट** की असाधारण प्रतिभा और क्षमता का विनाश प्रारंभ हो रहा था। दूसरे शब्दों में, *Positive Polity* में **कॉम्ट** उस वैज्ञानिक स्तर पर स्थिर न रह सके जिस पर कि *Positive Philosophy* को उन्होंने आधारित किया था। परन्तु स्वयं **कॉम्ट** इस मत का खंडन करते हैं। उनका कथन है कि उनकी समस्त विचारधाराओं में कहीं भी कोई खाई नहीं है, न ही उनमें एकरूपता का कुछ भी अभाव है। उनके मतानुसार *Philosophy* और *Polity* इन दोनों ग्रंथों की रचना एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई थी; प्रथम ग्रंथ में नींव डाली गई है और दूसरे में वास्तविक निर्माण-कार्य। **कॉम्ट** का कथन है कि पहले से ही उनका उद्देश्य एक नवीन 'आध्यात्मिक शक्ति' की खोज़ करना था। इस खोज़ में सफलता पाने के लिए या इस 'सामाजिक उद्देश्य' की पूर्ति के लिए बौद्धिक तैयारियाँ (Intellectual preparations) परमावश्यक थी। इसलिए उन्होंने *Positive Philosophy* में विभिन्न विज्ञानों से उपबंध होने वाली सामग्रियों को सर्वप्रथम इकट्ठा किया और इस प्रकार जब एक सैद्धान्तिक नींव पड़ गई तब *Positive Polity* में उन सामग्रियों के व्यावहारिक उपयोग की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। इस प्रकार **कॉम्ट** के मतानुसार, ये दोनों ग्रंथ एक-दूसरे से भिन्न नहीं, अपितु एक-दूसरे के पूरक हैं। **कॉम्ट** के इस आत्म-मूल्यांकन से वे सभी विद्वान सहमत हैं जिन्होंने कि उनके जीवन तथा ग्रंथों का अधिक सावधानी से अध्ययन किया है। इस सम्बन्ध में **प्रोफेसर लेवी-ब्रुह्ल, हॉकिंस, बार्न्स** तथा **बीकर** आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। **बार्न्स** तथा **बीकर** का मत है कि *Positive Philosophy* में **कॉम्ट** के सैद्धांतिक मतों की अधिक विस्तृत विवेचना तथा प्रत्यक्ष या वैज्ञानिक आधार पर मित्रराष्ट्र के निर्माण में उन सिद्धांतों के व्यावहारिक प्रयोग के सम्बन्ध में उनके विचार विशद् रूप में मिलते हैं। इन विद्वानों के मतानुसार *Positive Polity* निस्संदेह ही आवश्यक शब्दों से अत्यधिक बोझिल तथा नीरस ग्रंथ है, फिर भी *Positive Philosophy* की तुलना में इसमें **कॉम्ट** के प्रायः सभी प्रमुख स्वीकृत सिद्धांत या अवधारणाएँ कहीं अधिक परिपक्व और परिपुष्ट रूप में मिलती हैं।

> *क्या आप जानते हैं* ऑगस्ट कॉम्ट ने सन् 1839 में सर्वप्रथम सोशियोलॉजी (Sociology) शब्द का प्रयोग किया था।

इस असाधारण प्रतिभा और क्षमतासम्पन्न सामाजिक विचारक **कॉम्ट** की मृत्यु सन् 1857 में हुई थी, परन्तु उनके अथक परिश्रम तथा विचारों की मृत्यु न हुई है और न होगी। समाजशास्त्र आज जो कुछ है वह शायद इसी कारण है कि **कॉम्ट** अपने जीवन तथा परिश्रम से इस विज्ञान की नींव को सींचकर उसे इतना दृढ़ बना गए हैं कि वह फिर हिला नहीं, टूटा नहीं और धँसा नहीं।

नोट

टास्क कॉम्ट के विचार तत्कालीन पुनर्जागरण से कितने प्रभावित थे?

हैरी एल्मर बार्न्स ने लिखा है, "कॉम्ट के सामाजिक दर्शन के प्रमुखतम विद्यार्थीगण सामान्यत: यह स्वीकार करते हैं कि नए और मौलिक सामाजिक सिद्धांतों के विकास की अपेक्षा उनकी (**कॉम्ट** की) प्रमुख देन उनकी समन्वय तथा संगठन की असाधारण योग्यता में थी।" **बार्न्स** ने इसे प्रमाणित करते हुए लिखा है कि **कॉम्ट** ने **अरस्तु** से लेकर **सेंट साइमन** तक के सामाजिक दर्शन के लेखकों से बहुत कुछ ग्रहण किया। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। **अरस्तु** से उन्होंने सामाजिक संगठन के आधार के सम्बन्ध में अपने बुनियादी विचार को प्राप्त किया। सामाजिक संगठन का यह आधार है कार्यों का वितरण और प्रयत्नों का सम्मिलन और भी स्पष्ट रूप में, सामाजिक संगठन तभी सम्भव है जबकि सामाजिक जीवन में कार्यों का समुचित वितरण हो और समाज के सदस्य अपने-अपने प्रयत्नों को इस रूप में मिलकर करें कि समाज का संगठन बना रहे, अर्थात् सामाजिक संगठन के बने रहने के लिए दो-चार सदस्यों के प्रयत्न ही पर्याप्त नहीं हैं, आम जनता या सदस्यों की प्रयत्नशीलता आवश्यक है। इसी आधार पर **कॉम्ट** ने सामाजिक सावयव की धारणा को विकसित किया है जिसकी विवेचना हम आगे करेंगे। उसी प्रकार **ह्यूम, कांट** तथा **गॉल** से **कॉम्ट** ने सामाजिक घटनाओं की अध्ययन-पद्धति के रूप में प्रत्यक्षवाद की अवधारणा को ग्रहण किया। **ह्यूम, कांट** तथा **टुर्गोट** से आपने अपने ऐतिहासिक निर्णायकवाद के विचार तथा **बुसे, विको** तथा **द मैस्त्री** से इतिहास की नियतिशासित व्यवस्था के बहुत-कुछ असम्बद्ध सिद्धांत को ग्रहण किया। इतना ही नहीं, **टुर्गोट, कौंडरसेट, बूर्दिन** तथा **सेंट साइमन** से **कॉम्ट** ने मानव-जाति के बौद्धिक विकास के तीन स्तरों के प्रसिद्ध नियम को प्राप्त किया। इस नियम की विस्तृत विवेचना हम आगे करेंगे।

नोट्स **कॉम्ट** ने समाजशास्त्र को एक आधारभूत तथा निर्देशक विज्ञान के रूप में स्वीकृत किया है। उनकी यह स्वीकृति **सेंट पीयर, मॉण्टेस्क्यू, कौंडरसेट** तथा **सेंट साइमन** के विचारों से प्रभावित है।

कॉम्ट अपनी विचारधारा को नया और मौलिक रूप देने के विषय में उतना अधिक सचेत न रहकर इस बात के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे कि उनके पहले के विचारकों के विचारों को इस प्रकार समन्वित तथा संगठित किया जाए कि उन्हें एक वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो जाए, और उस वैज्ञानिक आधार पर सुप्रतिष्ठित रहते हुए समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन कर सके जिससे कि सामाजिक संगठन, सुव्यवस्था और प्रगति सम्भव हो।

कॉम्ट की आधारभूत पद्धतिशास्त्रीय स्थिति यह है कि यदि भविष्य में मानव-ज्ञान का विस्तार होता है, तो वह निरीक्षण-परीक्षण की तुलना की वैज्ञानिक पद्धति के सहारे ही सम्भव होगा। यह ज्ञान वह आधार होगा जिसके अनुरूप समाज के सदस्यों में बौद्धिक तथा नैतिक एकता पनप सकेगी और उस एकता के आधार पर समाज का संगठन व पुनर्निर्माण सरल होगा।

विज्ञानों के वर्गीकरण का जो विचार **कॉम्ट** को **सेंट साइमन** से मिला था उसी आधार पर आपने विज्ञानों का एक संस्तरण प्रस्तुत किया। यह संस्तरण गणितशास्त्र से प्रारंभ होता है और खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और प्राणीशास्त्र से गुजरकर समाजशास्त्र के नए विज्ञान पर पहुँचकर खत्म होता है। इस संस्तरण के सम्बन्ध में हम आगे विस्तृत विवेचन करेंगे।

अरस्तु के सामाजिक संगठन के आधार के सम्बन्ध में जिस विचार को **कॉम्ट** ने ग्रहण किया उसी का परिणाम है उनकी ***'समाज की सावयवी अवधारणा'***। यद्यपि आपने इस अवधारणा की कोई बहुत अधिक व्याख्या नहीं की

है, फिर भी सावयवी सिद्धांत की वास्तविकता को स्पष्टत: स्वीकार किया है। **कॉम्ट** के अनुसार, समाज एक सामूहिक सावयव है न कि एक वैयक्तिक सावयव या पौधा, और उस समाज का प्राथमिक सावयव गुण है सार्वभौमिक ऐकमत्य। सावयव और समाज दोनों में ही संरचना और कार्य का मेल देखा जाता है जो कि इसके भागों के बीच आपस में और वातावरण पर क्रिया और प्रतिक्रिया के द्वारा समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है। यह सन्तुलित विकास मानव-समाज में अपनी उच्चतम अवस्था में पहुँचता है जो कि सावयवी विकासवाद का अन्तिम चरण है। **कॉम्ट** के मतानुसार समाज की विभिन्न इकाइयों के कार्यों का बढ़ता हुआ विशेषीकरण सामाजिक प्रगति का लक्षण है। यह कहकर आपने इस विषय पर **स्पेन्सर** के विचारों को पहले से ही समन्वित कर लिया। **कॉम्ट** ने यह स्वीकार किया है कि सामाजिक व्यवस्था का अन्तर्निहित आधार कार्यों के वितरण और प्रयत्नों के मेल का सिद्धान्त अरस्तु का है, यद्यपि सम्भवत: यह अधिक सही है कि यह प्लेटो से लिया गया है। कार्यों का वितरण उचित ढंग से होने पर ही सामाजिक व्यवस्था कायम रहती है और प्रयत्नों के मेल से ही सामाजिक प्रगति सम्भव होती है। इसीलिए **कॉम्ट** के अनुसार, 'समाजशास्त्र विशिष्ट रूप से सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।'

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कॉम्ट का कथन है कि पहले से ही उनका उद्देश्य एक नवीन .... की खोज करना था।
2. कॉम्ट के इस .... से वे सभी विद्वान सहमत हैं जिन्होंने कि उनके जीवन तथा ग्रंथों का अधिक सावधानी से अध्ययन किया।
3. इन विद्वानों के मतानुसार .... ही आवश्यक शब्दों से अत्यधिक बोझिल तथा नीरस ग्रंथ है।

2.2 सारांश (Summary)

- समाजशास्त्र के जनक-**ऑगस्ट कॉम्ट।**
- समाजशास्त्र का प्रारम्भिक नाम सामाजिक भौतिकी (Social Physics) **कॉम्ट** द्वारा ही प्रतिपादित।
- **कॉम्ट** ने स्वयं ही 'सामाजिक भौतिकी' नाम को बदलकर समाजशास्त्र कर दिया।
- **कॉम्ट** की विचारधारा पर सेंट साइमन का अत्यधिक प्रभाव।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रत्यक्षवाद (Positivism):** एक ऐसा सिद्धान्त जिसमें वैज्ञानिक विधि से घटनाओं का अवलोकन एवं वर्गीकरण करके एक सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित करने की कोशिश की जाती है।

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. **ऑगस्ट कॉम्ट** के बौद्धिक विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा?
2. **कॉम्ट** के विचार **सेंट साइमन** से कैसे प्रभावित थे?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आध्यात्मिक शक्ति 2. आत्म-मूल्यांकन 3. निस्संदेह।

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक–दोषी एवं जैन।

नोट

इकाई–3 : उद्‌विकास एवं प्रगति के सिद्धान्त (Theory of Evolution and Progress)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 उद्‌विकास का सिद्धांत (Theory of Evolution)

3.2 सारांश (Summary)

3.3 शब्दकोश (Keywords)

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- ऑगस्ट कॉम्ट के उद्‌विकासीय सिद्धान्त को समझना।
- मानव समाज के चिन्तन-स्तर में विकास की प्रक्रिया को जानना।
- मानव-चिन्तन के विभिन्न स्तरों को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

ऑगस्ट कॉम्ट यह जानना चाहते थे कि पेड़ पर रहने वाले बन्दरों से लेकर आज तक के समय मनुष्य ने जो लम्बी यात्रा की है, उसके पीछे के नियमों की खोज़ की जाए।

उन्होंने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि जिस तरह मनुष्य के मस्तिष्क का विकास हुआ है, ठीक उसी तरह समाज के मस्तिष्क (Mind of society) का विकास भी हुआ है। **कॉम्ट** मनुष्य के शरीर को अपने उदाहरण के रूप में रखते हैं। बच्चे का शैशवकाल होता है, किशोरावस्था आती है और वह वयस्क अवस्था में पहुँचता है। कुछ इसी तरह मनुष्य के ज्ञान का भी विकास हुआ है और ठीक ऐसे ही समाज के मस्तिष्क यानी समाज का भी विकास हुआ है।

नोट

3.1 उद्विकास का सिद्धांत (Theory of Evolution)

मानव-चिन्तन की तीन अवस्थाओं धार्मिक अवस्था (Theological stage), तात्त्विक अवस्था (Metaphysical stage), एवं वैज्ञानिक अवस्था (Positivistic stage), में प्रत्येक से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार के सामाजिक संगठन का भी उल्लेख **कॉम्ट** ने किया है। दूसरे शब्दों में, **कॉम्ट** के मतानुसार, मानव-चिन्तन के स्तर और सामाजिक संगठन में एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और इसलिए मानव-चिन्तन के प्रत्येक स्तर पर एक विशेष प्रकार का सामाजिक संगठन पाया जाता है जो कि ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार निम्न प्रकार का है–

(1) जब मानव-ज्ञान धार्मिक अवस्था पर होता है तब प्रत्येक चीज की भाँति सामाजिक जीवन तथा संगठन को भी ईश्वरीय इच्छा के प्रतिरूप माना जाता है। इस स्तर पर समाज का स्वरूप-संबंधी उल्लेखनीय सिद्धान्त 'ईश्वरीय सिद्धान्त' होता है। इसके अनुसार समाज की उत्पत्ति और अस्तित्व ईश्वर की इच्छा से है। इसी कारण राजनीतिक सत्ता ईश्वरीय अधिकार पर आधारित होती है। राजा को ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिनिध माना जाता है और इसलिए यह माना जाता है कि राजा ईश्वर के समस्त आदेशों को उचित या अनुचित का विचार न करते हुए सबको मानना चाहिए। इस दृष्टि से राजा प्रत्येक प्रकार के कार्य को कर सकता है; पर उसके लिए वह ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा, न ही कोई उसके कार्य को सन्देह की दृष्टि से देख सकता है। चूँकि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है, इस कारण उसके शब्द ही कानून हैं और चूँकि इस प्रकार के कानून के पीछे ईश्वरीय अभिमति होती है इसलिए किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि कानूनों के उचित-अनुचित का विचार करे। इन कानूनों का उल्लंघन ईश्वरीय कानूनों की अवहेलना मानी जाती है और वे ईश्वरीय अदालत में कठोरतम दंड़ के भागी होंगे जो कि पृथ्वी पर राजा के द्वारा दिए जाते हैं।

नोट्स बाइबिल के मतानुसार, स्वर्ग में अच्छे और बुरे ज्ञान के वृक्ष के निषिद्ध फल तोड़ने और उसे खाने के कारण ही आदम और ईव स्वर्ग से निकाले गए थे। यही मनुष्य-जाति का आदि अपराध है।

इस स्तर पर अनेक लोक-गाथाओं के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है और लोगों को चुपचाप मानना भी पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें ईश्वरीय दंड को भोगना पड़ता है।

(2) तात्त्विक स्तर पर सामाजिक संगठन और राज्य-शक्ति के स्वरूपों में परिवर्तन होता है। ईश्वरीय अधिकार की अवधारणा को त्यागकर प्राकृतिक अधिकारों को अपनाया जाता है इसी के आधार पर मनुष्यों का राजनीतिक सम्बन्ध निर्धारित तथा नियमित होता है। इस स्तर का सामाजिक संगठन प्रथम स्तर से अधिक प्रगतिशील होता है। इस स्तर पर राजकीय शक्ति की निरंकुश सत्ता घट जाती है और उसके स्थान पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अवधारणा का बीजारोपण होता है। परन्तु चूँकि यह स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति के लिए नवीन होती है, इस कारण दुरुपयोग होना स्वाभाविक है। फलस्वरुप इस स्तर में भूतकाल के अनेक अन्धविश्वासों के नष्ट होने और वैज्ञानिक स्तर के लिए एक आरम्भिक नींव पड़ने पर भी रक्तपात और अराजकता का ही बोलबाला रहता है। इस स्तर पर पुरोहितवाद का भी विकास होता है। उदाहरणार्थ, दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी के संघ सर्वथा विशुद्ध है और इसी कारण राज्य की तुलना में उसका स्थान श्रेष्ठ और पवित्र है। "पोप का दावा था कि सेंट पीटर को इस लोक और परलोक दोनों में मनुष्यों को बद्ध और मुक्त करने का अधिकार मिला था। पोप सेंट पीटर का प्रतिनिधि है और इस कारण उसे भी ये अधिकार प्राप्त हैं। संसार या लोक में बद्ध और मुक्त करने के अधिकार का यह अभिप्राय है कि सत्ता लौकिक विषयों में भी सर्वोच्च है, पर उसे उसने स्वयं अपने हाथ में न रखकर सम्राट को हस्तान्तरित कर दिया है। अतएव सम्राट् को जो कुछ अधिकार मिले हैं वे सीधे ईश्वर से न मिलकर पोप से प्राप्त हुए हैं। इस कारण सम्राट् का पद पोप के पद से नीचे और उसके अधीन है।"

नोट

क्या आप जानते हैं **कॉम्ट** ने जो कुछ कहा है वह केवल उद्‌विकासवादी परम्परा के अनुरूप है। इस अर्थ में **कॉम्ट** उद्‌विकासवादी विचारधारा के समर्थक थे।

टास्क **कॉम्ट** के मानव-चिन्तन के उद्‌विकास संबंधी विचारों से आप कहाँ तक सहमत हैं?

(3) तीसरा स्तर, **प्रत्यक्ष स्तर** (Positive Stage), पहले के दो स्तरों से बहुत भिन्न होता है। उपर्युक्त दो अवस्थाओं में समाज-व्यवस्था या सामाजिक संगठन का आधार या तो आध्यात्मिक विश्वास या अबौद्धिक प्रणालियाँ होती हैं, परन्तु इस तीसरे स्तर की व्यवस्था का आधार वैज्ञानिक ज्ञान या निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग की व्यवस्थित कार्य-प्रणाली होती है। इसका एक कारण यह है कि इस अवस्था के विचारकों के विचार में उन्मुक्त तर्क की उड़ान या बुद्धिवाद झलकता है। ये विचारक घटनाओं के अन्तिम कारणों को ढूँढ़ने के चक्कर में नहीं पड़ते और न ही अधिकारों की अमूर्त व्याख्या करने में अपना समय गँवाते हैं। वे अपने को वहीं तक सीमित रखते हैं जहाँ तक अनुभव और निरीक्षण का क्षेत्र है। इस प्रकार यह स्तर विज्ञान के अधिकाधिक विकास के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और इसमें इसी कारण औद्योगिक युग का प्रादुर्भाव होता है। इस स्तर में नए आविष्कार करने की ओर प्रवृत्ति बढ़ती है और लोकतन्त्रात्मक राज्य-संगठन का बोलबाला होता है। वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग सम्भव होता है। इन सब परिवर्तनों से अनेक लाभ होते हैं, जैसे समाज के सदस्यों का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता है, काल्पनिक किला बनाने में समय की बर्बादी कम से कम की जाती है, शिक्षा का पुनर्संगठन होता है, समाजिक पुनर्निर्माण की प्रत्यक्षवादी योजना को कार्यान्वित किया जाता है, मित्र राष्ट्र की स्थापना सम्भव होती है, मानवता के धर्म का विकास होता है, इत्यादि। इस प्रकार, संक्षेप में, समाज में भौतिक बौद्धिक तथा शक्तियों का एक उत्तम सामंजस्य होता है। जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण सामाजिक संगठन सुव्यवस्थित तथा प्रत्यक्ष होता है। मानव-सभ्यता के विकास का यह एक उत्तम स्तर है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

1. ……… स्तर पर सामाजिक संगठन और राज्य-शक्ति के स्वरूपों में परिवर्तन होता है।
2. ……… अधिकार की अवधारणा को त्यागकर प्राकृतिक अधिकारों को अपनाया जाता है।
3. इस स्तर में भूतकाल के अनेक ……… के नष्ट होने और वैज्ञानिक स्तर के लिए एक आरंभिक नींव पड़ने पर भी रक्तपात और अराजकता का ही बोलबाला रहता है।

3.2 सारांश (Summary)

- **कॉम्ट** के अनुसार, हमारे ज्ञान की शाखाएँ तीन विभिन्न सैद्धान्तिक दशाओं से गुजरती हैं–
  1. धार्मिक या कल्पित अवस्था।
  2. तात्त्विक या अमूर्त अवस्था, और
  3. प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक अवस्था।
- समाज का विकास मानव मस्तिष्क के विकास की तरह ही तीन अवस्थाओं से गुजरते हुए होता है।

नोट

3.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक उद्विकास (Social Evolution):** उद्विकासवादियों की मान्यता है कि सभी समाज एवं संस्कृतियों का विकास एक निश्चित क्रम एवं अवस्था में होता है। विकास का यह क्रम चिरन्तन काल से सरलता से जटिलता, समानता से विभिन्नता तथा अनिश्चितता से निश्चितता की ओर चलता है।

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. **ऑगस्ट कॉम्ट** के मानवीय उद्विकास संबंधी सिद्धान्त को विस्तार से समझायें।
2. मानव-चिन्तन की कौन-सी तीन अवस्थाएँ हैं?
3. राजा को किसका प्रत्यक्ष प्रतिनिधि माना जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. तात्विक   2. ईश्वरीय   3. अन्धविश्वासों।

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र–NCERT (11 वीं एवं 12 वीं कक्षा)।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।
3. सामाजिक विचारक–दोषी जैन।

नोट

इकाई–4 : तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages)

4.2 सारांश (Summary)

4.3 शब्दकोश (Keywords)

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- **ऑगस्ट कॉम्ट** के तीन स्तरों के नियम को जानना।
- तीन स्तरों के अन्तर्गत धार्मिक, तात्विक एवं प्रत्यक्ष स्तर के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी।
- तीन स्तरों के नियम के आधार पर समाज के विकास की व्याख्या प्रस्तुत करना।

प्रस्तावना (Introduction)

विकास के ये नियम सम्पूर्ण समाज से जुड़े हुए हैं। जब धार्मिक अवस्था में समाज होता है तब राजा-महाराजा सेना और पुरोहितों का प्रभाव अधिक होता है। अर्थात् मस्तिष्क के विकास का जो स्तर होगा, उसी के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था भी होगी। जब मस्तिष्क तात्विक अवस्था में आता है तब उनकी सोच बदल जाती है और वह किसी भी तरह के प्रभुत्व को नकारने लगता है। जब मनुष्य का विकास वैज्ञानिक अवस्था में पहुँचता है, तब वह प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर कसता है। वह ईश्वर के अस्तित्व को भी चुनौती देता है।

4.1 तीन स्तरों का नियम (Law of Three Stages)

सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में **कॉम्ट** का तीन स्तरों का नियम एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। सन् 1822 में ही इन्होंने इस नियम को प्रतिपादित किया था कि मानव के बौद्धिक विकास का अध्ययन करने पर यह स्पष्टत: पता चलता है कि इस क्रम-विकास के तीन स्पष्ट स्तर रहे हैं।

नोट

ये स्तर निम्न हैं–

(1) धार्मिक स्तर (Theological Stage);

(2) तात्त्विक स्तर (Metaphysical Stage);

(3) वैज्ञानिक या प्रत्याक्षात्मक (Scientific or Positive Stage)।

कॉम्ट ने लिखा है, "सभी समाजों में और सभी युगों में मानव के बौद्धिक विकास का अध्ययन करने से उस महान् आधारभूत नियम का पता चलता है जिसके अधीन मनुष्य की बुद्धि आवश्यक रूप से होती है और जिसका एक ठोस प्रमाण हमारे संगठन के तथ्यों तथा हमारे ऐतिहासिक अनुभवों दोनों में विद्यमान है। यह नियम इस प्रकार है: हमारी प्रत्येक प्रमुख अवधारणा, हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा, एक के बाद एक तीन विभिन्न सैद्धान्तिक दशाओं से होकर गुजरती है-धार्मिक अथवा काल्पनिक अवस्था, तात्त्विक अथवा अमूर्त अवस्था और वैज्ञानिक अथवा प्रत्यक्ष अवस्था।"

"धार्मिक अवस्था में सृष्टि की आवश्यक प्रकृति की खोज़ करने में या प्राकृतिक घटनाओं के घटित होने के सर्वप्रमुख तथा अन्तिम कारणों (उत्पत्ति तथा उद्देश्य) को जानने के प्रयत्न में मनुष्य का मस्तिष्क यह मान लेता है कि समस्त घटनाएँ अलौकिक प्राणियों की तात्कालिक क्रियाओं का परिणाम हैं।"

"तात्त्विक अवस्था में, जो कि प्रथम अवस्था का एक संशोधन मात्र है, मनुष्य का मस्तिष्क यह मान लेता है कि अलौकिक प्राणी नहीं बल्कि अमूर्त शक्तियाँ, जो कि सभी जीवों में अन्तर्निहित होती हैं, समस्त घटनाओं को उत्पन्न करती है।"

"अन्तिम अथवा प्रत्यक्ष अवस्था में मनुष्य का मस्तिष्क निरपेक्ष धारणाओं, विश्व और उत्पत्ति और लक्ष्य तथा घटनाओं के कारणों की व्यर्थ खोज़ को त्याग देता है और उनके नियमों के, अर्थात् उनके अनुक्रम तथा समरूपता के विचार सम्बन्धों के अध्ययन में लग जाता है। सम्मिलित रूप से तर्क तथा निरीक्षण इस ज्ञान का साधन है। 'तथ्यों की व्याख्या'-इस कथन में जो कुछ आज हम समझते हैं वह केवल सामान्य तथ्यों के बीच सम्बन्ध की स्थापना मात्र है, इन सामान्य तथ्यों की संख्या विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ निरन्तर घटती चली जाती है।"

'तीन स्तरों के नियम' की व्याख्या **कॉम्ट** के उपर्युक्त कथन से ही पर्याप्त स्पष्ट है, फिर भी उनके द्वारा उल्लेखित मानव-ज्ञान के या मानव के बौद्धिक विकास के तीन स्तरों को और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझाया जा सकता है–

1. धार्मिक स्तर (Theological Stage)-इस स्तर में समस्त चीजों को ईश्वर के प्रतिरूप के रूप में या किन्हीं अलौकिक प्राणियों की तात्कालिक क्रियाओं के परिणाम के रूप में देखा, माना या समझा जाता है। धारणा यह होती है कि समस्त चीजों का कार्य-रूप अलौकिक शक्तियाँ (देव-देवी या आत्मा) हैं तथा समस्त वस्तुओं में वही शक्ति व्याप्त है। पेड़-पौधे, जल-प्रवाह, चर-अचर आदि सभी में वही शक्ति क्रियाशील है। प्राकृतिक घटनाओं के घटित होने में, इस स्तर पर मानव को केवल एक ही कारण दिखाई देता है और वह कारण है देवी-देवता या ऐसी ही अन्य अलौकिक शक्ति। यह विचार ठीक है या गलत, यह दूसरी बात है, परन्तु इस स्तर पर इसी रूप में अपने आसपास के विषय में मनुष्य सोचता है और मानव तथा पशु में इसी चिन्तन करने की शक्ति के आधार पर एक महान् अन्तर हो जाता है। **कॉम्ट** के अनुसार इस स्तर के भी तीन उप-स्तर हैं–

नोट्स ऑगस्ट कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है।

नोट

(क) जीवित-सत्तावाद (Fetichism);

(ख) बहु-देवत्ववाद (Polytheism);

(ग) अद्वैतवाद (Monotheism)।

(क) प्रथम उप-स्तर पर प्रत्येक चीज में एक जीवित सत्ता का अनुभव किया जाता है और उसी के अनुसार अनेक जादू-टोनों पर विश्वास किया जाता है।

(ख) द्वितीय उप-स्तर पर मनुष्यों का मस्तिष्क अधिक सुसंगठित होता है, इस कारण अनेक देवता व जादू-टोनों आदि से मानव परेशान हो जाता है और उन्हें सम्मिलित रूप से देखने की भावना उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित एक-एक देवी-देवता का जन्म होता है। यही बहु-देवत्ववाद का स्तर है क्योंकि इसमें अनेक देवताओं पर विश्वास किया जाता है जो कि जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ग) परन्तु इन अनेक देवी-देवताओं के कारण भी मानसिक उलझनें बनी रहती हैं। इसी कारण मनुष्य अपने समस्त चिन्तन को या श्रद्धा, विश्वास को अनेक देवी-देवताओं में न बाँटकर किसी एक ईश्वर पर अपनी समस्त श्रद्धा, विश्वास आदि को न्यौछावर करने के लिए उन्मुख होता है। यही अद्वैतवाद की स्थिति है जबकि यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक घटना या वस्तु का कारण किसी एक देवता का कार्य है। दूसरे शब्दों में, अद्वैतवाद में यह विश्वास स्पष्ट होता है कि ईश्वर केवल एक है और समस्त वस्तु या घटना उसी एक ईश्वर की सृष्टि है। जैसे-जैसे मानव का दृष्टिकोण व्यापक और चिन्तन-शक्ति गहन और गम्भीर होती है, वैसे-ही-वैसे अद्वैतवाद की अवधारणा भी अधिक स्पष्ट और दृढ़ होती है। धार्मिक स्तर का अद्वैतवाद चरम स्तर है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सभी समाजों में और सभी युगों में मानव के ········ का अध्ययन करने से उस महान् आधारभूत नियम का पता चलता है।
2. हमारी प्रत्येक प्रमुख अवधारणा, हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा, एक के बाद एक तीन विभिन्न ········ दशाओं से होकर गुजरती है।
3. उनके अनुक्रम तथा समरूपता के ········ के अध्ययन में लग जाता है।

2. तात्त्विक स्तर (Metaphysical Stage)-इस स्तर पर ईश्वर की वैयक्तिक शक्ति को धारणा का लोप होता है। ईश्वर का चिन्तन व्यक्ति के रूप में न होकर एक अमूर्त शक्ति के रूप में होता है। जो कुछ भी संसार में हो रहा है वह एक व्यक्ति के रूप में ईश्वर के कारण नहीं वरन् एक अदृश्य या निराकार व्यक्ति के कारण है या हो रहा है। इस शक्ति का अस्तित्व है, परन्तु इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति-विशेष या किसी शरीर-विशेष से नहीं है। उस अमूर्त, निराकार शक्ति के आधार पर जो कुछ भी हो रहा है वह शाश्वत है और स्वयं पूर्ण है। इस स्तर की कोई विशिष्ट विशेषता उल्लेखनीय नहीं है क्योंकि यह स्तर धार्मिक और प्रत्यक्षात्मक स्तर के बीच का स्तर है।

3. वैज्ञानिक या प्रत्यक्षात्मक स्तर (Scientific or Positive Stage)-तात्त्विक विचार शाश्वत या स्वयं पूर्ण हो सकता है, पर वास्तविक तर्कों तथा तथ्यों पर आधारित नहीं हो सकता। जब व्यक्ति तात्त्विक विचारों को छोड़कर निरीक्षण और तर्क के आधार पर इस संसार की घटनाओं को समझने और परिभाषित करने में लगता है तब भी वैज्ञानिक या प्रत्यक्षात्मक स्तर में उसका प्रवेश होता है। **कॉम्ट** का कथन है कि तर्क और निरीक्षण सम्मिलित रूप में वास्तविक ज्ञान का आधार हैं। जब हम किसी घटना की व्याख्या करते हैं तो कुछ सामान्य तथ्यों और उस घटना-विशेष के बीच सम्बन्ध ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। यह अन्वेषण निरीक्षण के द्वारा ही यथार्थ हो सकता है। निरीक्षण ही प्रमाण है क्योंकि वह वास्तविक है, न कि काल्पनिक। **कॉम्ट** के अनुसार, विश्व के विभिन्न तथ्यों,

घटनाओं आदि को समझने का वास्तविक तथा निर्भर-योग्य साधन निरीक्षण और वर्गीकरण ही है। प्रत्यक्षात्मक स्तर पर मनुष्य इसीलिए न तो काल्पनिक किला बनाता है और न ही तात्त्विक दृष्टि में संसार के विभिन्न तत्त्वों, को देखने का प्रयास करता है। इस स्तर पर ज्ञान का संग्रह ही एकमात्र साध्य (end) या अन्तिम उद्देश्य है।

क्या आप जानते हैं पॉजिटिव फिलोसोफी, पॉजिटिव-पॉलिटी, सिस्टम एवं पॉजिटिव-पॉलिटी कॉम्ट की प्रमुख कृतियाँ हैं।

मानव-ज्ञान अथवा चिन्तन के उक्त तीन चरणों की विवेचना करते हुए **कॉम्ट** इस सत्य को भूल नहीं जाते हैं कि इन तीनों स्तरों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दों में, ये तीनों स्तर एक-दूसरे से पूर्णतया परे हैं अथवा एक स्तर के बाद ही दूसरे स्तर का अविर्भाव होता है, यह सोचना उचित न होगा। हो सकता है कि वे एक ही समाज में या एक ही मस्तिष्क में साथ-साथ पाये जाते हों। धार्मिक विषयों में हम धार्मिक स्तर पर हों, जीवन के आदर्शों के सम्बन्ध में तात्त्विक स्तर पर और जीवित रहने के साधनों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक स्तर पर। इन तीनों स्तरों का अनोखा समन्वय भारतीय समाज में मिलता है। उदारहणार्थ, हिन्दू-विवाह आज भी धार्मिक स्तर पर है और हिन्दू लोग विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में मानते हैं। गाँधीजी की सत्याग्रह, अहिंसा अथवा 'अल्लाह-ईश्वर एक ही नाम' की वाणी प्राथमिक रूप में दार्शनिक है जबकि भारतीय पंचवर्षीय योजनाएँ प्रत्यक्ष स्तर की परिचायक हैं। अत: मानव-चिन्तन अथवा ज्ञान के तीनों स्तर पूर्णतया पृथक् नहीं हैं। **कॉम्ट** की इस विचारधारा को एक अन्य उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया जाता है। जैसे एक वैज्ञानिक है जो कि अन्य सभी विषयों में विज्ञान पर या वैज्ञानिक पद्धति पर विश्वास करता है, परन्तु यदि उसके इकलौते बेटे की मृत्यु हो जाती है तो हो सकता है कि वह वैज्ञानिक ढंग से अपने-आपको सान्त्वना न दे सके। ऐसे अवसरों पर उसके लिए तात्त्विक विचारों का सहारा लेना अधिक उचित होगा और वह यह सोचकर कि 'संसार में मिलन और विरह, सुख-दु:ख दोनों को ही सहना पड़ता है' या धार्मिक आधार पर यह निष्कर्ष निकालकर कि 'ईश्वर जो कुछ भी करता है हमारी भलाई के लिए ही करता है' अपने को धीरज दे सकता है या देता है। अत: स्पष्ट है कि मानव-ज्ञान या चिन्तन की उपर्युक्त तीनों अवस्थाएँ एक ही समाज में या एक ही मस्तिष्क में साथ-साथ पाई जा सकती है। **कॉम्ट** ने इस सत्य को कदापि न भूलने पर अत्यधिक बल दिया है क्योंकि उनका कथन है कि इस सत्य को भूल जाने पर ही इस तीन स्तर के महान् नियम के सम्बन्ध में कोई आपत्ति या इसकी कोई आलोचना सम्भव हो सकती है, अन्यथा कदापि नहीं। सन् 1839 में इस नियम के सम्बन्ध में **कॉम्ट** ने लिखा था, "प्रत्येक प्रकार से इस पर विचार-विमर्श तथा हर तरह से इसकी परीक्षा करते हुए सत्रह वर्ष का निरन्तर गहन चिन्तन मुझे पहले से ही इस महान् विषय के सम्बन्ध में, बिना किसी वैज्ञानिक हिचक के, वह घोषणा करने का अधिकार देता है कि हम सदैव ही इस ऐतिहासिक धारणा को परिपुष्ट और स्थिर पाएँगे; प्राकृतिक दर्शनशास्त्र के अन्य विभागों में वास्तव में मान्य किसी भी सामान्य तथ्य की भाँति मुझे तो अब यह धारणा भी पूर्णतया प्रमाणित ही प्रतीत होती है।"

टास्क **कॉम्ट** के तीन अवस्थाओं वाले सिद्धान्त को उद्‌विकासीय या रेखीय सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?

4.2 सारांश (Summary)

- **कॉम्ट** ने सामाजिक परिवर्तन की व्यवस्था निश्चित चरणों, सरल से जटिल एवं एक सीधी रेखा में बताया है।

नोट

- **कॉम्ट** ने सामाजिक परिवर्तन को मानव के बौद्धिक विकास के अनुसार माना है।
- **कॉम्ट** के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन मानव के निम्न तीन चरणों में बौद्धिक विकास के अनुसार होता है।
- बौद्धिक विकास के चरण निम्न हैं–
  1. धार्मिक अवस्था
  2. तात्त्विक अवस्था
  3. वैज्ञानिक अवस्था।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **उद्‌विकास (Evolution):** परिवर्तन की वह प्रक्रिया उद्‌विकास के नाम से जानी जाती है जिसमें प्रत्येक परवर्ती अवस्था का पूर्ववर्ती अवस्था से आवश्यक संबंध होता है। इसमें वृद्धि, विकास और निरंतरता की तीनों घटनाएँ सन्निहित होती है।

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. **ऑगस्ट कॉम्ट** के तीन स्तरों वाले नियम की विवेचना करें।
2. **कॉम्ट** की प्रमुख तीन कृतियों के नाम लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. बौद्धिक विकास 2. सैद्धान्तिक 3. विचार संबंधों।

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी-अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थॉट-जे. एच. टर्नर।
3. समाजशास्त्र विश्वकोश-हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–5 : विज्ञानों का संस्तरण (Hierarchy of Sciences)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
5.1 समाजशास्त्र-कॉम्ट का एक नया विज्ञान (Sociology–A New Science of Comte)
5.2 सारांश (Summary)
5.3 शब्दकोश (Keywords)
5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- **ऑगस्ट कॉम्ट** के अनुसार, विज्ञानों का सोपान प्रस्तुत करना।
- समाजशास्त्र प्राकृतिक विज्ञान की श्रेणी में शामिल है।
- सोपान के क्रम के अनुसार, बढ़ते क्रम में विज्ञानों की जटिलता बढ़ती जाती है।
- जटिलता बढ़ने के साथ-साथ दूसरे विज्ञानों पर उसकी निर्भरता बढ़ती जाती है।

प्रस्तावना (Introduction)

विज्ञानों के संस्तरण या वर्गीकरण की पृष्ठभूमि
(Background of the Hierarchy of Classification of Sciences)

अपने नवीन समाज-विज्ञान 'समाजशास्त्र' की नींव रखते हुए **कॉम्ट** ने मानवीय चिन्तन के तीन स्तरों–आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं प्रत्यक्षवादी स्तरों–का उल्लेख किया है और साथ ही अपने इस समाज-विज्ञान के लिए एक वैज्ञानिक कार्य प्रणाली अर्थात् 'प्रत्यक्षवाद' को भी प्रस्तुत किया। परन्तु इतना-भर करके वे सन्तुष्ट नहीं थे। एक सच्चे 'पिता' के रूप में वे अपने 'मानस-पुत्र' समाजशास्त्र को विज्ञान की दुनिया में सुप्रतिष्ठित भी देखना चाहते थे। समाजशास्त्र के लिए इस वैज्ञानिक स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए ही **कॉम्ट** ने 'तीन स्तरों का नियम' व 'प्रत्यक्षवाद' के बाद तीसरा आधार विज्ञानों के संस्तरण या वर्गीकरण के रूप में तैयार किया। **प्रोफेसर बोगार्डस** ने भी लिखा है कि, "**कॉम्ट** की योजना का तीसरा चरण विज्ञानों का वर्गीकरण था, जिसके अन्तर्गत समाजशास्त्र को नवीनतम पर सर्वश्रेष्ठ विज्ञान के रूप में दर्शाया गया"।

नोट

इस संबंध में यह स्मरणीय है कि **ग्रीक विचारकों** ने भी समस्त विज्ञानों का वर्गीकरण तीन श्रेणियों में किया था और वे थे—**भौतिकशास्त्र, नीतिशास्त्र** तथा **राजनीतिशास्त्र**। प्रख्यात दार्शनिक **बेकन** ने भी मानसिक शक्तियों के तीन पक्षों—**स्मरणशक्ति, कल्पनाशक्ति** तथा **तर्कशक्ति** से संबंधित **तीन** अध्ययन-शास्त्रों का उल्लेख किया है और वे हैं—इतिहास, कवित्व तथा विज्ञान।

विज्ञानों के वर्गीकरण का विचार **कॉम्ट** को **सेंट साइमन** से मिला था। यद्यपि आप **सेंट साइमन** के इस विज्ञान से तो सहमत थे कि विज्ञानों का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए, फिर भी **सेंट साइमन** के वर्गीकरण से आप सहमत न थे। उनका दावा था कि आप **सेंट साइमन** से कहीं अधिक वैज्ञानिक आधारों पर विज्ञानों का वर्गीकरण या संस्तरण प्रस्तुत कर सकते हैं। इन आधारों का उल्लेख उन्होंने अपनी कृति 'Positive Philosophy' में किया है। **कॉम्ट** का इस पुस्तक को लिखने का एक उद्देश्य अपने नवीन विज्ञान 'समाजशास्त्र' के लिए एक सुदृढ़ व वैज्ञानिक नींव को ढूँढ़ना था जिससे कि समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र और इसका अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से संबंध स्पष्ट हो जाए।

संस्तरण के दो आधार या सिद्धांत (Two Basis or Principles of Hierarchy)

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए **कॉम्ट** ने विज्ञानों का एक नवीन वर्गीकरण या संस्तरण उतार-चढ़ाव के आधार पर प्रस्तुत किया और इसके लिए उन्होंने दो आधारों या सिद्धांतों को निश्चित किया। वे हैं—

1. पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धांत एवं
2. घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धांत।

अब हम इन्हीं दो सिद्धांतों या आधारों के विषय में विवेचना करेंगे—

1. पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धांत (The Principle of the order of increasing dependence)— विज्ञानों के वर्गीकरण या संस्तरण को प्रस्तुत करने के लिए **कॉम्ट** ने पराश्रयता वृद्धि क्रम के सिद्धांत को चुना। दूसरे शब्दों में, **कॉम्ट** के विचारानुसार ज्ञान या विज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने से पहली शाखा या विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर आश्रित होती है। इन निर्भरता का परिणाम यह होता है कि ज्ञान या विज्ञान की एक शाखा से दूसरी शाखा को जैसे-जैसे हम आगे बढ़ाते जाते हैं वैसे-वैसे उस शाखा की निर्भरता में वृद्धि होती जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार जो सर्वप्रथम विज्ञान है वह किसी पर निर्भर नहीं; इसके बाद जो दूसरा विज्ञान विकसित होगा वह प्रथम विज्ञान पर आश्रित या निर्भर होगा; जो तीसरा विज्ञान होगा वह पहले और दूसरे विज्ञान पर आश्रित होगा; जो चौथा विज्ञान होगा वह पहले, दूसरे और तीसरे विज्ञान पर निर्भर होगा और इसी क्रम से विज्ञान की प्रत्येक शाखा की निर्भरता में वृद्धि होती जाएगी। इसलिए **कॉम्ट** के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत को 'निर्भरता वृद्धि-क्रम का सिद्धांत' कहा गया है। आगे की विवेचना से यह सिद्धांत और भी स्पष्ट हो जाएगा।

2. घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धांत (The Principle of decreasing generality and increasing complexity)— **कॉम्ट** के अनुसार विज्ञानों का विकास एक विशेष क्रम से होता है और वह क्रम है **'घटती हुई सामान्यता और बढ़ती जुई जटिलता'**। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे नवीन विज्ञान का जन्म होता है वैसे-वैसे उस विज्ञान की अध्ययन-वस्तु क्रमशः कम सामान्य और अधिक जटिल होती जाती है। **कॉम्ट** के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धांत के अनुसार, एक विज्ञान की अध्ययन-वस्तु जिस प्रकार की होती है, उसी के अनुसार, उस विज्ञान की अन्य विज्ञानों पर निर्भरता तथा विज्ञानों के संस्तरण में उसका स्थान निश्चित होता है। अध्ययन-वस्तु जितनी ही विशिष्ट तथा जटिल होगी उस विज्ञान की अपने से पहले वाले विज्ञान या विज्ञानों पर निर्भरता या पराश्रयता उतनी बढ़ती जाएगी। यह इसलिए होता है क्योंकि सरल और सामान्य घटनाएँ पहले आती हैं और उनका अध्ययन करना भी सरल है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पहला विज्ञान वह है जो सबसे सरल विषय या घटनाओं का अध्ययन करता है और जो घटना सबसे अधिक सरल है वह सबसे अधिक सामान्य भी होती है— सामान्य इस अर्थ में है कि वह सब स्थानों पर विद्यमान है। इस प्रकार सबसे प्रथम विज्ञान सबसे अधिक सामान्य और सबसे कम जटिल घटनाओं या विषयों से संबंधित होता है। इस प्रथम विज्ञान के बाद जिन अन्य विज्ञानों का

नोट

विकास हुआ उनका अध्ययन-विषय क्रमशः कम सामान्य और अधिक जटिल होता गया। इस प्रकार दूसरा विज्ञान प्रथम विज्ञान से अधिक जटिल विषय-वस्तु से संबंधित होता है और तीसरा विज्ञान दूसरे विज्ञान से कम सामान्य और अधिक जटिल विषय से संबंधित होता है। यही क्रम चलता रहता है। विज्ञानों के विकास के इस क्रम में चूँकि प्रत्येक विज्ञान का अध्ययन-विषय क्रमशः जटिल होता जाता है, इस कारण प्रत्येक विज्ञान अपने से पहले विज्ञान या विज्ञानों की खोजों, निष्कर्षों और सिद्धांतों पर क्रमशः अधिक निर्भर होता जाता है अर्थात् उसकी पराश्रयता में क्रमशः वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार प्रत्येक विज्ञान अपने से पहले के विज्ञान या विज्ञानों पर आधारित रहते हुए अगले विज्ञान के लिए आधार प्रस्तुत करता है। साथ ही **कॉम्ट** के मतानुसार प्रत्येक विज्ञान अपने पिछले विज्ञान या विज्ञानों पर केवल निर्भर ही नहीं रहा है, बल्कि वह पिछले विज्ञान या विज्ञानों को अपनी खोजों से सींचता भी रहता है।

विज्ञानों का संस्तरण या वर्गीकरण (Hierarchy or Classification of Sciences)

अपने उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर **कॉम्ट** ने विज्ञानों का जो संस्तरण प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार हैं–

1. गणितशास्त्र (Mathematics);
2. खगोलशास्त्र (Astronomy);
3. भौतिकशास्त्र (Physics);
4. रसायनशास्त्र (Chemistry);
5. प्राणिशास्त्र (Biology);
6. समाजशास्त्र (Sociology)।

विज्ञान के संस्तरण में सर्वप्रथम स्थान गणितशास्त्र का है। इसका कारण **कॉम्ट** के मतानुसार यह है कि गणितशास्त्र सबसे अधिक पुराना, आधारभूत तथा दोषरहित विज्ञान है। गणित ही वह सबसे अधिक शक्तिशाली औजार है जिसको उपयोग में लाए बिना प्राकृतिक नियमों का अन्वेषण असम्भव है। इस अर्थ में यह मानव-चिन्तन का सबसे मौलिक उपकरण है। अनुसंधान के क्षेत्र में, चाहे वह सामाजिक हो या प्राकृतिक, गणितशास्त्र से अधिक निर्भर योग्य और कोई भी विज्ञान नहीं है क्योंकि तथ्यों का यथार्थ नाम या विभिन्न तथ्यों के पारस्परिक संबंधों का सुनिश्चित ज्ञान गणितशास्त्र की सहायता से ही संभव है। अन्य कोई भी विज्ञान अपने अन्वेषण या शोध-कार्य में तब तक कदापि सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह गणितशास्त्र की सहायता न ले क्योंकि यही समस्त विज्ञानों का आधार या बुनियाद है। इसी बुनियाद के ऊपर अन्य सभी विज्ञान खड़े हैं और अपने को विज्ञान कहलाने के योग्य हैं। इसीलिए **कॉम्ट** विज्ञान के संस्तरण में गणितशास्त्र को प्रथम और आधारभूत स्थान प्रदान करते हैं।

विज्ञानों के संस्तरण में अन्य विज्ञानों के स्थान को निश्चित करने के लिए **कॉम्ट** ने सभी प्राकृतिक घटनाओं को दो बड़े भागों में विभाजित किया है–अजीवज (Inorganic) और जीवज (Organic)।

अजीवज घटनाओं को हम दो उप-भागों में बाँट सकते हैं–खगोल-संबंधी (Astronomical) और स्थलीय (terrestrial)। खगोल संबंधी घटनाएँ अत्यधिक सामान्य होती हैं। ग्रह, नक्षत्रों आदि में बहुत ही कम परिवर्तन होता है। खगोलशास्त्र का संबंध इन्हीं खगोल-संबंधी घटनाओं से होता है। ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, पुच्छल तारे, उल्काएँ आदि खगोलशास्त्र के अध्ययन-क्षेत्र में आते हैं। सूर्य एक नक्षत्र है और बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण व कुबेर ग्रह हैं तथा चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है। ये विभिन्न नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह एक-दूसरे से कितनी दूरी पर स्थित हैं, ये किस प्रकार पारस्परिक आकर्षण शक्ति द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, इनका आधार क्या है, 'नक्षत्र-परिवार' क्या है (जैसे सूर्य के परिवार या 'सौर परिवार' में पृथ्वी, चन्द्रमा, मंगल, बुध इत्यादि अनेक ग्रह एवं उनके उपग्रह शामिल हैं), इनकी कितनी गति है आदि विषयों का अध्ययन खगोलशास्त्र करता है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि इस प्रकार के अध्ययन का क्या महत्त्व है, या धरती के मानव के लिए खगोल या आकाश-संबंधी घटनाओं को जानने की क्या सार्थकता हो सकती है? इसका उत्तर अति सरल है। हम अपनी धरती संबंधी घटनाओं के बारे में उस समय तक कुछ नहीं जान सकते जब तक कि हम पृथ्वी की प्रकृति तथा उसके दूसरे ग्रह-नक्षत्रों के साथ संबंध को न समझ लें। यह ज्ञान हमें खगोलशास्त्र से प्राप्त होता है।

नोट

स्थलीय भौतिकशास्त्र के अंतर्गत दो विज्ञानों का समावेश है—भौतिकशास्त्र मुख्य और रसायनशास्त्र। भौतिक पदार्थों के विषय में जानने के लिए उनका भौतिक या रासायनिक विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। इस कार्य के लिए दो पृथक् विज्ञान-भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र हैं। भौतिकशास्त्र का अध्ययन-विषय रसायनशास्त्र के अध्ययन-विषय की अपेक्षा अधिक सामान्य है। यह तत्वों के स्थान पर पदार्थों से अधिक संबंधित है। रासायनिक तत्व भौतिकशास्त्र के नियमों पर निर्भर करता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि रासायनिक घटनाएँ भौतिकशास्त्र के नियमों से प्रभावित भी होती हैं। कोई भी रासायिनक क्रिया भार, ताप और विद्युत के नियमों से प्रभावित होती है। इस प्रकार अजीवज घटनाओं का अध्ययन तीन विज्ञानों—खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र—के द्वारा होता है।

जीवज घटनाओं के भी दो प्रकार हैं—व्यक्तिगत और सामूहिक। **प्रथम** के अन्तर्गत वनस्पति और पशु-जगत् की समस्त व्यक्तिगत या शारीरिक स्वरूपों की क्रियाएँ तथा संरचनाएँ आ जाती हैं। यह प्राणिशास्त्र का अध्ययन-विषय है। इसमें समस्त जीवन और उससे संबंधित नियमों का अध्ययन सम्मिलित है। स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्र रसायनशास्त्र पर निर्भर होता है क्योंकि पोषण तथा ग्रन्थि से रस के निकलने (Secretion) के समस्त विश्वसनीय नियम हमें रसायनशास्त्र से ही प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, प्राणिशास्त्र का संबंध भौतिकशास्त्र से है क्योंकि भौतिकशास्त्र प्राणिशास्त्र को जीवित प्राणियों के भार, ताप और अन्य संबंधित तथ्यों का ज्ञान करवाता है। प्राणिशास्त्र के नियमों पर खगोलशास्त्र के नियमों का भी प्रभाव पड़ता है। उदहारण के लिए, यदि पृथ्वी की गति उसकी वर्तमान गति से अधिक हो जाए तो उसका परिणाम यह होता है कि शरीर-संबंधी घटनाओं की गति भी निश्चित रूप से बढ़ जाएगी और जीवन की अवधि कम हो जाएगी। खगोलशास्त्र हमें यह भी बताता है कि पृथ्वी अपनी धुरी या अक्ष (Axis) पर पश्चिम से पूर्व की ओर लट्टू की भाँति घूमती है और लगभग 24 घंटे में एक चक्कर पूरा करती है; इस दैनिक गति के कारण ही पृथ्वी का आधा भाग बारी-बारी से सूर्य के सामने आता-जाता रहता है और दिन-रात होते हैं। इस प्रकार पृथ्वी एक अण्डाकार पथ पर गतिशील होकर सूर्य का चक्कर लगाती है जिसे वार्षिक गति या परिक्रमा कहते हैं। ऋतु परिवर्तन में इस वार्षिक गति का योग रहता है; यदि पृथ्वी में वार्षिक गति न होती तो वर्ष-भर एक-सी ऋतु रहती। पृथ्वी अपनी धुरी या अक्ष पर घूमती है; पृथ्वी का यह अक्ष कक्ष-तल पर लम्ब नहीं बल्कि झुका हुआ अर्थात् 66½ अंश का कोण बनाता है। यदि पृथ्वी का यह अक्ष कक्ष-तल पर लम्ब हो जाए तो उसका नतीजा यह होगा कि सब जगह दिन-रात बराबर होने लगेंगे; साथ ही ऋतु परिवर्तन भी नहीं होगा अर्थात् सब जगह साल-भर एक-सा ही मौसम रहेगा। अक्ष के तिरछा होने के कारण ही दोपहर के समय सूर्य की ऊँचाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है, दिन-रात छोटे-बड़े होते रहते हैं, ऋतु में परिवर्तन होता है, उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में ऋतुएँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं तथा उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर दिन और रात छह-छह महीने के होते हैं। इन सभी का प्रभाव शरीर-संबंधी घटनाओं पर पड़ता है। अत: स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्र खगोलशास्त्र का भी ऋणी है। इसके अतिरिक्त प्राणिशास्त्रीय अध्ययनों में जो यथार्थता पाई जाती है। वह गणितशास्त्र के कारण ही है। यदि प्राणिशास्त्र को अपने अध्ययन-कार्य में गणितशास्त्र का सहारा न मिलता तो वह वास्तव में दोषपूर्ण, अनिश्चित और अविश्वसनीय होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्र विज्ञानों के संस्तरण में आने से पहले सभी विज्ञानों पर आश्रित है।

जीवज घटनाओं का **दूसरा** प्रकार या भाग सामूहिक है। इस भाग का अध्ययन समाजशास्त्र के द्वारा होता है जोकि **कॉम्ट** द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों के संस्तरण में सबसे अन्तिम विज्ञान है। इसलिए **कॉम्ट** ने इस विज्ञान को सबसे अधिक पराश्रित विज्ञान माना है जिसे कि अपने अध्ययन-कार्य में गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं प्राणिशास्त्र सभी पर निर्भर रहना पड़ता है। ये सभी विज्ञान उसी क्रम से एक-दूसरे पर या अपने से पहले वाले विज्ञान या विज्ञानों पर निर्भर हैं जिस क्रम से इनका विकास हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि **कॉम्ट** ने ज्ञान या विज्ञानों का संस्तरण निर्भरता वृद्धि-क्रम के सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत किया है। सबसे अधिक बुनियादी स्थान गणितशास्त्र को दिया गया है क्योंकि यह सबसे अधिक सामान्य और प्राचीन विज्ञान है। इसके ऊपर खगोलशास्त्र का स्थान है जोकि मूल रूप में अपने से पहले के विज्ञान गणितशास्त्र पर आश्रित है। इसके ऊपर स्थलीय घटनाओं का अध्ययन करने वाले दो विज्ञानों क्रमश: भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र को स्थान दिया गया है। भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र और गणितशास्त्र पर निर्भर है जबकि

नोट

रसायनशास्त्र को अपने अध्ययन-कार्य में भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र तथा गणितशास्त्र पर आश्रित रहना पड़ता है। इसके बाद शरीर तथा जीवन-संबंधी विषयों का अध्ययन करने वाले प्राणिशास्त्र का स्थान है जोकि रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र तथा गणितशास्त्र पर आश्रित है। इन विज्ञानों पर आधारित तथा सामूहिक या सामाजिक तथ्यों व घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान सामाजिक भौतिकी या समाजशास्त्र का स्थान सबसे ऊपर है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि 'प्रत्यक्षवादी धर्म' या 'मानवता का धर्म' के सिद्धांत को विकसित करते समय **कॉम्ट** ने उपर्युक्त छह विज्ञानों के अतिरिक्त एक सातवाँ और सबसे ऊपर का विज्ञान आचारशास्त्र का भी उल्लेख किया है। परन्तु इस अन्तिम विज्ञान का कोई विशेष उल्लेख या स्पष्टीकरण उनकी कृतियों में नहीं मिलता है। इस कारण **कॉम्ट** द्वारा प्रस्तुत ज्ञान या विज्ञानों के वर्गीकरण में गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र तथा समाजाशास्त्र, इन छह विज्ञानों को ही साधारणतया सम्मिलित किया जाता है और यह उचित भी है। इस वर्गीकरण को प्रस्तुत करने का एक प्रमुख उद्देश्य विभिन्न विज्ञानों की सापेक्षिक पूर्णता या यथार्थता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना है। **कॉम्ट** ने स्वयं ही लिखा है कि "यह वर्गीकरण यथार्थ रूप में विभिन्न विज्ञानों की सापेक्षिक पूर्णता को बतलाता है; एक विज्ञान की सापेक्षिक पूर्णता परिशुद्ध ज्ञान की मात्रा तथा उसकी विभिन्न शाखाओं के साथ संबंध पर निर्भर है। यह सरलता से देखा जा सकता है कि घटनाएँ जितनी ही अत्यधिक सामान्य, सरल और अमूर्त होती हैं उतनी ही वे दूसरों पर कम निर्भर करती हैं और उनकी यथार्थता या परिशुद्धता उतनी ही अधिक तथा दूसरे विज्ञानों के साथ उनका संबंध उतना ही स्पष्ट होता है। इस प्रकार जीवज घटनाएँ अजीवज घटनाओं की अपेक्षा कम यथार्थ तथा नियमबद्ध होती हैं और इनमें से भी स्थलीय घटनाएँ खगोल-संबंधी घटनाओं की अपेक्षा कम यथार्थ तथा नियमबद्ध होती हैं। विज्ञानों का जो संस्तरण हमने प्रस्तुत किया है उससे यही तथ्य पूर्णतया स्पष्ट होता है।"

कॉम्ट का मत है कि हम किसी भी विज्ञान के विषय में उचित ज्ञान तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक उसके पहले वाले विज्ञान या विज्ञानों, जिस या जिन पर कि वह निर्भर है, के विषय में हम जानकारी प्राप्त न कर लें। उदाहरणार्थ, हम समाजशास्त्र की सहायता से मानव-समाज या सामाजिक घटनाओं के बारे में समुचित ज्ञान तब ही प्राप्त कर सकते हैं जब हमें इसके पहले वाले विज्ञानों—प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र और गणितशास्त्र—के संबंध में कुछ सामान्य ज्ञान हो। यह एक मोटी-सी बात है कि प्राणिशास्त्र की सहायता से जब तक हम जीव तथा जीवन और उनसे संबंधित नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त न कर लेंगे तब तक मानव के सामाजिक जीवन की घटनाओं को समझना हमारे लिए कैसे सम्भव होगा? इसीलिए, **कॉम्ट** के विचारानुसार, प्रत्येक विज्ञान का अध्ययन उसी क्रम से करना चाहिए जैसाकि उपर्युक्त वर्गीकरण में प्रस्तुत किया गया है। इस संस्तरण में सबसे ऊपर समाजशास्त्र है जोकि अन्य विज्ञानों की तुलना में सबसे नवीन, सबसे अधिक पराश्रित, विशिष्ट तथा जटिल विज्ञान है। अब हम इसी विज्ञान 'समाजशास्त्र' के विषय में सविस्तार विवेचना करेंगे।

5.1 समाजशास्त्र-कॉम्ट का एक नया विज्ञान (Sociology–A New Science of Comte)

कॉम्ट अपने समय की प्रचलित तात्विक तथा धार्मिक प्रविधियों द्वारा सामाजिक घटनाओं की अध्ययन-प्रणाली से संतुष्ट नहीं थे। आप तो वैज्ञानिक पद्धति को सर्वोच्च प्रधानता प्रदान करते थे। इसलिए आप सामाजिक अध्ययन-कार्य को भी निरीक्षण, परीक्षण तथा वर्गीकरण की व्यवस्थित या वैज्ञानिक कार्य-प्रणाली के अन्तर्गत लाने के पक्ष में थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए **कॉम्ट** एक ऐसे नए विज्ञान का सृजन करना चाहते थे जोकि उस समय प्रचलित धार्मिक तथा तात्विक विचारों से पूर्णतया विमुक्त हो और जोकि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करे। आपका विश्वास था कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन एक विशेष अध्ययन-क्षेत्र है जोकि व्यक्ति के सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार प्राणिशास्त्र के अंतर्गत समस्त व्यक्तिगत जीवन और उससे संबंधित नियमों का अध्ययन सम्मिलित है, उसी प्रकार सामूहिक जीवन और उससे सम्बन्धित आधारभूत नियमों के अध्ययन के लिए भी पृथक् विज्ञान की आवश्यकता है।

नोट

नोट्स **कॉम्ट** ने इस विज्ञान को पहले-पहल 'सामाजिक भौतिकी' की संज्ञा दी और फिर इसको बदलकर सन् 1838 में अपने नवीन विज्ञान का नाम 'समाजशास्त्र' रखा।

समाजशास्त्र की परिभाषा **कॉम्ट** ने इन शब्दों में की है–**"समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है।"** इस परिभाषा में उल्लेखित सामाजिक 'व्यवस्था' और 'प्रगति' की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं–समाज एक 'व्यवस्था' है; इस व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक उपव्यवस्थाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है, बल्कि अनेक भागों से मिलकर बना है। ये सभी एक-दूसरे पर आधारित और एक-दूसरे से संबंधित हैं। इसी आधार पर **कॉम्ट** ने सामाजिक सावयव की कल्पना की थी, यद्यपि वैयक्तिक सावयव और सामाजिक सावयव को एक समझने की भूल न करने की कड़ी चेतावनी भी आप बार-बार देते हैं। आपका मत है कि इन दो प्रकार के सावयवों में समानताएँ हो सकती हैं और है भी, पर ये एक ही नहीं हैं। सामाजिक सावयव में, वैयक्तिक सावयव की भाँति, श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण होता है। दोनों में ही ऐकमत्य पाया जाता है, जिसका अर्थ **कॉम्ट** के अनुसार, अन्योन्याश्रित भागों में सामंजस्य का होना है। यही सामंजस्य सामाजिक व्यवस्था का आधार है। समाजशास्त्र सामाजिक जीवन की इसी व्यवस्था अर्थात् समाज के विभिन्न अन्योन्याश्रित (interdependent) भागों के बीच पाए जाने वाले सामंजस्य का अध्ययन करता है। परन्तु समाजशास्त्र का अध्ययन-क्षेत्र यहीं तक सीमित नहीं है क्योंकि यह सामाजिक व्यवस्था का ही नहीं अपितु सामाजिक प्रगति का भी विज्ञान है। **कॉम्ट** के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था का परम उद्देश्य ही नहीं अपितु मौलिक आधार भी प्रगति है। मानव का बौद्धिक तथा नैतिक विकास ही सामाजिक प्रगति है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक प्रगति कुछ नैतिक तथा बौद्धिक नियमों या सिद्धांतों के आधार पर सम्भव है। समाजशास्त्र उन नैतिक नियमों या सिद्धांतों को भी प्रतिपादित करता है जिनके आधार पर सामाजिक प्रगति सम्भव हो सके। यह स्मरण रहे कि एक प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था में, **कॉम्ट** के अनुसार, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वर्ग पुरोहितों का होना चाहिए। परन्तु ये पुरोहित धर्मशास्त्री नहीं बल्कि समाजशास्त्रीय होंगे जिनका कि प्रमुख कार्य उन समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रतिपादन करना होगा जिन पर सामाजिक प्रगति की व्यापक नीति निर्भर करेगी। इसीलिए **कॉम्ट** का समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था व प्रगति का विज्ञान है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कॉम्ट अपने समय की प्रचलित तात्विक तथा धार्मिक .... द्वारा सामाजिक घटनाओं की अध्ययन-प्रणाली से संतुष्ट नहीं थे।
2. कॉम्ट एक ऐसे नये विज्ञान का सृजन करना चाहते थे जो उस समय प्रचलित धार्मिक तथा तात्विक विचारों से पूर्णतया .... हो और जोकि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करें।
3. समाज एक .... है; इस व्यवस्था के अंतर्गत अनेक उप-व्यवस्थाएँ होती हैं।

कॉम्ट का समाजशास्त्र समाज का एक अमूर्त विज्ञान है। यह केवल मात्र आर्थिक, राजनीतिक, वैधानिक या अन्य किसी विशिष्ट प्रकार की घटनाओं का विज्ञान नहीं है। यह वह विज्ञान है जोकि उन आधारभूत नियमों को खोजता है जिन पर कि समस्त सामाजिक विज्ञान आधारित हैं।

कॉम्ट का समाजशास्त्र एक समन्वयात्मक विज्ञान भी है। आपने इसे समन्वयात्मक विज्ञान इस कारण कहा है कि आपका समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के किसी भी विशिष्ट पक्ष का अध्ययन नहीं करता है, यह तो समाज का अध्ययन समग्र रूप में करता है। समाजशास्त्र का सम्पर्क केवल आर्थिक या धार्मिक या नैतिक या वैज्ञानिक घटनाओं

नोट

से नहीं है; यह तो इन सबसे संबंधित है और इन सबका अध्ययन करता है। **कॉम्ट** का विश्वास है कि सामाजिक जीवन के विभिन्न अंग या भाग एक-दूसरे से अत्यधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित तथा एक-दूसरे पर आश्रित हैं; इस कारण इनका पृथक् अध्ययन उचित नहीं है। समाजशास्त्र ही इन विभिन्न भागों को एक साथ मिलाकर अर्थात् एक-दूसरे से सम्बन्धित रूप में अध्ययन कर सकता है और करता है। इसलिए यह एक समन्वयात्मक विज्ञान है।

समाजशास्त्र एक समन्वयात्मक विज्ञान इस अर्थ में भी है कि यह अपने से पहले वाले सभी विज्ञानों-प्राणिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र तथा गणितशास्त्र-द्वारा प्रतिपादित नियमों और सिद्धांतों पर आधारित है। अपने आधारभूत विज्ञानों के संस्तरण में **कॉम्ट** ने समाजशास्त्र को सबसे ऊपर रखा है, परन्तु ऐसा करने में उनका उद्देश्य कदापि यह नहीं है कि वह समाजशास्त्र को अन्य विज्ञानों से ऊपर रखना चाहते हैं। समाजशास्त्र की सबसे ऊपर की यह स्थिति केवल इस बात की द्योतक है कि यह विज्ञान अपने से पहले वाले सभी विज्ञानों पर आधारित रहते हुए इनके प्रमुख नियमों या सिद्धांतों को अपने में समेटता है। चूँकि समाज उन जीवित प्राणियों से बना हुआ है जिनका शरीर ब्रह्माण्ड के पदार्थ से बनता है, इस कारण समाजशास्त्र का प्रारंभ भी इनसे संबंधित विज्ञान के नियमों से होता है। **कॉम्ट** ने लिखा है कि "सर्वप्रथम उस माध्यम को, जिसमें सामाजिक जीवन विकसित हुआ है और उन प्राणियों को जो इसे प्रकट करते हैं, समझे बिना सामाजिक जीवन को समझा नहीं जा सकता। इस कारण अन्तिम विज्ञान (समाजशास्त्र) में हम तब तक कोई प्रगति नहीं कर सकेंगे। जब तक हमें बाहरी दुनिया और वैयक्तिक जीवन के संबंध में पर्याप्त अमूर्त ज्ञान, इन नियमों का सामाजिक घटनाओं के विशिष्ट नियमों पर पड़ने वाले प्रभाव को परिभाषित करने के लिए, प्राप्त न हो जाएगा।"

चूँकि **कॉम्ट** के अनुसार समाजशास्त्र एक विज्ञान है, इसलिए यह एक भविष्यवाणी करने योग्य विज्ञान भी है। यदि यह भविष्यवाणी करने की क्षमता नहीं रखता है तो इसे विज्ञान होने का भी अधिकार नहीं है। पूर्व-ज्ञान या भविष्य-दृष्टि विज्ञान की कसौटी है। वैज्ञानिक नियम हमें इस बात का ज्ञान करवाते हैं कि भविष्य की सम्भावित प्रक्रियाएँ किस प्रकार की होंगी।

क्या आप जानते हैं वर्तमान सामाजिक अवस्था का अध्ययन करके उसी आधार पर उसके भविष्य के संबंध में बताना समाजशास्त्र का एक प्रमुख कार्य है।

इसमें संदेह नहीं कि **कॉम्ट** ने अपने समाजशास्त्र का निर्माण वैज्ञानिक प्रणालियों की सहायता से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करके उसके विषय में ज्ञान-भण्डार को बढ़ाने के उद्देश्य से किया है। परन्तु यही उनका एकमात्र उद्देश्य नहीं है। **कॉम्ट** समाजशास्त्र को सामाजिक पुनर्निर्माण और नैतिक जाग्रति लाने के नवीन कार्यक्रम में भी काम में लाना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि मानव-जीवन के संबंध में ज्ञान की वृद्धि मात्र बिल्कुल व्यर्थ है, यदि उस ज्ञान का उपयोग उसके जीवन को उन्नत करने के लिए न किया जाए। यह सच है कि एक वैज्ञानिक सदैव ही यह प्रयत्न करता है कि वह सत्य को अधिकाधिक जान ले, परन्तु यह भी गलत नहीं है कि वह सत्य को इसीलिए जानना चाहता है कि उस सत्य के प्रकट होने से मानव का कुछ कल्याण होगा। **कॉम्ट** भी इसी प्रकार के एक वैज्ञानिक हैं। इसीलिए समाजशास्त्र का यह भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह ज्ञान और कर्म के बीच एकता स्थापित करे ताकि सामाजिक घटनाओं के संबंध में जो कुछ भी ज्ञान हमें प्राप्त हो उसे हम सामाजिक पुनर्निर्माण के काम में भी उपयोग कर सकें। **कॉम्ट** का यह भी विश्वास है कि मानव-जीवन के कुछ नैतिक उद्देश्य होते हैं। इन नैतिक उद्देश्यों की पूर्ति मानवता के धर्म की स्थापना के द्वारा ही सम्भव है। समाजशास्त्र मानवता के ज्ञान और मानवता के धर्म में एकरूपता उत्पन्न करने में सहायक हो सकता है। यही कारण है कि **कॉम्ट** के आदर्श समाज में सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग पुरोहित का होगा और ये पुरोहित धर्मशास्त्री नहीं बल्कि समाजशास्त्री होंगे। समाजशास्त्री मानवता के सेवक बनें, यही **कॉम्ट** की आन्तरिक अभिलाषा के अनुसार, समाजशास्त्र की चरम सार्थकता है।

टास्क समाजशास्त्र कॉम्ट का एक नया विज्ञान क्या है? विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

5.2 सारांश (Summary)

- विज्ञानों के वर्गीकरण या संस्तरण को प्रस्तुत करने के लिए **कॉम्ट** ने पराश्रयता वृद्धि क्रम के सिद्धांत को चुना। दूसरे शब्दों में, **कॉम्ट** के विचारानुसार ज्ञान या विज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने से पहली शाखा या विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर आश्रित होती है।
- **कॉम्ट** के मतानुसार प्रत्येक विज्ञान अपने पिछले विज्ञान या विज्ञानों पर केवल निर्भर ही नहीं रहा है, बल्कि वह पिछले विज्ञान या विज्ञानों को अपनी खोजों से सींचता भी रहता है।
- विज्ञान के संस्तरण में सर्वप्रथम स्थान गणितशास्त्र का है। इसका कारण **कॉम्ट** के मतानुसार यह है कि गणितशास्त्र सबसे अधिक पुराना, आधारभूत तथा दोषरहित विज्ञान है।
- **कॉम्ट** अपने समय की प्रचलित तात्विक तथा धार्मिक प्रविधियों द्वारा सामाजिक घटनाओं की अध्ययन-प्रणाली से संतुष्ट नहीं थे। आप तो वैज्ञानिक पद्धति को सर्वोच्च प्रधानता प्रदान करते थे।

5.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अजीवज (Inorganic)**—अजीवज घटनाओं को हम दो उपभोगों में बाँट सकते हैं—1. खगोल-संबंधी 2. स्थालीय।
2. **अक्ष (Axis)**—पृथ्वी अपनी धुरी या अक्ष पर पश्चिम से पूरब की ओर लट्टू की भाँति घुमती है और 24 घंटों में एक चक्कर पूरा करती है।

5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कॉम्ट का नया विज्ञान क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।
2. संस्तरण के दो आधार या सिद्धांत क्या है? वर्णन करें।
3. पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धांतिक वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. प्रविधियों 2. विमुक्त 3. व्यवस्था।

5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थॉट—जे. एच. टर्नर।
3. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–6: सामाजिक स्थैतिकी या स्थिति-विज्ञान तथा सामाजिक गति-विज्ञान (Social Statics and Social Dynamics)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 सामाजिक स्थिति-विज्ञान तथा सामाजिक गति-विज्ञान (Social Statics and Social Dynamics)

6.2 सारांश (Summary)

6.3 शब्दकोश (Keywords)

6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कॉम्ट द्वारा दिये गए समाजशास्त्र के दो मुख्य विभाजन को जानना-सामाजिक स्थैतिकी एवं गतिशीलता।
- सामाजिक स्थैतिकी या स्थिति-विज्ञान एवं सामाजिक गति-विज्ञान के बारे में जानकारी।
- सामाजिक व्यवस्था को समग्रता से समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

जब हम जीव विज्ञान की चर्चा करते हैं तब इसे दो भागों में बाँटते हैं, एक तो शरीर संरचना (Anotomy) और दूसरा शरीर विज्ञान (Physiology) इस तरह का जीव विज्ञान का वर्गीकरण स्थैतिकी और गतिशीलता को समझने के लिए सुविधाजनक होता है। जहाँ शरीर संरचना में शरीर के विभिन्न अंग होते हैं और शरीर विज्ञान में इन अंगों की गतिशीलता एवं कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी मिलती है।

6.1 सामाजिक स्थिति-विज्ञान तथा सामाजिक गति-विज्ञान (Social Statics and Social Dynamics)

कॉम्ट ने समाजशास्त्र को दो प्रमुख भागों में बाँटा है-(1) सामाजिक स्थिति-विज्ञान और (2) सामाजिक गति-विज्ञान। सामाजिक स्थिति-विज्ञान समाज की संरचना से सम्बन्धित है जबकि सामाजिक गति-विज्ञान उसके विकास से। यहाँ हम इन दोनों की विवेचना विस्तारपूर्वक करेंगे।

सामाजिक स्थिति-विज्ञान (Social Statics)

सामाजिक स्थिति-विज्ञान समाजशास्त्र की वह शाखा है जो कि समाज का पूर्ण-विभाग के रूप में अध्ययन करती है। दूसरे शब्दों में, सामाजिक व्यवस्था या संरचना के अन्तर्गत अनेक भाग होते हैं, सामाजिक स्थिति-विज्ञान इन समस्त भागों का अलग-अलग नहीं बल्कि एक सम्पूर्ण व्यवस्था के रूप में अध्ययन करता है। यह सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों की क्रिया और प्रतिक्रिया के नियमों को खोजने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार का अध्ययन प्राणिशास्त्र में शरीर-रचनाशास्त्र के अध्ययन के अनुरूप है। सामाजिक स्थिति-विज्ञान का सम्बन्ध, **कॉम्ट** के अनुसार सामाजिक सावयव के ऐकमत्य (consensus of the social organism) से है जिनका कि अर्थ अन्योन्याश्रित भागों में सामंजस्य का होना है। **कॉम्ट** ने इस ओर संकेत किया है कि सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों तथा समग्र में सदैव ही एक स्वत:प्रवृत्त सामंजस्य होना चाहिए और इसके तत्त्वों को अनिवार्य रूप में, किसी-न-किसी समय, एक प्रतिरूप में संयुक्त हो जाना चाहिए। इन तत्त्वों में केवल राजनीतिक संस्थाओं, सामाजिक व्यवहारों तथा विचारों का ही आपस में संयुक्त होना पर्याप्त नहीं है बल्कि मानव की बौद्धिक, नैतिक तथा भौतिक क्रियाओं में भी उचित सामंजस्य होना चाहिए। अगर हम सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति को एक इकाई मान लें तो ऐकमत्य का अर्थ यह है कि समाज के अधिकांश सदस्यों में मतों की अधिक भिन्नता नहीं है और वे सामाजिक जीवन के सामान्य विषयों को समान दृष्टिकोण से देखते और विचारते हैं तथा सामान्य प्रयत्नों द्वारा उनका एक उचित हल ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। सामाजिक स्थिति-विज्ञान का उद्देश्य सामाजिक सावयव के ऐकमत्य की खोज़ करना तथा सामाजिक स्थिरता की दशाओं को ढूँढ़ निकालना है। चूँकि **कॉम्ट** का यह विश्वाास है कि वे एक ऐसे युग में रह रहे हैं जबकि सामाजिक सन्तुलन अत्यधिक बिगड़ा हुआ है, इस कारण सामाजिक स्थिति-विज्ञान का एक कर्त्तव्य यह भी है कि वह उन अवस्थाओं का भी अध्ययन करे जो कि इस सामाजिक सन्तुलन की पुनर्स्थापना के लिए आवश्यक हों। इस प्रकार सामाजिक स्थिति-विज्ञान किसी एक समय तथा स्थान में पाए जाने वाले ऐकमत्य के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है, यह तो "सामाजिक सावयव के लिए उचित मौलिक ऐकमत्य से भी सम्बन्धित है। इसमें सभी समाजों का भूत और वर्तमान के लौकिक ऐकमत्य का अध्ययन आ जाता है।"

सामाजिक स्थिति-विज्ञान की सार्थकता यह है कि यह विज्ञान सामाजिक व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों से हमारा परिचय करवाता है ताकि हम उसके महत्त्व को समझकर अपने सामाजिक जीवन को इस प्रकार संगठित करें। जिससे सामाजिक सन्तुलन बिगड़ने न पाए और मानव के भौतिक, नैतिक तथा बौद्धिक तीनों पक्षों का सन्तुलित विकास सरल हो सके। **कॉम्ट** का विश्वास है कि आज समाज में अराजकता की अवस्था है। निर्बलों को सबल पीड़ित कर रहे हैं और निर्बल सबलों से बदला लेने के लिए उन्मुख हैं। इस अवस्था का मूल कारण समाज में बौद्धिक अराजकता है। अधिकांश लोगों का बौद्धिक स्तर इतना निम्न है कि वे सामाजिक व्यवस्था के मौलिक नियमों से भी परिचित नहीं हैं। सामाजिक स्थिति-विज्ञान का एक परम कर्त्तव्य इस कमी को दूर करना है ताकि समाज में ऐकमत्य उत्पन्न हो सके।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सामाजिक स्थिति-विज्ञान ········· की वह शाखा है जो कि समाज का पूर्ण-विभाग के रूप में अध्ययन करती है।
2. सामाजिक स्थिति-विज्ञान का संबंध, कॉम्ट के अनुसार सावयव के ········· से है।
3. ········· में व्यक्ति को एक इकाई मान लें तो ऐकमत्य का अर्थ यह है कि समाज के अधिकांश सदस्यों में मतों की अधिक भिन्नता नहीं है।

नोट्स **कॉम्ट** मध्ययुग के कैथोलिक धर्म द्वारा स्थापित ऐकमत्य से बहुत प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं।

उनका विश्वास है कि उस धर्म ने संगीत, कला, विज्ञान तथा उद्योग को एक महान् धार्मिक व्यवस्था में समन्वित कर दिया है और इस प्रकार प्रभावशाली राजनीतिक संगठन के लिए नैतिक आधार प्रस्तुत किया है इसलिए **कॉम्ट** का विश्वास है कि इस धर्म में सामाजिक पुनर्निर्माण के अत्यन्त बलशाली तत्त्व छिपे हुए हैं जिनका स्पष्टीकण करके उनसे लाभ उठाया जा सकता है। उनका कहना है कि इन्हीं जीवित तथा प्रभावशाली तत्त्वों के कारण ही यह धर्म बिना किसी रक्तपात के यूरोप-व्यापी एक धार्मिक साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो सका। कैथोलिक धर्म ने आध्यात्मिक तथा लौकिक शक्ति के बीच भेद स्पष्ट किया और इस प्रकार ईसाई धर्म ने एक ऐसे तत्त्व को समाज में बलशाली बनाया जिसका आदर दास और राजा दोनों ही कर सकतें हैं। इस प्रकार मध्यकालीन कैथोलिक धर्म उच्च स्तर के ऐकमत्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है। समाजिक स्थिति-विज्ञान का यह काम है कि वह इस प्रकार की व्यवस्थाओं का विश्लेषण करे तथा उनमें निहित शक्ति के स्रोतों का पता लगाए।

क्या आप जानते हैं **कॉम्ट** का विश्वास है कि ऐकमत्य के सिद्धान्त सदा ही एक-से होते हैं, चाहे सामाजिक व्यवस्था के प्रकृति धार्मिक हो या तात्त्विक या प्रत्यक्ष।

सामाजिक गति विज्ञान (Social Dynamics)

सामाजिक गति-विज्ञान मानव के विकास या प्रगति का अध्ययन है। यह 'मानवता की आवश्यक तथा निरन्तर गति' का विज्ञान है। इसके अन्तर्गत वे निश्चित नियम आ जाते हैं जिनके अनुसार समाज का क्रमिक विकास या परिवर्तन होता है। **कॉम्ट** ने यह घोषणा की कि यह प्रमाणित करना सरल है कि समाज का क्रमिक परिवर्तन सदैव ही एक निश्चित क्रम से हुआ है। यह क्रम निरपेक्ष तो नहीं है, फिर भी कुछ समानताओं तथा आवश्यक अनुक्रमों को तो ढूँढ़ा ही जा सकता है। साथ ही सामाजिक स्थितियों के विकास में निरन्तरता होती ही हैं। सामाजिक गति-विज्ञान इन्हीं सबका अध्ययन है।

कॉम्ट के अनुसार, सामाजिक गति-विज्ञान का मूल सिद्धान्त यह है कि वह वर्तमान सामाजिक स्थिति की, इसके पहले की स्थिति के आवश्यक परिणाम के रूप में तथा आने वाली स्थिति की अपरिहार्य चालक के रूप में कल्पना करता है। इस दृष्टि से सामाजिक गति-विज्ञान का उद्देश्य उन नियमों को खोजना है जो कि इस निरन्तरता को निर्देशित करते हैं और जो संयुक्त रूप से मानव-विकास की दिशा निर्धारित करते हैं। इस प्रकार के विज्ञान का प्रमुख कार्य सामाजिक प्रगति के वास्तविक सिद्धान्त को प्रतिपादित करना है।

कॉम्ट के अनुसार, सामाजिक गति-विज्ञान इतिहास से अपने तथ्यों का संकलन करता है; इसलिए यह इतिहास का विज्ञान है। यह सामाजिक उत्पत्तियों के विषय में इतिहास से प्रारम्भ करता है, न कि तात्त्विक अटकलपच्चुओं से। पर सामाजिक गति-विज्ञान केवल भूत या वर्तमान का अध्ययन करके ही रुक नहीं जाता है। वे सिद्धांत जो कि भूत की व्याख्या करते हैं, मानव के भविष्य के बारे में भी बताते हैं। **कॉम्ट** ने यह दावा किया कि सामाजिक गति-विज्ञान यह प्रमाणित करता है कि (क) मृत सदैव जीवित पर शासन करते हैं, और (ख) मनुष्य उत्तरोत्तर धार्मिक होता जा रहा है।

टास्क **कॉम्ट** के वर्गीकरण एवं दुर्खीम के समाज संबंधी वर्गीकरण की तुलना करें।

6.2 सारांश (Summary)

- उपर्युक्त समस्त विवेचना से स्पष्ट है कि **कॉम्ट** एक असाधारण प्रतिभा क्षमता-सम्पन्न विचारक थे। उनकी विचारधाराओं का विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि **कॉम्ट** अपनी सभी अवधारणाओं में अपने समय से काफी आगे बढ़ गए थे।
- **कॉम्ट** के चिन्तन में धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के निकट आए, एक-दूसरे से मिले और फिर एक दूसरे में एकाकार हो गए। धर्म और विज्ञान के इस महामिलन में आज भी विश्वबन्धुत्व और विश्वशान्ति के सपने का साकार रूप से छिपा है।
- कॉम्ट द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों में प्रत्यक्षवाद, तीन स्तरों का नियम, विज्ञानों का संस्तरण, सामाजिक स्थिति-विज्ञान और सामाजिक गति-विज्ञान समाजशास्त्र के दो प्रमुख विभागों के रूप में, परिवार, मानवता का धर्म आदि अत्याधिक लोकप्रिय हैं।
- नये मौलिक सामाजिक सिद्धान्तों को विकसित करने की अपेक्षा अपने से पहले के विद्वानों के विचारों का समन्वय व संगठन ही अधिक किया है। यही उनकी असाधारण योग्यता का परिचय है।

6.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक स्थैतिकी (Social Statics):** इस अवधारणा का प्रयोग समाज में स्थिर पक्ष अर्थात् सामाजिक संरचना तथा उसके विभिन्न अन्तर्संबंधित भागों के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन हेतु किया जाता है।
2. **सामाजिक गतिकी (Social Dynamics):** समाज का गतिशील पक्ष अर्थात् सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन।

6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. **ऑगस्ट कॉम्ट** का सामाजिक गति विज्ञान क्या है?
2. **ऑगस्ट कॉम्ट** का सामाजिक स्थिति विज्ञान क्या है?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. समाजशास्त्र
2. ऐकमत्य
3. सामाजिक व्यवस्था।

6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक–दोषी एवं जैन।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मॉर्गन।

नोट

इकाई–7 : कार्ल मार्क्सः बौद्धिक पृष्ठभूमि (Karl Marx: Intellectual Background)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 बौद्धिक पृष्ठभूमि (Intellectual Background)

7.2 सारांश (Summary)

7.3 शब्दकोश (Keywords)

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- **कार्ल मार्क्स** के जीवन के बारे में जानना।
- **कार्ल मार्क्स** की बौद्धिक पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
- **मार्क्स** के विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन करना।

प्रस्तावना (Introduction)

कार्ल मार्क्स आधुनिक एवं वैज्ञानिक साम्यवाद तथा अधिकांश समाजवादी विचारधाराओं के सर्वमान्य जनक हैं। वैसे तो साम्यवाद की चर्चा अति प्राचीन है और **मार्क्स** के पहले **प्लेटो, सेंट साइमन, फोरियर, लुई ब्लांक, रॉबर्ट आवेन** आदि विद्वानों ने भी राष्ट्रीय सम्पत्ति के उचित वितरण तथा विभिन्न वर्गों में सहयोगी सम्बन्ध, पर बल देते हुए समाज की नई व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की थी, परन्तु इन समाजवादी विचारकों के विचार मुख्यतः राजनीतिक अथवा धार्मिक आधारों पर आधारित थे। **मार्क्स** ने ही सर्वप्रथम साम्यवाद को न केवल एक नवीन और मौलिक रूप प्रदान किया बल्कि उसे ऐसे सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठिति किया जो कि दिन-प्रतिदिन दृढ़तर ही होता जा रहा है। आज शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ इस 'वाद' के मानने वाले लोग न हों। समग्र संसार के श्रमिक और क्रान्तिकारी आन्दोलन **मार्क्स** के प्रभावशाली विचारों से प्रभावित हुए हैं। इसीलिए उन्हें 'अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा के महान्

नोट

शिक्षक और नेता' कहा जाता है। इस दृष्टि से **मार्क्स** संसार के न केवल महान् अपितु युग-प्रवर्त्तक विचारकों में से हैं। **ई. स्तेपानोवा** का तो दावा है कि **मार्क्सवाद** 'मानवता को पथ-प्रदर्शक ध्रुव-तारे की भाँति, कम्युनिज्म का रास्ता दिखा रहा है।'

7.1 बौद्धिक पृष्ठभूमि (Intellectual Background)

'अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा के इस महान् शिक्षक और नेता' **कार्ल मार्क्स** का जन्म (प्रशिया के राइन प्रान्त के) ट्रियर नगर के एक यहूदी परिवार में 5 मई, सन् 1818 को हुआ था। उनके पिता वकील थे और उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। **मार्क्स** की शिक्षा सन् 1830 से 1835 तक ट्रियर के एक अच्छे स्कूल-ट्रियर जिमनेजियम- में होती रही। उन्होंने अपने स्कूल की अन्तिम परीक्षा के लिए जो निबन्ध चुना उसका शीर्षक था-**पेशा चुनने के सम्बन्ध में एक तरुण के विचार।** इस निबन्ध से यह पता चलता है कि इस सत्रह वर्षीय बालक ने उस समय की मानवता की त्यागपूर्ण सेवा करने में अपने जीवन की सार्थकता समझी थी। इस स्कूल की अन्तिम परीक्षा पास करने के पश्चात् **मार्क्स** पहले तो बोन और फिर बर्लिन विश्वविद्यालय के कानून विभाग में दाखिल हुए। आपने अपना विषय कानून चुना था, लेकिन दर्शनशास्त्र और इतिहास में भी उनकी बहुत अधिक रुचि थी।

कार्ल मार्क्स की विचारधाराओं पर उस समय की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रभाव स्पष्ट था। पूँजीवाद का विकास हो जाने के कारण यूरोप के कई देशों में सामन्तों और भूदासों के बीच के सम्बन्धों के अवशेष अधिकाधिक रूप में असह्य बन चुके थे। हर कहीं बड़े पैमाने के पूँजीवादी उद्योग के जन्म और विकास के साथ-साथ किसानों तथा दस्तकारों की दशा भी बिगड़ गई थी और सर्वहारा-वर्ग पैदा हो गया था। यह एक ऐसा वर्ग था जो कि उत्पादन के सभी साधनों से वंचित था। उस समय जर्मनी की जनता एक चक्की के दो पाटों के बीच पिस रही थी। एक ओर से सामन्तवाद का अवशेष और दूसरी ओर से अपरिपक्व पूँजीवाद उसे पीड़ित कर रहा था। इन अवस्थाओं का प्रभाव **मार्क्स** की विचारधाराओं पर बहुत ही स्पष्ट है।

मार्क्स ने अपने विद्यार्थी-जीवन में ही **हीगल** की कृतियों से परिचय कर लिया था और वामपक्षी हीगलवादियों से सम्पर्क बढ़ाना शुरू कर दिया था। **मार्क्स** ने जेना विश्वविद्यालय में अपना एक व्याख्यात्मक निबन्ध प्रस्तुत किया था: उसका शीर्षक था-**दैमोक्राइतस और एपिकुरस के प्रकृति दर्शनों में अन्तर।** उनके इस व्याख्यात्मक निबन्ध से पता चलता है कि उस समय उनका दृष्टिकोण यद्यपि भाववादी था, फिर भी वह **हीगल** के असंगतिपूर्ण दर्शन से अनीश्वरवादी और क्रान्तिकारी निष्कर्ष निकलने लगे थे। उदाहरणार्थ, **हीगल** के एपिकुरस के भौतिकवाद और अनीश्वरवाद को लेकर उनकी निन्दा की थी। इसके विपरीत, **मार्क्स** ने धर्म और अन्धविश्वास के विरुद्ध उस प्राचीन यूनानी दार्शनिक के साहसपूर्ण संघर्ष की सराहना की। **मार्क्स** को उस व्याख्यात्मक निबन्ध पर ही अप्रैल, सन् 1841 में दर्शनशास्त्र के डॉक्टरेट की उपाधि मिली।

मार्क्स की इच्छा बोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने की थी, परन्तु उसकी सुविधा न मिलने पर आपने अप्रैल, सन् 1842 में **राइनिश जाइटुँग** (राइन की गज़ट) नामक पत्रिका में काम करना शुरू किया और उसके सम्पादक भी बन गए। इस पत्रिका के कॉलमों के द्वारा **मार्क्स** ने एशिया और समूचे जर्मनी में उस समय पाए जाने वाले राजनीतिक और धार्मिक उत्पीड़न के विरुद्ध तथा आम जनता के हितों के पक्ष में आवाज उठाई। उन्होंने बार-बार वह अनुभव किया कि जनता की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं के प्रति एशिया की सरकार और उनके अधिकारियों का दृष्टिकोण अत्यन्त निर्दयतापूर्ण है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सरकार, उसके अधिकारी तथा कानून शासन-वर्गों के हितों का ही प्रतिनिधित्व और समर्थन करते हैं, जनता के हितों का नहीं।

नोट

अपने उग्र विचारों के कारण उपरोक्त पत्रिका के हिस्सेदारों से **मार्क्स** का मतभेद हुआ और उन्होंने 17 मई, सन् 1843 को सम्पादक-पद से इस्तीफा दे दिया और जर्मनी छोड़कर पेरिस चले गये। परन्तु इसके पहले ही आपका विवाह **जेनी फॉन वेस्टकालेन** से हुआ। जेनी उनकी बचपन की मित्र थी और विद्यार्थी-काल में ही **मार्क्स** के साथ उसकी मँगनी हो चुकी थी।

पेरिस में अगस्त, सन् 1844 के अन्त में **मार्क्स** और **एंगेल्स** का वह ऐतिहासिक मिलन हुआ जिसमें उन्होंने पाया कि दोनों के विचार पूर्णतः एक-दूसरे से मेल खाते हैं। इसके बाद ही उन दोनों मित्रों के बीच वह रचनात्मक सहयोग आरम्भ हो गया जिसका इतिहास में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। **लेनिन** ने उचित ही लिखा है कि 'प्राचीन काल की कथाओं में हमें मित्रता के बहुत से हृदय-द्रावक उदाहरण मिलते हैं, लेकिन यूरोप का सर्वहारा-वर्ग यह दावा कर सकता है कि उसके विज्ञान की रचना ऐसे दो अध्येताओं और योद्धाओं ने की थी जिनकी परस्पर मैत्री के सम्बन्ध प्राचीन समय की मानवीय मित्रता की सबसे हृदय-द्रावक कहानियों को भी फीका बना देते हैं।''

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मार्क्स ने अपने ········ में ही हीगल की कृतियों से परिचय कर लिया था और वामपक्षी हीगलवादियों से संपर्क बढ़ाना शुरू कर दिया था।
2. ········ की इच्छा बोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने की थी।
3. अपने उग्र विचारों के कारण उपरोक्त पत्रिका के हिस्सेदारों से मार्क्स का ········ हुआ और उन्होंने 17 मई, सन् 1843 को सम्पादक-पद से इस्तीफा दे दिया।

साइलेसिया के बुनकरों के जून, सन् 1844 के विद्रोह का **मार्क्स** ने बड़े उत्साह से स्वागत किया । इस पर प्रशिया की सरकार ने फ्रांस की सरकार पद दबाव डाला और **मार्क्स** को फ्रांस से देश-निकाला दे दिया गया। फरवरी, सन् 1845 में आप ब्रुसेल्स जाकर रहने लगे। इसी समय **मार्क्स** और **एंगेल्स** की संयुक्त रचना **होली फैमिली** प्रकाशित हुई जिसमें सर्वहारा-वर्ग के विश्वव्यापी ऐतिहासिक उद्देश्य से सम्बन्धित विचारों की लगभग एक समूची प्रणाली खड़ी कर दी गई थी। **होली फैमिली** में नए क्रान्तिकारी भौतिकदर्शन का और सर्वहारा-वर्ग की सैद्धान्तिक विचारधारा का तत्व मौजूद था।

मार्क्स और **एंगेल्स** ने इतिहास के भौतिकवादी सिद्धान्तों से सम्बन्धित समाज-विज्ञान को अधिक स्पष्ट और क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने के लिए एक दूसरी संयुक्त रचना **जर्मन विचारधारा** शुरू की। इसमें उन्होंने **हीगल** के भाववादी और नए हीगलवादियों के मनोगत भाववादी दर्शन की विस्तृत आलोचना की। कम्युनिज्म के सैद्धान्तिक स्तम्भ हैं—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद। इन स्तम्भों के निर्माण में **जर्मन विचारधारा** ने सर्वाधिक महत्त्व का कार्य किया था।

मार्क्स और **एंगेल्स** ने –'कम्युनिस्ट लीग' की दूसरी कांग्रेस की तैयारी को बड़ा महत्त्व दिया। यह कांग्रेस सन् 1847 में नवम्बर के अन्त और दिसम्बर के आरम्भ में लन्दन में हुई थी। इसमें इन दो मित्रों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को सर्वसम्मत्ति से स्वीकार कर लिया गया और उन्हें एक **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** तैयार करने का काम सौंपा गया।

टास्क वौद्धिक पृष्ठभूमि किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

नोट

यह वैज्ञानिक कम्युनिज्म का कार्यक्रम सम्बन्धी दस्तावेज है। इसमें ही सबसे पहली बार सर्वहारा के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों की एक संक्षिप्त और सरल व्याख्या की गई थी।

सन् 1847 में **मार्क्स** ने **दर्शनशास्त्र की दरिद्रता** (The Poverty of Philosophy) की रचना की। इस रचना में ही पहली बार द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के बुनियादी सूत्र पेश किये गए। इसमें सारी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रमुख तथा बुनियादी दुर्बलताओं और दोषों का उल्लेख किया गया। **मार्क्स** ने पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों और उनके समर्थक **प्राधों** के मतों का खण्डन किया और बताया कि समाज की अर्थव्यवस्था की विभिन्न मान्यताएँ सैद्धान्तिक रूप में सामाजिक सम्बन्धों को ही व्यक्त करते हैं, वे ऐतिहासिक रूप से परिर्वनशील मान्यताएँ हैं और उन्हें जन्म देने वाली परिस्थितियों के मिटने के बाद वे मान्यताएँ भी नहीं रहेंगी। **प्राधों** ने पूँजीवाद में '**सुधार**' करने का एक नुस्खा पेश किया था। **मार्क्स** ने उनकी तर्कहीनता को बताते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पूँजीवादी समाज में शोषण, गरीबी और संकटों का रहना अनिवार्य है और उन्हें तभी दूर किया जा सकता है जब समाज से पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली ही हटा दी जाए।

क्या आप जानते हैं प्रूधों की पुस्तक The Philosophy of Poverty के प्रत्युत्तर में **मार्क्स** ने The Poverty of Philosophy लिखी।

फ्रांस में वर्ग-संघर्ष (1848 से 1850 तक) नामक अपनी रचना में ही **मार्क्स** ने '**सर्वहारा अधिनायकत्व**' के प्रसिद्ध सूत्र का प्रयोग किया है। इस रचना में स्पष्ट रूप से यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि वैज्ञानिक समाजवाद विभिन्न प्रकार के पूँजीवादी, निम्न-पूँजीवादी और कल्याणकारी समाजवाद से सर्वथा भिन्न है। इसमें कहा गया है कि वैज्ञानिक समाजवाद ''क्रान्ति के स्थायित्व की घोषणा है, वह सामान्य रूप से सभी वर्ग-विभेदों को दूर करने, उन विभेदों के आधार बने सभी प्रकार के उत्पादन-सम्बन्धों को तोड़ने, इन उत्पादन-सम्बन्धों के अनुरूप बने सामाजिक सम्बन्धों को नष्ट करने और इन सामाजिक सम्बन्धों से पैदा होने वाले सभी विचारों में क्रान्ति लाने के लिए एक आवश्यक संक्रमणकालीन व्यवस्था के रूप में सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व की घोषणा है।''

सन् 1857 में **मार्क्स** का विश्वविख्यात **ग्रन्थ 'दास कैपिटल'** (Das Kapital) का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का दूसरा और तीसरा खण्ड उनके जीवनकाल में प्रकाशित न हो पाया था और उन्हें **एंगेल्स** ने क्रमशः सन् 1885 और 1894 में प्रकाशित किया था। **कैपिटल मार्क्स** की एक अनुपम देन है। **लेनिन** के शब्दों में, ''यह ग्रन्थ ही वह मुख्य और बुनियादी रचना है जिसमें वैज्ञानिक समाजवाद की व्याख्या की गई है।'' इस ग्रन्थ में सर्वहारा-वर्ग के ऐतिहासिक कर्त्तव्य के सिद्धान्त, समाजवादी क्रान्ति और सर्वहारा के अधिनायकत्व को गहन दार्शनिक तथा अर्थशास्त्रीय ढंग से बताया गया है।

नोट्स **ई. स्तेपानोवा** के मतानुसार, ''**मार्क्स** की यह महान् रचना दास कैपिटल पूँजीवादी गुलामी के विरुद्ध सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष में उसका एक शक्तिशाली सैद्धान्तिक अस्त्र है।''

इन सब गुणों के कारण ही **कैपिटल** को समाजवादियों का **बाइबिल** माना जाता है।

मार्क्स ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में जो पत्र लिखे थे, उनमें आगामी रूसी क्रान्ति के बारे में उत्कट आशा की भनक मिलती है। उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि रूसी क्रान्ति विश्व-इतिहास के प्रवाह को बड़ी तेजी से मोड़ देगी।

नोट

मानसिक परिश्रम और हमेशा से साथ रही निर्धनता ने **मार्क्स** की सबल काया को असमय में ही निर्बल बना दिया। 2 दिसम्बर, 1881 में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इससे उन्हें भारी सदमा पहुँचा। उनका स्वास्थ्य अब और भी चिन्ताजनक होता चला गया। फेफड़े की सूजन और पुरानी खाँसी की चिकित्सा के लिए वह अल्जीरिया और दक्षिणी फ्रांस भी गए; लेकिन उन्हें भी कोई लाभ नहीं हुआ। इसी बीच उन्हें एक आघात और लगा-उनकी सबसे बड़ी पुत्री जेनी की मुत्यु हो गई। जनवरी, सन् 1883 में उन पर पुरानी खाँसी का एक और हमला हुआ। इसके साथ ही कई और पेचीदगियाँ पैदा हो गईं। उनकी हालत तेजी से गिरती ही चली गई और 14 मार्च, सन् 1883 को **मार्क्स** इस संसार से विदा हो गए।

एंगेल्स ने संसार के सभी भागों में पत्र भेजे और **मार्क्स** के मित्रों तथा अनुयायियों को बताया कि अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को इस दु:खद घटना से कितनी भारी क्षति पहुँची है। उन्होंने लिखा, ''हमारी पार्टी के सबसे महान् मस्तिष्क ने सोचना बन्द कर दिया है; आज एक ऐसे दृढ़तम हृदय ने धड़कना बन्द कर दिया है जैसा मैंने पहले कभी देखा-सुना नहीं था।''

17 मार्च, 1883 को शनिवार के दिन **मार्क्स** के शव को लन्दन के हाइगेट नामक कब्रिस्तान में दफनाया गया। **एंगेल्स** ने उनकी समाधि के बगल में ही एक हृदय-विदारक भाषण दिया। अपने इस भाषण में उन्होंने वैज्ञानिक कम्युनिज्म के इस संस्थापक, मजदूर-वर्ग के इस महान् नेता के भागीरथ प्रयत्नों का, सभी मेहनतकशों और शोषितों के लिए, सर्वहारा-वर्ग के उद्देश्य के लिए उनके त्यागपूर्ण और वीरोचित संघर्षों का आँखों-देखा और सजीव चित्र उपस्थित कर दिया। उन्होंने अपना भाषण इस भविष्यवाणी के साथ समाप्त किया, ''उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा, और इसी तरह उनकी कीर्ति भी अमर रहेगी।''

7.2 सारांश (Summary)

- मार्क्स अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण व्यवस्था के लिए अग्राह्य थे।
- उन्होंने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता अन्त तक बनाए रखी।
- 'दुनिया के मजदूरों एक हो' का नारा देने वाले **मार्क्स** एक क्रान्ति का स्वप्न देखते थे, जिसमें किसी प्रकार की असमानता मौजूद न हों।
- **मार्क्स** का अंत तक साथ देने वाले **एंगेल्स** उनके सबसे करीबी मित्र थे।

7.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism):** 'द्वन्द्वात्मक' शब्द उस प्रक्रिया को इंगित करता है जिसके अनुसार सृष्टि का विकास एवं उसमें परिवर्तन होता है। जबकि भौतिकवाद शब्द सृष्टि की रचना के मूलतत्व को सूचित करता है। इससे विकास भौतिक पदार्थ में निहित एक आन्तरिक विरोध द्वारा संचालित होता है। इसमें वाद, प्रतिवाद एवं संवाद के तीन चरण होते हैं।
2. **दर्शनशास्त्र की दरिद्रता (Poverty of Philosophy):** मार्क्स ने उनकी तर्कहीनता को बताते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पूँजीवादी समाज में शोषण, गरीबी और संकटों का रहना अनिवार्य है।

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. **मार्क्स** के विचारों पर समकालीन परिस्थितियों के प्रभाव की विवेचना करें।
2. बौद्धिक पृष्ठभूमि के बारे में क्या जानते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विद्यार्थी-जीवन 2. मार्क्स 3. मतभेद।

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट–जे.एच. टर्नर।
3. सामाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।

इकाई–8 : इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

8.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)

8.3 सारांश (Summary)

8.4 शब्दकोश (Keywords)

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- **कार्ल मार्क्स** के अनुसार, मानव इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या जानना।
- ऐतिहासिक भौतिकवाद के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या।
- सामाजिक परिवर्तन की आर्थिक निर्धारणवाद की दृष्टि से व्याख्या।

प्रस्तावना (Introduction)

समाज में परिवर्तन की व्याख्या सामान्यत: दो प्रकार से ही की जाती है। प्रथम प्रकार की विचारधारा के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के लिए कोई एक कारक अकेला उत्तरदायी नहीं होता। बल्कि अनेक कारक मिलकर सामाजिक परिवर्तन का कारण बनते हैं। दूसरी विचारधारा के अनुसार सामाजिक परिवर्तन लाने में कोई एक कारक ही प्रधान होता है। इस प्रकार कारक को ही समाज में सभी परिवर्तनों का कारण मानने वाले सिद्धान्तों को निर्धारणवादी कहा जाता है। मार्क्स का आर्थिक निर्धारणवाद का सिद्धान्त इसी दूसरी श्रेणी में आता है। मार्क्स आर्थिक कारक को ही सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रमुख मानता है।

नोट

सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या करने की दृष्टि से **मार्क्स** का सिद्धान्त आर्थिक सम्प्रदाय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक घटनाओं एवं परिवर्तनों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। उसी प्रकार मार्क्स ने अपने आर्थिक निर्धारणवाद के सिद्धान्त द्वारा समस्त सामाजिक व्यवस्था का आर्थिक कारकों द्वारा विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। मार्क्स के सिद्धान्त का प्रमुख आधार आर्थिक व्यवस्था है।

8.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

मार्क्स द्वारा प्रस्तुत एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या या आर्थिक व्याख्या है जिसे 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' भी कहा जाता है। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सहायता से अपने समाजवाद को एक वैज्ञानिक निश्च-यात्मकता प्रदान की और इसका प्रयोग ऐतिहासिक एवं सामाजिक विकास की व्याख्या करने के लिए किया। इतिहास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या को ही उसने 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' (Historical Materialism) या 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' का नाम दिया। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के नामकरण पर विचार प्रकट करते हुए **प्रो. वेपर** ने लिखा है, "इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के सिद्धन्त के अन्तर्गत मार्क्स ने जो बात कही है, उसके लिए यह नाम भ्रमपूर्ण है। इस सिद्धान्त को भौतिकवाद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भौतिक शब्द का अर्थ चेतनाहीन पदार्थ से होता है जबकि इस सिद्धान्त में मार्क्स ने चेतनाहीन पदार्थ की कोई बात नहीं की है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की बात कहते हुए यह कहा है कि यह परिवर्तन आर्थिक कारणों से हाता है। अत: **मार्क्स** के सिद्धान्त का नाम '**इतिहास की आर्थिक व्याख्या**' होना चाहिए। **कोल** (Cole) भी इसे 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' के नाम से सम्बोधित करने के ही पक्ष में है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)

मार्क्स ने **हीगल** के द्वन्द्वात्मक आत्मवाद को अस्वीकार करते हुए अपने दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित किया। "**हीगल** के मत में भौतिक वस्तुएँ, प्रकृति आदि आत्मा के विकार अर्थात् उससे उत्पन्न हैं, पर **मार्क्स** के मत से जिसे हम आत्मा, मन अथवा मस्तिष्क कहते हैं, यह भौतिक शरीर से उत्पन्न वस्तु हैं, ठीक वैसे ही जैसे घड़ी के पुर्जो को एक निश्चित क्रम से संयुक्त कर देने पर उनमें गति उत्पन्न हो जाती हैं।"

अत: स्पष्ट है कि **मार्क्स** का दर्शन **हीगल** के दर्शन का एक विपरीत रूप है। अपने अमर ग्रंथ **कैपिटल** की भूमिका में **मार्क्स** ने स्वयं लिखा है, "मैंने **हीगल** के द्वन्द्ववाद को सिर (मस्तिष्क, आत्मा) के बल खड़ा पाया, मैंने उसे पैरों के बल (पृथ्वी पर, भौतिकता के आधार पर) खड़ा कर दिया। यदि आप रहस्यमय खोल में से तार्किक सार-तत्व को ढूँढ़ निकालना चाहते हैं, तो आपको उसे (हीगल के द्वन्द्ववाद को) बिल्कुल ही उलट देना होगा।" आइए, इस स्थिति का कुछ विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाए।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्सवादी चिन्तन की सबसे महान् सफलताओं में से एक है। इस प्रतिभापूर्ण खोज के कारण ही दर्शनशास्त्र पहली बार विज्ञान बन सका–ऐसा विज्ञान बन सका जो प्रकृति, समाज और मानवीय चिन्तन के विकास वस्तुगत नियमों का ठीक-ठाक प्रतिनिधित्व कर सके। यह सिद्धांत ऐतिहासिक विकास के सामान्य नियमों को प्रतिपादित करता है। परन्तु इसे भली प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम 'द्वन्द्ववाद' के क्रम-विकास की विवेचना संक्षेप में कर लें जोकि निम्नवत् है–

द्वन्द्वात्मक का अर्थ (Meaning of Dialectism)

'द्वन्द्ववाद' का अंग्रेजी रूपान्तर Dialectic यूनानी शब्द Dialego से बना है जिसका अर्थ होता है बातचीत करना या तर्क वितर्क करना। प्राचीन समय में 'द्वन्द्ववाद' तर्क वितर्क के दौरान प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत तर्क या युक्ति में

नोट

विरोधों को बताकर तथा उनका समाधान करके 'सत्य' तक पहुँचने की कला थी। प्राचीनकाल में ऐसे दार्शनिक थे जिनका विश्वास था कि विचार में विरोधों का प्रकट होना तथा विपरीत मतों का संघर्ष सत्य तक पहुँचने का सबसे उत्तम उपाय है। बाद में चिन्तन की इस द्वन्द्वात्मक प्रणाली का प्रयोग प्राकृतिक घटनाएँ सदैव गतिशील रहते हुए निरन्तर परिवर्तित होती रहती है; और प्रकृति का विकास प्रकृति में विरोधों का विकास या प्रकृति में विरोधी शक्तियों की अन्त: क्रिया के फलस्वरूप होता है।

मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Marx's Dialectical Materialism)

जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी में हीगलवादी द्वन्द्ववाद की कुछ 'छाया' दिखलाई देती है और वह इस अर्थ में कि **मार्क्स** ने **हीगल** के द्वन्द्वात्मक विकासवाद को तो मान्यता दी, परन्तु उसके आधार या कारण को, अर्थात् आत्मा, निरपेक्ष विचार आदि के सिद्धांत को, पूर्णतया अस्वीकार किया। अस्वीकार करने का प्रमुख कारण यह है कि **मार्क्स** का विश्वास है कि **हीगल** ने अपने द्वन्द्ववाद में वास्तविक तथा प्रयोगसिद्ध तथ्यों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। **मार्क्स** का कथन है कि उस वैषयिक व भौतिक दुनिया की **हीगल** ने अवहेलना की जिसमें **हीगल** रहते थे और जिससे उन्हें ह्रष्ट-पुष्ट बनने तथा जीविका पालन के अन्य समस्त साधन उपलब्ध हुए, जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क के साथ उनके शरीर का अस्तित्व बना रहा तथा उनके लिए दार्शनिक विचार व्यक्त करना सम्भव हुआ। साथ ही **हीगल** उस दुनिया को भी भूल गए जिससे उन्हें अपने विचार तथा उससे संबंधित नियमों की अन्तर्वस्तु प्राप्त हुए थे। यह तो वही वास्तविक दुनिया है जिसके कारण, **हीगल** का वर्णन सम्भव हुआ; परन्तु **हीगल** ने तो यह मान लेने की भूल की कि उनके दर्शन के कारण ही दुनिया सम्भव हुई है। मस्तिष्क अपनी कल्पना का पंख लगाकर उन्मुक्त आकाश में जितना चाहे उड़ सकता है, किन्तु उसके पैर सदा ही धरती पर टिके रहेंगे, टहनी केवल शाखा पर ही उग सकती है।

संक्षेप में, **हीगल** के अनुसार मानव-समाज की प्रगति निरन्तर द्वन्द्ववादी प्रणाली से होती रहती है। इस प्रगति में 'विचार' का प्रमुख स्थान है। **हीगल** के अनुसार बाह्य जगत् आभ्यन्तरिक विचारों का ही प्रतिबिम्ब है। परन्तु **मार्क्स** ने भौतिक संसार को ही कारण माना है और कहा है कि भौतिक संसार ही आभ्यान्तरिक विचारों का जनक है। अत: **मार्क्स** का द्वन्द्ववाद **हीगल** के द्वन्द्ववाद का उल्टा है। स्वयं **मार्क्स** के ही शब्दों में, "मेरी द्वन्द्वात्मक प्रणाली **हीगल** की प्रणाली से न केवल भिन्न है, वरन् उससे बिल्कुल विपरीत है। **हीगल** के लिए चिन्तन की प्रक्रिया जिसे उन्होंने 'विचार' का नाम देकर एक स्वतंत्र विषय के रूप में बदल दिया है, वास्तविक जगत् का सृजनकर्त्ता है और वास्वविक जगत् 'विचार' का बाह्य रूप हैं इसके विपरीत, मेरे लिए आदर्श मानव के मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित और विचार के रूप में परिवर्तित भौतिक जगत् के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"

अत: स्पष्ट है कि **मार्क्स** के द्वन्द्वात्मक सिद्धांत का आधार भौतिकवादी है। अपने भौतिकवाद की चर्चा करते हुए **मार्क्स** तथा **एंगेल्स** ने दार्शनिक **फायरबाख़** के नाम का प्राय: उल्लेख किया है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि **मार्क्स** ने **फायरबाख़** के भौतिकवाद को अपनाया है। **ई. स्तेपानोवा** ने उचित ही लिखा है, "यह सही है कि लुडबिग **फायरबाख़** की रचनाओं में हीगल के भाववादी दर्शन की आलोचना की गई थी, यह भी सही है कि उन रचनाओं ने **मार्क्स** को भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाने में सहायता दी थी। लेकिन **फायरबाख़** केवल प्राकृतिक घटनाओं की ही व्याख्या भौतिकवादी ढंग से किया करते थे; इतिहास, सामाजिक संबंधों और राजनीति की व्याख्या करने में उनका दृष्टिकोण भाववादी ही बना रहा। **मार्क्स** ने **फायरबाख़** को यह श्रेय तो दिया कि **हीगल** की आलोचना करने वाले वही सबसे पहले भौतिकवादी दार्शनिक थे। साथ ही उन्होंने **फायरबाख़** के भौतिकवाद की सीमाओं और असंगतियों को भी बताया। **मार्क्स** का उद्देश्य एक ऐसे सुसम्बद्ध और सुसंगत भौतिकवादी विश्वदर्शन की रचना करना था जो सामाजिक जीवन और प्रकृति दोनों पर लागू हो सके।"

नोट

"**फायरबाख़** ने **हीगल** के द्वन्द्ववाद का बिल्कुल खण्डन कर दिया था। इसके विपरीत, **मार्क्स** ने आलोचनात्मक दृष्टि से उसमें संशोधन किया।" **मार्क्स** ने विज्ञान, खासतौर पर प्राकृतिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त सामग्री के आधार पर भौतिकवाद और द्वन्द्ववाद को एक ही सुसम्बद्ध विश्व-दर्शन के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से **हीगल** के द्वन्द्ववाद की कायापलट करनी शुरू की।"

8.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)

इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा का प्रयोग **मार्क्स** ने अपने वैज्ञानिक समाजवाद के प्रतिपादन एवं पुष्टि की दृष्टि से किया। मार्क्स से पूर्व इतिहास की व्याख्या आदर्शवादी दृष्टिकाण के आधार पर की जाती थी। उदाहरण के लिए, **आगस्ट कॉम्ट** ने मानव के बौद्धिक विकास के आधार पर समाज के विकास को भी तीन स्तरों में विभाजित किया। इसी प्रकार से हीगल ने भी मानवीय इतिहास को विचारों का ही इतिहास माना। मार्क्स ने इन विचारों का खण्डन किया। उसने हीगल से भिन्न अपने विचारों को भौतिकवादी जामा पहनाया तथा इतिहास की आर्थिक या भौतिक व्याख्या प्रस्तुत की। हीगल मानते हैं कि सम्पूर्ण जगत् में एक निरपेक्ष विचार की अभिव्यक्ति होती है तथा विचारों में परिवर्तन होने पर ही इतिहास एवं समाज में भी परिवर्तन आता है। मार्क्स ने हीगल के विपरीत ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या भौतिक पदार्थों के आधार पर की हैं। वे कहते हैं कि विचार पर्यावरण को प्रभावित नहीं करते वरन् पर्यावरण ही विचारों को प्रभावित करता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद एक दार्शनिक विज्ञान के रूप में सामाजिक विकास के सामान्य नियमों, पहलुओं एवं प्रवृत्तियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यह सामाजिक जीवन के सामाजिक चेतना से सम्बन्धों का भी उल्लेख करता है तथा प्रत्येक समस्या की व्याख्या इसी सह-सम्बन्ध द्वारा की जाती है। **कार्ल मार्क्स** ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है, "ऐतिहासिक भौतिकवाद एक दार्शनिक विज्ञान है जिसका सम्बन्ध जीवन के सार्वभौमिक नियमों से भिन्न सामाजिक विकास के विशिष्ट नियमों से है।"

एम. सिदोरोव के शब्दों में, "ऐतिहासिक भौतिकवाद वह दार्शनिक विद्या है जो एक अखण्ड व्याख्या के रूप में समाज का तथा उस व्याख्या के कार्य और विकास को शामिल करने वाले मुख्य नियमों का अध्ययन करती है। संक्षेप मे, "यह सामाजिक विकास का दार्शनिक सिद्धान्त है।"

नोट्स **स्टालिन** के शब्दों में, "ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के इतिहास का विज्ञान है।"

ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य बातों का उल्लेख मार्क्स ने अपने प्रसिद्ध कृति 'जर्मन विचारधारा' (German Ideology) में किया। मार्क्स उन इतिहासकारों से सहमत नहीं है जो यह मानते हैं कि इतिहास कुछ महान् और विशेष व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम है। वह इस मत से भी सहमत नहीं है कि प्राकृतिक या भौगोलिक पर्यावरण ही मानव के सामाजिक जीवन और उसके विकास के लिए उत्तरदायी है। यद्यपि इनका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है किन्तु इन्हें निर्णायक कारक नहीं कह सकते। इसी प्रकार से जनसंख्यात्मक कारक भी वास्तविक कारक नहीं हैं जो इतिहास और मानव के सामाजिक जीवन को तय करते हैं। **मार्क्स** कहता है कि वास्तविक कारक तो आर्थिक कारक ही हैं जो इतिहास को बनाते हैं। **मार्क्स** के विचार में इतिहास राजा-महाराजा, रानी-महारानी तथा सेनापतियों और विजेताओं की कहानी और उनकी गाथाओं का गान मात्र नहीं है। उनके अनुसार इतिहास की सभी घटनाएँ आर्थिक अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम मात्र हैं। किसी भी समाज, कोई भी राजनीतिक संगठन और

नोट

उसकी न्याय-व्यवस्था को समझने के लिए उसके आर्थिक ढाँचे का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। मानवीय क्रियाएँ नैतिकता, धर्म, प्रकृति, जनसंख्या और राष्ट्रीयता से प्रभावित नहीं होतीं वरन् केवल आर्थिक कारकों से प्रभावित होती है। **मार्क्स** के ही शब्दो में, "सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक सम्बन्ध, सभी धार्मिक तथा कानूनी पद्धतियाँ, सभी बौद्धिक दृष्टिकोण जो इतिहास के विकासक्रम में जन्म लेते हैं, वे सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होते हैं।"

मार्क्स के सिद्धान्त में आर्थिक निर्धारणवाद केन्द्रीय स्थिति बनाये हुए है। यह "ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर व्यक्त एवं विवेचित किये गए विचार घूमते हैं।" सामाजिक जीवन, समाज तथा सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सिद्धान्त उसके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का ही विस्तार है।

मार्क्स के भौतिकवाद की मुख्य सामग्री मानव तथा उसके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले वे यन्त्र हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति अपना पोषण करता है। **मार्क्स** से पूर्व **हॉब्स** भी भौतिकवादी था परन्तु उसका भौतिकवाद यान्त्रिक होने के स्थान पर दार्शनिक अधिक था। लॉक ने सम्पत्ति को मुख्य केन्द्र माना परन्तु उसने उत्पादक क्रियाओं के स्थान पर वैध स्वामित्व पर बल दिया। हीगल और टॉकबिले ने भी मानव के मनोविज्ञान पर औद्योगिक संगठन के प्रभाव को अंकित तो किया परन्तु उन्होंने उसे अपने सिद्धान्तों का केन्द्र नहीं माना। मार्क्स और ऐंजिल्स पहले दो दार्शनिक हैं जिन्होंने यन्त्रों की 'निर्धारित करने की क्षमता' को महत्त्व दिया। इन्होंने आर्थिक अवस्थाओं को महत्त्वपूर्ण बताकर उनकी अन्य व्यवस्थाओं जैसे—सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आदि पर प्रभाव डालने तथा उनको निर्धारित करने की क्षमता पर बल दिया है।

मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकवाद की इस महान् खोज़ ने विश्व-इतिहास के समस्त दृष्टिकोण में वास्तविक क्रान्ति ला दी, उसे एक झटके के साथ मोड़ दिया। इस खोज़ ने इतिहास को एक विज्ञान बना दिया। मार्क्स ने अपनी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में समस्त मानवीय इतिहास की दो आधारभूत बातों का उल्लेख किया है:

(*i*) जीवित रहने के साधनों जैसे—भोजन, वस्त्र और आवास का उत्पादन, तथा (*ii*) सन्तानों को जन्म देना (प्रजनन) जिससे कि समाज व्यवस्था बनी रहे।

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद (आर्थिक निर्धारणवाद) की व्याख्या [Interpretation of Historical Materialism (Economic Determinism) of Marx]

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद या आर्थिक निर्धारणवाद के प्रमुख पहलुओं को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते है:

1. **भौतिक मूल्यों की आवश्यकता:** मानव ही इतिहास का निर्माता है। वह इतिहास का निर्माण तभी कर सकता है जब उसका जीवन और अस्तित्व बना रहे। मानव के अस्तित्व और जीवन के लिए यह जरूरी है कि उसे भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधाएँ प्राप्त हों जिन्हें मार्क्स **आवश्यक भौतिक मूल्य** कहता है।

क्या आप जानते हैं मार्क्स ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का विधिवत अध्ययन किया था।

2. भोजन, वस्त्र एवं आवास अर्थात् भौतिक मूल्यों को जुटाने के लिए मानव को उत्पादन करना होता है।

3. उत्पादन का कार्य उत्पादन की प्रणाली (mode of production) पर निर्भर है। इस उत्पादन-प्रणाली में हम उत्पादन के औजार, श्रम, उत्पादन की शक्ति और कौशल आदि को गिनते हैं।

नोट

4. एक उत्पादन प्रणाली एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों को जन्म देती है जो दूसरे प्रकार की उत्पादन-प्रणाली से भिन्न होते हैं। उत्पादन-प्रणाली और उत्पादन शक्ति ही मानव के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व बौद्धिक जीवन की क्रियाओं को तय करती है, उसी पर मानव की सरकार, कानून, कला, साहित्य और धर्म का स्वरूप निर्भर होता है।

5. जब उत्पादन-प्रणाली और उत्पादन की शक्ति में परिवर्तन होता है तो मानव की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, बौद्धिक सभी क्रियाओं में परिर्वतन आ जाता है। यही कारण है कि जब हस्त-चालित यन्त्र थे तो सामन्तवादी समाज था और जब वाष्प-चालित यन्त्र आए तो पूँजीवदी समाज ने जन्म लिया।

6. उत्पादन-प्रणाली व उत्पादन की शक्ति में परिवर्तन द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया से होता है और तब तक होता है जब तक कि उत्पादक की सर्वश्रेष्ठ अवस्था नहीं आ जाती। यह अवस्था समाजवाद की स्थापना पर ही आती है जो इतिहास के विकास का अन्तिम चरण है। इस तरह मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद, **वेपर** के शब्दों में, "एक आशावादी सिद्धान्त है जिसमें मानव की विजय होती है।"

7. **मार्क्स** भी **हीगल** की भांति इतिहास की अनिवार्यता में विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि इतिहास का निर्माण मनुष्यों के प्रयत्नों से सर्वथा स्वतन्त्र रूप में होता है। इतिहास के प्रवाह को मानव-प्रयत्नों द्वारा रोका नहीं जा सकता। इस प्रवाह में विभिन्न युगों के उत्पादन की शक्तियों के अनुकूल जिस प्रकार के सम्बन्धों की आवश्यकता होगी, वे अवश्य अवतरित होंगे। मानव के वश में यह है कि वह उनके आने में देर कर दें या उन्हें शीघ्र ले आए।

8. **इतिहास का काल-विभाजन:** मार्क्स यह मानते हैं कि इतिहास की प्रत्येक अवस्था वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। इतिहास की प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिवर्तन आर्थिक शक्तियों का परिणाम है। मार्क्स ने उत्पादन सम्बन्धों एवं आर्थिक प्रणालियों के आधार पर इतिहास को पाँच युगों में बाँटा है–(*i*) आदिम साम्यवादी युग, (*ii*) दासत्व युग, (*iii*) सामन्तवादी युग, (*iv*) पूँजीवादी युग, और (*v*) समाजवादी युग। इनमें से तीन युग बीत चुके हैं, चौथा चल रहा है और पाँचवां अब आने को है।

(*i*) आदिम साम्यवादी युग: यह इतिहास का प्रारम्भिक युग था। इस युग में पत्थर के औजार और धनुषबाण उत्पादन के मुख्य साधन थे। मानव मछली मारकर, शिकार करके और कन्दमूल-फल एकत्रित करके जीवनयापन करता था। उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व था, निजी सम्पत्ति जैसी चीज नहीं थी। सब समान थे तथा शोषण की स्थिति नहीं थी, इसलिए ही मार्क्स इसे साम्यवादी अवस्था कहता है।

(*ii*) दासत्व युग: धीरे-धीरे भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। अब व्यक्ति पशुपालन एवं कृषि कार्य करने लगा, दस्तकारी का उदय हुआ निजी सम्पत्ति के विचार ने जन्म लिया और श्रम-विभाजन पनपा। जिन व्यक्तियों का भूमि और उत्पादन के साधनों पर अधिकार था, वे दूसरों को अपना दास बनाकर उनसे बलपूर्वक काम कराने लगे। इस प्रकार दासत्व युग में स्वतंत्रता और समानता समाप्त हो गई, समाज में स्वामी और दास दो वर्ग बने तथा दासों का शोषण प्रारंभ हुआ और वर्ग-संघर्ष होने लगा।

(*iii*) सामन्तवादी युग: इस युग में उत्पादन के साधनों पर राजाओं और सामन्तों का अधिकार हो गया, विशेषत: भूमि पर। छोटे-छोटे किसान जिन्हें अर्धदास किसान (Serfs) कहा जाता था, सामन्तों से भूमि लेकर उस पर खेती करते थे। किसान दास तो न थे किन्तु उन पर कई नियंत्रण लाद दिये गए थे। उन्हें सामन्तों के यहाँ बेगार में खेती करनी होती थी और युद्ध के समय उनकी सेना में सिपाही के रूप में लड़ना पड़ता था। इन सबके बदले में सामन्त उन्हें निर्वाह के लिए कुछ वेतन या भूमि दे देता था। इस युग में शोषण भयंकर था, अत: शोषक और शोषितों में वर्ग-संघर्ष निरन्तर चलता रहा।

नोट

(*iv*) पूँजीवादी युग: इस युग का प्रादुर्भाव औद्योगिक क्रांति से शुरू हुआ जिसने उत्पादन के साधनों में आमूल-चूल परिवर्तन ला दिए। पूँजीपति उत्पादन के नवीन साधनों जैसे कारखानों एवं मशीनों का स्वामी हो गया और श्रमिकों द्वारा उत्पादन का कार्य कराने लगा। अब उत्पादन बड़ी मात्रा में और तीव्र गति से होने लगा। छोटे-छोटे उद्योग-धंधे नष्ट हो गए क्योंकि वे कारखानों में बने माल से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते थे। अतः कुटीर उद्योगों में लगे व्यक्ति भी कारखानों में श्रमिकों के रूप में सम्मिलित हो गए। इस प्रकार समाज की सम्पत्ति मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो गई और समाज में पूँजीपति एवं श्रमिक दो स्पष्ट वर्ग पनपे जो अपने-अपने हितों को लेकर परस्पर संघर्षरत हैं। इस युग में श्रमिकों का शोषण अन्य युगों से तीव्र हुआ। पूँजीवादी व्यवस्था के अनुसार ही राज्य व्यवस्था, कला, नैतिकता, साहित्य और दर्शन में भी परिवर्तन हुआ।

(*v*) समाजवादी युग: पूँजीपतियों के शोषण को समाप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग में चेतना आएगी, वे क्रांति करेंगे और पूँजीपतियों को उखाड़ फेंकेंगे। इस संघर्ष में श्रमिकों की ही विजय होगी। वे समाजवाद की स्थापना करेंगे और श्रमिकों का अधिनायकत्व कायम होगा। उत्पादन के साधनों पर राज्य का सामूहिक अधिकार होगा, तब शोषक और शोषित नहीं होंगे और वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। इस युग में व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करना होगा और उन्हें आवश्यकता के अनुरूप वस्तुएँ मिलेंगी।

मार्क्स के समाजवादी समाज की अवस्था रूस, चीन और पूर्वी-यूरोपीय देशों में ही आयी है, शेष में नहीं। मार्क्स इतिहास की आर्थिक व्याख्या के आधार पर पूँजीवाद का अन्त और साम्यवाद के आगमन की सम्भावना व्यक्त करता है। वह कहता है कि प्रत्येक युग में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके पास उत्पादन के साधन होते हैं और शेष साधनविहीन। इन दोनों वर्गों में सदैव संघर्ष होता रहा है जो साम्यवादी युग में आकर समाप्त हो जाता है और वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मार्क्स से पूर्व हॉब्स भी ········ का परन्तु उसका भौतिकवाद यांत्रिक होने के स्थान पर दार्शनिक अधिक था।
2. ········ की ऐतिहासिक, भौतिकवाद की इस महान् खोज ने विश्व-इतिहास के समस्त दृष्टिकोण में वास्तविक क्रांति ला दी।
3. ········ के अस्तित्व और जीवन के लिए यह जरूरी है कि उसे भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधाएँ प्राप्त हों।

मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इतिहास की भौतिकवादी (आर्थिक) व्याख्या की आलोचना

मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इतिहास की भौतिकवादी (आर्थिक) व्याख्या के सिद्धांत की निम्नांकित आलोचनाएँ की जाती हैं–

1. आर्थिक तत्व पर अत्यधिक और अनावश्यक बल: मार्क्स ने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं वैधानिक ढाँचे में परिवर्तन के लिए आर्थिक तत्वों को उत्तरदायी माना है जो अतिशयोक्तिपूर्ण है। उसने भौगोलिक, जनसंख्यात्मक और सामाजिक तत्वों की अवहेलना की है जबकि इन सभी का सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण हाथ होता है।

2. आर्थिक आधार पर सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या असम्भव: मार्क्स ने सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या आर्थिक तत्वों के आधार पर की है किन्तु यह उचित नहीं है। गौतम बुद्ध का संन्यास, मराठों का पतन, भारत विभाजन, अरब-इजरायल युद्ध, पद्मिनी का जौहर आदि घटनाओं की आर्थिक व्याख्या नहीं की जा सकती।

3. संयोग के तत्व की उपेक्षा: मार्क्स ने इतिहास की अपनी व्याख्या में संयोग के तत्व को भुला दिया है।

नोट

टास्क ऐतिहासिक भौतिकवाद किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

यदि इंग्लैण्ड की महारानी ऐलिजाबेथ प्रथम ने विवाह किया होता और उसके सन्तान होती तो इंग्लैण्ड का एकीकरण नहीं हो सकता था।

4. इतिहास के कालक्रम अनुपयुक्त: मार्क्स ने मानव इतिहास को 5 युगों में बाँटा है। उनके इस क्रम से कई विद्वान सहमत नहीं हैं। वे पूँजीवाद के बाद साम्यवादी युग आने की बात कहते हैं। किन्तु रूस और चीन में जहाँ साम्यवाद है, वह उस प्रकार के पूँजीवादी युग के बाद नहीं आया जिसकी कल्पना मार्क्स ने की है। ये दोनों ही कृषि-प्रधान देश थे न कि औद्योगिक दृष्टि से पूर्ण विकसित देश।

5. इतिहास का राज्यविहीन समाज पर आकर रुकना सम्भव नहीं: मार्क्स का यह कहना भी अनुपयुक्त है कि इतिहास का विकास राज्यविहीन समाज के निर्माण पर रुक जाएगा। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम, है, जिस द्वन्द्ववाद के कारण अन्य युग बदले, उसी आधार पर यह युग भी तो परिवर्तित होगा किन्तु मार्क्स ने इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं किया।

6. मार्क्स का यह कहना भी उपयुक्त नहीं है कि आर्थिक शक्ति के द्वारा ही राजनीतिक शक्ति प्राप्त होती है। स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है।

8.3 सारांश (Summary)

- ऐतिहासिक भौतिकवाद **मार्क्स** द्वारा दिये गए उनके समाज एवं इतिहास के सिद्धांत का नाम है। इसका आधार उस नियम की व्याख्या है जो मानव इतिहास की गतिविधि को निर्धारित करती है। इसके द्वारा मार्क्स ने भौतिकवादी व्याख्या की प्रतिष्ठा की है।
- सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या करने की दृष्टि से **मार्क्स** का सिद्धान्त आर्थिक सम्प्रदाय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक घटनाओं एवं परिवर्तनों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की।
- इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा का प्रयोग **मार्क्स** ने अपने वैज्ञानिक समाजवाद के प्रतिपादन एवं पुष्टि की दृष्टि से किया।
- **एम. सिदोरोव** के शब्दों में, "ऐतिहासिक भौतिकवाद वह दार्शनिक विद्या है जो एक अखण्ड व्याख्या के रूप में समाज का तथा उस व्याख्या के कार्य और विकास को शामिल करने वाले मुख्य नियमों का अध्ययन करती है।

8.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism):** जब किसी समाज का विश्लेषण उत्पादन के तरीकों, उत्पादन-संबंध और उत्पादन शक्तियों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है, तब इसे ही इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या या ऐतिहासिक भौतिकवाद का नाम दिया जाता है।
2. **संयोग के तत्व की उपेक्षा:** मार्क्स ने इतिहास की अपनी व्याख्या में संयोग के तत्व को भुला दिया है।

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. **मार्क्स** के ऐतिहासिक भौतिकवाद की संक्षेप में विवेचना करें।
2. **मार्क्स** ने **हीगल** के विपरीत ऐतिहासिक घटनाओं का किस प्रकार वर्णन किया है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. भौतिकवादी 2. मार्क्स 3. मानव।

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थॉट—जे.एच. टर्नर।
2. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मार्गन।

नोट

इकाई–9: पूँजीवाद का उद्भव, पूँजीवादी विकास के सिद्धान्त, अतिरिक्त मूल्य एवं पूँजीवाद की प्रक्रिया (Origin of Capitalism, Theories of Capitalistic Development, Surplus Value and Process of Capitalism)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

9.2 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)

9.3 सारांश (Summary)

9.4 शब्दकोश (Keywords)

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- **मार्क्स** के द्वारा की गई पूँजीवादी समाज की आलोचना को जानना।
- पूँजीवादी व्यवस्था की शोषक प्रवृत्ति के स्थान पर समानता पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के बारे में जानना।
- पूँजीवादी व्यवस्था के मूल अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त के बारे में जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

मार्क्सवादी सम्पूर्ण विचारधारा पूँजीवाद के विरुद्ध है। पूँजीवादी समाज 'मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण' करने वाला समाज है, धनी को अधिक धनी और गरीब को अधिक गरीब बनाने वाला समाज है। पूँजीवादी समाज गरीब जनता या श्रमिकों का खून चूसकर पनपता है, उनके श्रम पर टिका हुआ होता है और उन्हीं की अज्ञानता और संगठन के अभाव का फायदा उठाकर जिन्दा रहता है। पूँजीवादी समाज 'जिस थाली में खाता है, उसी में छेद करता है' अर्थात् आर्थिक जीवन की नींव श्रमिक-वर्ग को उत्पीड़ित करती है, उनका शोषण करती है और ऐसा करते हुए पूँजीवाद स्वयं अपनी ही कब्र खोदता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीवादी समाज चिरस्थायी नहीं हो सकता, वह अपने पतन को स्वयं

नोट

ही आमन्त्रित करता है। पूँजीवादी समाज का पतन अवश्यम्भावी है। पूँजीवादी समाज के सम्बन्ध में मार्क्सवादी आलोचनात्मक मत का यही सार तत्व है।

पूँजीवादी समाज का उद्‌भव सामन्तवादी समाज के अन्त होने पर होता है और उसका कारण उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता है। सामन्तवादी युग में भूमि उत्पादन का सर्वप्रथम साधन था, परन्तु मशीनों के आविष्कार के पश्चात् उत्पादन का प्रमुख साधन मशीन और मशीनों से चलने वाले मिल-कारखाने आदि हो गए। उत्पादन के इन साधनों पर अधिकार उन्हीं लोगों का हो सकता है जिनके पास बड़ी-बड़ी और कीमती मशीनों को खरीदने तथा मिल-कारखानों को स्थापित करने के लिए पर्याप्त पूँजी हो। चूँकि समाज या सामाजिक व्यवस्था पूँजी की शक्ति पर आधारित होती है, इसलिए ऐसा समाज पूँजीवादी समाज कहलाता है।

9.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

उत्पादन पद्धतियों की दृष्टि से पूँजीवाद का उदय उत्पादन शक्तियों और सम्बन्धों से जुड़ा हुआ है। यूरोप में पूँजीवाद का आविर्भाव 15 वीं शताब्दी से लेकर 19 वीं शताब्दी तक हुआ। जिस प्रकार सामन्तवादी उत्पादन पद्धति को समाप्त करके-द्वन्द्व करके पूँजीवाद आया वैसे ही पूँजीवाद भी अन्तर्विरोध के कारण समाप्त हो जाएगा। उत्पादन पद्धतियों का नियम समान रूप से लागू होता है। पूँजीवाद के विकास के साथ ही पूँजीवाद की मृत्यु भी निश्चित है। पूँजीवाद की स्थापना के साथ उत्पादन शक्तियाँ भी तेजी के साथ बढ़ने लगी। अब उत्पादन मशीनों से होना शुरू हुआ। भाप और बिजली जैसी प्राकृतिक शक्तियों का ऊर्जा के स्रोतों के रूप में उपयोग किया जाने लगा। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ, मिलें कोयला और खाने बनायी जाने लगी।

नोट्स मार्क्स और एंजिल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र में कहा है कि अस्तित्व के आरम्भ में पूँजीवाद ने उत्पादन शक्तियों के विकास के लिये उससे कहीं बहुत अधिक किया जितना कि मानव इतिहास के सभी पूर्ववर्ती युगों में किया गया था।

उत्पादन शक्तियों का यह तीव्र विकास नये, पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के कारण हुआ। वे उत्पादन साधनों पर बुर्जुआ वर्ग के निजी स्वामित्व और उत्पादन साधनों से वंचित तथा अपनी श्रम शक्ति बेचने को विवश उजरती मजदूरों के श्रम के शोषण पर आधारित होते हैं। पूँजीपति अधिक मूल्य (यानी वह मूल्य जिसे मजदूर अपनी श्रम शक्ति के मूल्य के अतिरिक्त निर्मित करता है), मुफ्त में हस्तगत कर लेता है।

पूँजीवाद किसे कहते हैं? (What is Capitalism?)

मार्क्स ने अपनी महान् कृति कैपिटल (Capital) में उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने इस तथ्य का पता लगाया कि अतिरिक्त या बेशी मूल्य (Surplus Value) के लिये पूँजीपतियों की लोलुपता उत्पादन के विस्तार प्रौद्योगिकी के विकास, मजदूरों के शोषण की तीव्रता, उत्पादन की अराजकता, पूँजीपतियों के बीच बढ़ती हुई प्रतियोगिता, पूँजीवादी अन्तर्विरोधों की गहनता और सामाजिक सम्पदा के विशाल विनाश सहित उत्पादन की पूँजीवाद प्रणाली के सम्पूर्ण विकास को निर्धारित करती है।

मार्क्स का तर्क है कि पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध बुनियादी संरचना (Infra-Structure) है जो अधिक रचना (Super Structure) को बनाते है। इन सम्बन्धों के कारण शोषक वर्ग के राजनीतिक प्रभुत्व की विधियों में परिवर्तन आया। मताधिकार लागू किया गया, नागरिकों की राजनीतिक स्वतन्त्रता और कानून के सामने उनकी समानता घोषित की गयी। इसके साथ ही मजदूर वर्ग के बढ़ते संघर्ष और बुर्जुआ वर्ग की प्रतिक्रियावादी घरेलू और विदेश नीतियों ने राजकीय कार्यतन्त्र में, खास तौर से सेना और बल प्रयोग के अन्य अंगों में विशाल वृद्धि ला दी।

पूँजीवादी व्यवस्था में बुर्जुआ समाज की यह पूरी कोशिश होती है कि वह अपने प्रभुत्व की रक्षा करे, शोषित जनता को दबाये रखे। इस अवस्था ने मजदूर वर्ग की विचारधारा को मजबूत किया। यदि सामान्य रूप में पूँजीवाद की

नोट

व्याख्या की जाए तो कहना पड़ेगा कि इसका बुनियादी आधार पूँजी (Capital) है। पूँजी के विभिन्न स्वरूप है: उत्पादन की सामग्री, मशीन, भण्डारों में भरा हुआ माल आदि। पूँजी की और विशेषता यह है कि इसके माध्यम से बाजार में श्रम खरीदा जा सकता है। जिसके पास पूँजी है वह विभिन्न तरीकों से अधिक पूँजी कमाना चाहता है। पूँजीवाद में मुनाफाखोरी निहित है लेकिन इनमें दिवालियापन भी हो सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था में, सब मिलाकर बुनियादी सिद्धान्त मुनाफाखोरी का है। पूर्व पूँजीवादी अवस्था में किसी न किसी प्रकार का मुनाफा तो होता था लेकिन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ववर्ती अर्थव्यवस्था की तुलना में मुनाफे के अवसर ज्यादा होते हैं।

पूँजीवाद का उद्‌गम (Origin of Capitalism)

सामन्तवादी अवस्था में ही पूँजीवाद का प्रारम्भ हो गया था। सामन्तवाद में किसानों से जो कर, बेगार, लिये जाते थे वे सामन्त को पूँजीपति बना देते थे। सामन्तवादी व्यवस्था में ही नगर सेठ और बड़े-बड़े व्यापारी होते थे। इस अवस्था में ही पूँजीवाद पैदा हो गया था। पश्चिमी देशों में कुछ अर्थशास्त्रियों ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का सैद्धान्तिक विश्लेषण किया।

क्या आप जानते हैं मार्क्सवाद के समानान्तर राजनैतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) का जन्म हुआ। एडम स्मिथ (Adam Smith) और रिकार्डो (Recardo) आदि ने एक नयी आर्थिक वैचारिकी को विकसित किया।

इसी युग में अर्थ व्यवस्था में अ-हस्तक्षेप (Laissez-faire) विचारधारा को बढ़ावा दिया गया। दूसरी ओर, एक प्रकार का औद्योगिक पूँजीवाद (Industrial Capitalism) पैदा हुआ। पूँजीवाद पर धीरे-धीरे राज्य का हस्तक्षेप भी निर्णायक बन गया। संक्षेप में पूँजीवाद वह है जिसमें उत्पादन पद्धति का आधार पूँजी होती है पूँजी का उद्देश्य मुनाफाखोरी करना है। इस पूँजी के माध्यम से ही श्रम खरीदा जा सकता है, और उत्पादन के साधन हथिया लिये जाते हैं। पूँजी का कोई भी स्वरूप हो श्रम की खरीद, कल-कारखाने, उत्पादित वस्तुएँ-सभी पर निजी स्वामित्व (Private Ownership) होती है। पूँजीवाद का इस तरह केन्द्रीय लक्षण पूँजी है जो कि उत्पादन की पद्धति है। वास्तव में पूँजीवाद का प्रयोग गैर मार्क्सवादी अर्थशास्त्री अपवाद रूप में करते हैं। यहाँ तक कि मार्क्स की कृतियों में भी इसका प्रयोग बहुत बाद में हुआ है। स्वयं मार्क्स ने भी पूँजीवादियों (Capitalists) और पूँजीवादी (Capitalist) पदों का प्रयोग किया। अपनी प्रख्यात पुस्तक कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो और कैपिटल में भी उन्होंने कहीं भी पूँजीवाद पद का प्रयोग नहीं किया है। यह सब होते हुए भी जब पूँजी के साथ "वाद" प्रत्यय को जोड़ देते हैं तो यह एक विचारधारा बन जाती है और इसलिये एक विचारधारा के रूप में ही इसे लेना चाहिए।

पूँजीवाद के लक्षण (Characteristics of Capitalism)

मेहानाद देसाई ने पूँजीवादी अवस्था के कुछ बुनियादी लक्षणों की विस्तार से व्याख्या की है। जहाँ ये लक्षण पूँजीवाद को परिभाषित करते है, वहीं ये इसकी मुख्य विशेषताओं को भी बताते हैं। ये लक्षण इस तरह हैं:

(1) निजी स्वामित्व एक वर्ग के पास में : पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी व्यक्तियों के हाथ में होता है। ये व्यक्ति उत्पादन साधनों के सम्बन्ध में अपने मुनाफे के लिये मनमाना निर्णय लेते हैं। निर्णय की इस प्रकिया में मजदूरों की कोई भूमिका नहीं होती है। जब उत्पादन सम्पति पर निजी अधिकार होता है तो इसका मतलब हुआ दूसरे लोगों के जीवन पर पूँजीपति का नियंत्रण होता है।

(2) बाजार : पूँजीवादी व्यवस्था का केन्द्रीय सिद्धान्त बाजार अर्थव्यवस्था है। पूर्व-पूँजीवादी युग में अर्थ व्यवस्था सामन्यतया स्थानीय और स्वावलम्बी होती थी। इसमें प्रत्येक परिवार जितनी उसकी आवश्यकता होती थी, उत्पादन करता था। आवश्यकता पड़ने पर वे वस्तुएँ जिनकी परिवार को आवश्यकता होती थी लेकिन जितना उत्पादन परिवार नहीं करता था उन्हें वस्तु विनिमय पद्धति से प्राप्त कर लिया जाता था। पूर्व-पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम विभाजन नाम मात्र को था।

नोट

पूँजीवादी व्यवस्थाओं में वस्तुओं का मोल-तोल न तो परम्पराएँ करती हैं और न राज्य के आदेश। वस्तुओं के भाव तो बाजार ही करता है, बाजार किसी का नहीं है। इसमें तो सीधा-साधा अर्थशास्त्र का नियम चलता है: *माँग और पूर्ति* (Demand and Supply) यदि भावों में उछाला है तो बाजार का संकेत स्पष्ट है कि अमुक वस्तुओं की बिक्री लाभदायक है। यदि वस्तुओं के भाव में गिरावट है तो संकेत है: भाग्य किसी और जिन्स में आजमाओ। बाजार अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता ही सर्व शक्तिमान है।

बाजार एक ऐसा स्थान है जहाँ श्रम शक्ति खरीदी जाती है: मजदूरों को काम पर लगाया जाता है और यह वह स्थान भी है जहाँ श्रम बेचा जाता है यानी मजदूर को दिहाड़ी मिलती है। यह दिहाड़ी निश्चित समय के लिये होती है। बाजार की बहुत बड़ी खासियत यह है कि यहाँ श्रम की खरीद फरोख्त किसी न किसी करार द्वारा होती है।

(3) मुद्रा विनिमय : पूँजीवादी व्यवस्था में मुद्रा का स्थान निर्णायक होता है। पिछले समय में वस्तु विनिमय होता था। हमारे देश में गाँवों में जजमानी व्यवस्था थी। पूँजीवादी व्यवस्था में सम्पूर्ण विनियम मुद्रा से होता है। इस व्यवस्था में बैंक और वित्तीय संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

(4) उत्पादन पर नियंत्रण : पूँजीपति या उसके द्वारा नियुक्त मैनेजर सम्पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया को, श्रम, शक्ति को नियंत्रित करता है। इस नियंत्रण में यह भी देखा जाता है कि कितने कुशल-अकुशल मजदूरों को रखा जाएगा, छंटनी की जाएगी और इससे आगे उत्पादन में किन तरीकों को काम में लिया जाएगा और किस तादाद में माल पैदा किया जाएगा।

(5) वित्तीय निर्णयों पर नियंत्रण : पूँजीवादी व्यवस्था में कई निर्णय महत्त्वपूर्ण होते हैं। कारखाने में पैसे का नियोजन कब और कैसे किया जाए, माल पर साख किसे और कितनी दी जाए इस सबका निर्णय मैनेजर, निदेशक मण्डल या पूँजीपति लेता है। निर्णय की इस प्रक्रिया में मजदूर की कहीं भी भागीदारी नहीं होती यद्यपि व्यवस्था के स्तर पर लिया गया किसी भी गलत वित्तीय निर्णय के लिये मजदूरों को खामियाजा भरना पड़ता है।

हमारे देश में पूँजीवादी अवस्था ब्रिटिश राज में आयी। अंग्रेजों ने जगह-जगह कल-कारखाने लगाये, संचार सुविधाएँ दी और कानून बनाये। गाँवों में जो सामन्तवादी व्यवस्था चल रही थी उस पर सबसे पहला वार ब्रिटिश राज में ही हुआ। वास्तव में अंग्रेजों ने भारत में अपने पांव जम जाने के बाद पुरानी भू-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन का सिलसिला शुरू किया। नयी लगान व्यवस्था ने गाँव की जमीन पर लोगों की जमाने से चली आ रही मिल्कियत खत्म कर उसकी जगह भू-स्वामित्व के दो रूपों का जन्म दिया: देश के कुछ भागों में जमींदारी और कुछ अन्य भागों में किसान की निजी मिल्कियत। इस तरह की सामन्तवादी व्यवस्था तो समझ में आती है लेकिन इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जमीन को किसान की निजी मिल्कियत को कानूनी दर्जा देकर अंग्रेजी राज ने कृषि क्षेत्र में सबसे पहली बार पूँजीवादी व्यवस्था प्रारम्भ की। अब कृषि भूमि राज्य की नहीं रही, किसान की मिल्कियत बन गयी। इस संदर्भ में *ए.आर. देसाई*, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि में लिखते हैं:

इस तरह अंग्रेजों की भारत विजय से देश में एक कृषि क्रान्ति हुई। जमीन की निजी मिल्कियत की प्रथा शुरू कर अंग्रेजों ने कृषि के पूँजीवादी विस्तार की आवश्यक शर्तें की सृष्टि की। भारत की पूर्व पूँजीवादी सामन्ती अर्थतन्त्र के पूँजीवादी रुपान्तरण के कारणों में भूमि सम्बन्धों का परिवर्तन सबसे प्रमुख है।

भारत में पूँजीवादी व्यवस्था के उद्‌गम और विकास पर कई समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और राजनीति के विद्वानों ने कार्य किया है। मार्क्सवादियों ने भी बहुत कुछ कहा है। इस समस्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश राज के बाद से आज तक भारत में जो कुछ विकास हुआ है उसमें पूँजीवादी व्यवस्था बराबर सुदृढ़ हुई है। हरित क्रान्ति ने कृषि में पूँजीवादी व्यवस्था को स्थापित किया है।

मार्क्स ने पूँजीवादी अवस्था का विशद् वर्णन कैपिटल में किया है। उनके विश्लेषण का आधार उत्पादन शक्तियाँ और उत्पादन सम्बन्ध हैं। उसका तर्क बहुत सामान्य है: जब उत्पादन शक्तियाँ बढ़ती है तो पूँजीवाद का विस्तार होता है। लेकिन इस विस्तार के साथ ही उत्पादन सम्बन्ध, उत्पादन शक्तियों से बहुत दूर हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप द्वन्द्व होता है। इसी कारण ज्यों-ज्यों पूँजीवाद बढ़ेगा, मार्क्स का थीसीस है, विरोध भी बढ़ेगा। एक दिन ऐसी अवस्था आयेगी जब क्रान्ति होगी। जिस तरह दासता की लाश पर सामन्तवाद खड़ा हुआ, जिस तरह सामन्तवाद की लाश पर पूँजीवाद खड़ा हुआ वैसे ही पूँजीवाद की लाश पर समाजवाद खड़ा होगा। यही भौतिकवादी द्वन्द्व है, यही इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा है, यहीं उत्पादन पद्धतियों के बदलाव का परिणाम है।

नोट

समाजवादी अवस्था (Socialist Stage)

मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यूरोप और एशिया के देशों के उत्पादन पद्धतियों के आधार पर देखते हुए कहते हैं कि इतिहास का यह सिलसिला द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद बराबर चलता रहेगा। इतिहास के नियमों को नकारा नहीं जा सकता। जब दासत्व अवस्था ने साम्यवादी अवस्था को ठुकराया यानी निषेध का निषेध हुआ तब पूँजीवाद का निषेध होना आवश्यक है।

नोट्स 1848 ई. में जब मार्क्स और एंजिल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र रखा तब से ही पूर्वी यूरोप में समाजवादी आन्दोलन चल गया था।

मार्क्स के लिये समाजवाद की अवस्था को प्राप्त करना कोई उद्देश्य नहीं था। न ही मार्क्स के लिये यह किसी भविष्य के समाज की कल्पना थी। इसके लिये उन्होंने समाजवाद का कोई बल्यू प्रिन्ट बनाया हो ऐसी बात नहीं है। मार्क्स का तो केवल यही कहना था कि पूँजीवाद में भी अन्तर्विरोध है, निषेध है, द्वन्द्व है और इसलिये सामन्तवाद की तरह इसकी समाप्ति भी निश्चित है। अत: पूँजीवाद का पतन समाजवाद के लिये होना ऐतिहासिक नियम का परिणाम मात्र है। मार्क्स और एंजिल्स ने कहीं भी सामजवादी अवस्था को परिभाषा हो सकती है तो केवल यही कि समाजवाद सबसे पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण पूँजीवाद का निषेध है।

मार्क्स अपने तर्क को और आगे बढ़ाते हैं और कहते हैं कि समाजवाद आ जाने के बाद, इतिहास की परिणिति यही है कि साम्यवाद आयेगा। वास्तव में यह एक लम्बी क्रान्तिकारी प्रक्रिया है। पूंजीवाद के बाद सर्वहारा के अधिनायकवाद (Dictatorship of the Proletariat) की अवस्था आयेगी। अब सर्वहारा अपनी उत्पादन पद्धतियों को अधिक तीव्रता से विकसित करेगें। अधिनायकवादी अवस्था वस्तुत: संक्रमणकालीन (Transitional) अवस्था है। इस अवस्था के गुजर जाने के बाद साम्यवाद आयेगा। इस अवस्था में राज्य किसी फूल की तरह मुरझा जाएगा। अब न बुर्जुआ होगा न सर्वहारा। लोगों का कार्य के प्रति दृष्टिकोण बदल जाएगा और इस अवस्था में इस तरह न वर्ग होंगे (Classless) और न राज्य (Stateless) होगा। इस साम्यवादी अवस्था में "प्रत्येक को अपनी क्षमता के अनुसार काम करना है, और प्रत्येक को अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करना है। "(From each according to his ability, to each according to his need)"

9.2 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)

मार्क्स के दर्शन सर्वप्रमुख उद्देश्य सर्वहारा-वर्ग की स्पष्ट हितकामना तथा पूँजीवाद व्यवस्था के विनाश की अवश्यम्भाविता को प्रदर्शित और प्रमाणित करना है। उन्होंने पूँजीवाद के विकास और सामाजिक परिणामों की जो व्याख्या की है उसकी मुख्य बात उनका अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है, जिसे उन्होंने मूल्य के श्रम-सिद्धान्त के आधार पर स्थिर किया। मूल्य के श्रम-सिद्धान्त का अर्थ यह है कि "अन्त में किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उसके उत्पादन में लगाए गए श्रम की मात्रा पर निर्भर है।" यह सिद्धान्त **मार्क्स** के बहुत पहले अनुदार तथा उग्रसुधारवादी सिद्धान्तियों में प्रचलित था। **वास्तव में यह एक अंग्रेजी सिद्धान्त है, जिसको सत्रहवीं सदी में प्रतिपादित करने का श्रेय सर विलियम पेटी को है।** उनके बाद अन्य प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों, विशेषकर **एडम स्मिथ** और **डेविड रिकार्डो** ने भी इस पर अनेक प्रकार से जोर दिया और इसमें संशोधन भी किया।

टास्क अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

नोट

एडम स्मिथ के अनुसार, किसी वस्तु का सामान्य मूल्य साधारणतया उसके उत्पादन में लगे श्रम को मालूम करके निर्धारित करना चाहिए। उसी प्रकार **रिकार्डो** के अनुसार, अधिकांश वस्तुओं का सामान्य विनिमय-मूल्य उनके उत्पादन में लगाए गए श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। **रिकार्डो** के पश्चात् उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कुछ अंग्रेजी लेखकों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि चूँकि "श्रमजीवी लोग समस्त सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं" इसलिए "श्रमजीवियों को श्रम के समस्त उत्पादन का अधिकार है।" **मार्क्स** के श्रम-मूल्य सिद्धान्त के इन श्रमिक-समर्थक लेखकों की कृतियों से अनेक अवतरण लेकर अपने विषय का समर्थन किया है।

अत: स्पष्ट है कि तत्कालीन अन्य अनेक अर्थशास्त्रियों की भाँति **मार्क्स** भी यह मानते थे कि श्रम से मूल्य बनता है अर्थात् मूल्य की उत्पत्ति श्रम से होती है। **मार्क्स** ने "स्पष्टत: यह व्याख्या की कि किसी वस्तु के उपयोग मूल्य अर्थात् वस्तु की उपयोगिता एवं वांछनीयता का उस श्रम से कोई सम्बन्ध नहीं है जो उसके उत्पादन में लगाया गया है। हवा और पानी उपयोगी हैं, यद्यपि उन पर कोई श्रम खर्च नहीं हुआ। किसी वस्तु का विनिमय मूल्य इसलिए होता है कि उसे उपयोगी बनाने के लिए उस पर श्रम किया जाता है। ऐसे मूल्यों की दर आवश्यक श्रम की मात्रा पर निर्भर होगी जिसे अनुपात में दो वस्तुओं, जैसे अन्न और लोहे, का विनिमय होगा उसका माप उस वस्तु से किया जा सकता है जो दोनों में सामान्य है; और जो इन दोनों में सामान्य है, वह उनका निर्माण करने वाले रासायनिक द्रव्य या कोई स्वाभाविक गुण या तत्त्व नहीं है, वरन् मानव-श्रम है, जो उनके उत्पादन में व्यय हुआ है।" इस सम्बन्ध में **मार्क्स** ने अपनी अमर कृति **कैपिटल** में लिखा है, "इस प्रकार यदि हम वस्तुओं के उपयोग-मूल्य का विचार न करें, तो उनमें एक ही वस्तु सामान्य बचती है और वह है वस्तुओं की श्रम द्वारा उत्पत्ति।...इस कारण एक उपयोगी वस्तु का मूल्य इसलिए ही है कि मानव-श्रम का उसमें उपयोग हुआ है। तब इस मूल्य की मात्रा का माप कैसे किया जाए? स्पष्टत: मूल्य की सृष्टि करने वाले तत्त्व की मात्रा-श्रम-से, जो वस्तु में निहित है। श्रम की मात्रा का माप उसकी अवधि से होता है और श्रम-काल का मापदण्ड सप्ताहों, दिवसों और घंटों में होता है।...इस प्रकार स्पष्ट रूप से हम यह देखते हैं कि जिसके द्वारा किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है, वह है वह श्रम-काल या श्रम की मात्रा जो उस वस्तु के उत्पादन के लिए सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है।...दो वस्तुओं के मूल्य का अनुपात उन पर खर्च किये गए श्रम-काल के अनुपात के अनुसार होता है।"

इस प्रकार **मार्क्स** के अनुसार, किसी भी वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल पर निर्भर है। अत: स्पष्ट है कि यदि किसी एक वस्तु के उत्पादन में दो दिन का समय लगता है और दूसरे एक वस्तु के उत्पादन के लिए चार दिन का तो, दूसरी वस्तु का मूल्य प्रथम वस्तु के मूल्य से अधिक (दुगुना) होगा। **मार्क्स** के इस मत से अनेक लोग इस आधार पर सहमत नहीं हैं कि किसी वस्तु का मूल्य केवल श्रम-काल पर ही कैसे निर्भर हो सकता है क्योंकि उस वस्तु के उत्पादन में लगे कच्चे माल आदि का भी तो मूल्य होता है। किसी भी वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय उत्पादक उसमें केवल श्रम-काल को ही नहीं वरन् कच्चे माल आदि का भी मूल्य सम्मिलित कर लेता है। यदि ऐसा न होता तो कुछ ही घंटों में बनी एक सोने की अँगूठी का मूल्य तीन-चार दिन में बनी एक लकड़ी की मेज से अधिक क्यों होता? इसके उत्तर में **मार्क्स** का तर्क यह है कि "सोने का जो कुछ भी मूल्य है वह प्रकृति की देन है। उस मूल्य की सृष्टि में मनुष्य का कोई हाथ नहीं। जहाँ तक मनुष्यों के प्रयत्नों द्वारा मूल्य की उत्पत्ति का सम्बन्ध है, वहाँ तक वह श्रम का ही फल है।"

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि **मार्क्स** का मूल का श्रम-सिद्धान्त रूप से यह बतलाता है कि वस्तुओं का वास्तविक मूल्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पश्चात् (अर्थात् मूल्य केवल श्रम से ही उत्पन्न होता है) **मार्क्स** ने 'पूँजी' के संचय के सम्बन्ध में भी अपना विचार व्यक्त किया है। यह सच है कि श्रम से मूल्य बनता है, परन्तु श्रम अपने-आप मूल्य उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रखता; ऐसा करने के लिए उसे कच्चा माल, औजार आदि की आवश्यकता पड़ती है। वैसे पूँजी का सर्वप्रथम रूप 'धन' है, परन्तु धन से कच्चा माल, औजार, मशीन आदि को भी प्राप्त किया जा सकता है और जाता है। इस 'पूँजी' का अर्थ केवल धन ही नहीं, वरन् कच्चा माल, औजार, मशीन आदि भी है। इस सबका, या संक्षेप में पूँजी का, उपयोग किए बिना श्रम को उत्पन्न नहीं कर सकता। परन्तु इससे मूल्य का श्रम-सिद्धान्त झूठा नहीं होता। पूँजी कहाँ से आई? इस प्रश्न के उत्तर में **मार्क्स** का कथन है कि अन्तिम रूप में पूँजी भी श्रम से ही उत्पन्न होती है और वह इस रूप में कि श्रम से मूल्य या धन उत्पन्न होता है और धन से कच्चा माल, औजार, मशीन आदि प्राप्त किया जाता है और उन्हें उत्पादन में लगा दिया जाता है; यह

नोट

पूँजी है। इतना ही नहीं, पूँजीपति अपने धन के बल पर निर्धन श्रमिकों के श्रम को खरीदता है और उसे उत्पादन कार्यों में लगाता है। परन्तु इस उत्पादक क्रियाओं के द्वारा श्रमिक मूल्य उत्पन्न करता है। इसमें से बहुत कम भाग (मजदूरी के रूप में) श्रमिक को मिलती है और अधिकतर भाग पूँजीपति हड़प जाता है। श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकार से वंचित करना ही उनका शोषण करना है। इस प्रकार शोषण के द्वारा पूँजीपतियों के पास पूँजी इकट्ठी होती रहती है। कुछ लोगों का कथन है कि पूँजीपति लोग मितव्ययी होते हैं और प्रत्येक विषय में सोच-विचार कर किफायत से खर्च करते हैं; इसीलिए उनके पास पूँजी एकत्र होती रहती है परन्तु **मार्क्स** का कथन है कि ये सब अर्थहीन तथा हास्यकर तर्क हैं। सदा से ही पूँजीपति लोग बड़े ही ऐश और आराम की जिन्दगी बिताने के आदी हैं और वास्तव में वे भोग-विलास का जीवन ही बिताते आए हैं—मितव्ययता उन्होंने कब और किस बात में की?

पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण करने के तरीके को **मार्क्स** ने 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' के आधार पर समझाया है। आपसे पहले कई लेखकों ने विविध रूप में उन मूल्यों की धारणाएँ प्रस्तुत की हैं जिन्हें श्रमजीवी लोग उत्पन्न करते हैं, परन्तु उन्हें जितना वेतन मिलता है वह उनके द्वारा उत्पन्न किये गए मूल्यों से कहीं कम होता है। अठारहवीं शताब्दी के कुछ अर्थशास्त्रियों ने कृषि-उत्पादन के आधार पर उक्त विचार को प्रस्तुत किया था। उनके मतानुसार कृषि से इतना उत्पादन होता है जिससे भूमि के उपयोग की कीमत और कृषि-श्रमिकों की मजदूरी चुका देने पर भी बड़ी बचत होती है। **रिकार्डो** ने यह विचार प्रकट किया कि उद्योगों से लाभ मुख्यत: उस उत्पादन पर निर्भर है जो मजदूरों को दिए जाने वाले वेतन से अतिरिक्त होता है।

उपर्युक्त विचारों की पृष्ठभूमि में ही **मार्क्स** ने अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। आपने पूँजीवादी शोषण की ठठरी को सामने लाकर खड़ा कर दिया और यह बताया कि अतिरिक्त मूल्य वास्तव में कहाँ उत्पन्न होता है। **मार्क्स** के अनुसार, अतिरिक्त मूल्य वहीं पैदा होता है जहाँ पूँजीवादी वर्ग मजदूरों के श्रम का वह भाग हड़प कर जाता है जिसके लिए उसे किसी प्रकार की मजदूरी देने की जरूरत नहीं पड़ती। अतिरिक्त मूल्य है क्या? मजदूर के श्रम से पैदा हुए मूल्य और उस श्रम के बदले मजदूर को मिलने वाले मूल्य (अर्थात् मजदूर और उसके परिवार के लिए आवश्यक जीवन के साधनों के मूल्य) के बीच का अन्तर ही अतिरिक्त मूल्य है। दूसरे शब्दों में, श्रमिक अपने श्रम से वास्तव में जितना मूल्य पैदा करता है पूँजीपति उसे उसके बदले में उतना मूल्य न देकर उससे कहीं कम मूल्य वेतन के रूप में देता है और इस प्रकार श्रमिक द्वारा पैदा किए हुए मूल्य का अधिकार भाग पूँजीपतियों के पास ही रह जाता है। यही अतिरिक्त मूल्य है जिसे कि पूँजीपति धोखे और अन्याय से अपने अधिकार में रख लेते हैं। एक उदाहरण द्वारा इसे और भी स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक श्रमिक कारखाने में आठ घंटे काम करता है और उस दौरान में वह अस्सी रुपए के मूल्य की वस्तुएँ बनाता है, परन्तु उसे अपने उस श्रम के बदले में केवल बीस रुपए वेतन या मजदूरी के रूप में मिलते हैं। इस प्रकार अपने वेतन के लिए वह श्रमिक केवल दो घंटे काम करता है और छह घंटे पूँजीपति के मुनाफे के लिए। इन छह घंटों के मूल्य को ही अतिरिक्त मूल्य कहते हैं जो कि श्रमिक की गाढ़ी कमाई का फल होता है और जिसे कि पूँजीपति श्रमिकों से छीनकर स्वयं हड़प कर जाते हैं।

पूँजीपति का सर्वप्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है। मजदूरों को जितना कम वेतन दिया जाएगा उतना ही अधिक मुनाफा पूँजीपतियों की जेब में जाएगा। इस कारण वे भरसक यही प्रयत्न करते हैं कि उन्हें श्रमिकों को कम-से-कम मजदूरी देनी पड़े। साधारणतया पूँजीपति मजदूरों को केवल इतना ही वेतन देता है जिससे वे किसी तरह भूख दूर कर सकें और भविष्य के लिए श्रमिक सन्तान पैदा कर सकें। इतना ही नहीं, पूँजीपति जो कुछ भी मजदूरी श्रमिकों को देता है उसे भी वस्तु की लागत मूल्य में सम्मिलित कर लेता है, और इस लागत मूल्य से कम मूल्य में पूँजीपति किसी वस्तु को बाजार में नहीं बेचता। अत: स्पष्ट है कि श्रमिकों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को बेचने से जो लाभ पूँजीपति को होता है उसका कोई भी अंश श्रमिकों को नहीं मिलता है। यही उनके प्रति अन्याय है और यही उनका शोषण है। श्रमिक के पास जीविका पालन करने का और कोई साधन भी तो नहीं होता, इसलिए अपना श्रम बेचकर वे किसी प्रकार अपने और अपने परिवार के अन्य सदस्यों के लिए रोटी कमा लेते हैं। इस दृष्टिकोण से **मार्क्स** का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त 'जीविका-योग्य-मजदूरी' की अवधारणा से सम्बन्धित है। इसका सामान्य सिद्धान्त यह है कि "मजदूर को वह कीमत दी जाती है जो एक वस्तु की भाँति उसके श्रम की होती है और यह

नोट

कीमत, बाजार के नियमों के अधीन, एक ऐसी रकम होती है जिससे वह मानव-वस्तु (अर्थात् श्रम) बराबर प्राप्त होता रहे, अर्थात् वेतन या मजदूरी केवल मात्र मजदूर तथा उसके परिवार को जीवित रखने योग्य जीविका के साधन के बराबर होती है।" यह सब अधिक से अधिक अतिरिक्त मूल्य हजम कर जाने के लिए पूँजीपतियों का शोषण-कुचक्र है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. अत: स्पष्ट है कि ········ अन्य अनेक अर्थशास्त्रियों की भाँति मार्क्स भी यह मानते थे कि श्रम से मूल्य बनता है।
2. श्रम की मात्रा की माप उसकी ········ से होता है।
3. किसी भी वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय ········ उसमें श्रम काल को ही नहीं बल्कि कच्चे माल का भी मूल्य सम्मिलित कर लेता है।

मार्क्स के अनुसार, पूँजीपतियों का यह शोषण-कुचक्र बहुत समय पहले से ही चल रहा है। वास्तव में पूँजीवादी समाज तथा दास-प्रथा वाले या सामन्तशाही समाज में केवल नाम का ही अन्तर है। जिस प्रकार प्राचीनकाल में दास या अर्द्ध-दास किसान अपने स्वामी या सामन्त के लिए अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करने पर विवश किए जाते थे उसी प्रकार आज का श्रमिक भी अपने श्रम का अधिकतर भाग पूँजीपतियों के लिए अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करने में लगा देता है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्राचीनकाल का श्रमजीवी एक दास या अर्द्ध-दास की हैसियत में काम करता था और आज का श्रमजीवी एक ऐच्छिक समझौते के अनुसार काम पर लगाया जाता है। परन्तु वास्तव में यह समझौता भी केवल नाममात्र के लिए 'ऐच्छिक' होता है, क्योंकि पूँजीपति उत्पादन के उन साधनों (मशीनों, यन्त्रों आदि) के स्वामी होते हैं, जिनका उपयोग करके ही श्रमिक अपने तथा पूँजीपति के लिए मूल्य की सृष्टि कर सकता है, अन्यथा नहीं। श्रमिक के पास अपनी चीज केवल अपना श्रम ही होता है, और कुछ भी नहीं। उत्पादन के कोई साधन अपने हाथ में न होने के कारण जीविका पालन के लिए निर्धन श्रमिक के पास अपना श्रम बेच देने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं होता; और वे करते भी यही हैं कि अपना श्रम वे पूँजीपति को ऐसे दामों में बेचते हैं जो उन्हें तथा उनके परिवार वालें को 'केवल जीवित' रखने के लिए पर्याप्त हो।

क्या आप जानते हैं **मार्क्स** अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके पूँजीवादी शोषण की ठठरी को सामने लाकर खड़ा कर देना चाहते थे। साथ ही, इस सिद्धान्त ने सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के विरोध के आर्थिक आधार को स्पष्ट कर दिया।

लेनिन ने लिखा है, "अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त ही **मार्क्स** के आर्थिक सिद्धान्त की आधारशिला है" "मानव समाज के विकास के नियम सम्बन्धी अपनी भौतिकवादी शिक्षा के बाद, सर्वहारा वर्ग के इस प्रतिभाशाली सिद्धान्त का अतिरिक्त मूल्य सम्बन्धी सिद्धान्त उनकी दूसरी महान् खोज़ थी।"

फ्रांसिस डब्ल्यू कोकर ने लिखा है, **"मार्क्स** के ग्रन्थों के शायद सबसे प्रभावशाली भाग वे हैं जिनमें उन्होंने लाभ की अनिवार्य आवश्यकता से प्रभावित पूँजीपतियों के उन प्रयत्नों का वर्णन किया है जो वे अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने के निमित्त मजदूरों के समय तथा उनकी शक्ति के शोषण के लिए करते हैं। उनके ग्रन्थों का वह भाग भी बड़ा प्रभावशाली है जिसमें ऐतिहासिक प्रमाणों तथा सरकारी विवरणों के अनेक उदाहरण देकर इस शोषण से उत्पन्न होने वाली मजदूरों की कारूणिक एवं दयनीय अवस्था का चित्र अंकित किया है। उनका अन्तिम निष्कर्ष यह है कि इन अवस्थाओं को समाप्त करने का एकमात्र उपाय है, व्यक्तिगत भाड़े, ब्याज तथा मुनाफे के भी अवसरों का सर्वनाश और यह परिणाम केवल समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ही सम्भव है, जिसमें व्यक्तिगत पूँजी का स्थान सामूहिक पूँजी ले लेगी; न कोई पूँजीपति रहेगा और न मजदूर और सब व्यक्ति सहकारी उत्पादक बन जाएँगे।"

नोट

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि **मार्क्स** का निश्चित मत है कि 'अतिरिक्त मूल्य' ही वह हथियार है जिसके द्वारा पूँजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग का निरन्तर शोषण करता है और यह शोषण ही अन्ततः वर्ग-संघर्ष का कारण बनता है। इस प्रकार अतिरिक्त मूल्य और वर्ग-संघर्ष में एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। वर्ग और वर्ग-संघर्ष सम्बन्धी निम्नलिखित विवेचना से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

9.3 सारांश (Summary)

- **मार्क्स** ने इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा को विभिन्न अवस्थाओं में देखा है यदि मार्क्स की अध्ययन विधि को स्पष्ट करने के लिये कहा जाए, तो सर्वप्रथम यही कहना पड़ेगा कि मार्क्स ने इतिहास की व्याख्या व्यक्तिनिष्ठ न करके वस्तुगत की है। इसलिये उनकी विधि वैज्ञानिक है।
- इतिहास के इसी नियम पर मार्क्स की अध्ययन विधि कहती है, पूँजीवाद के विरोध स्वरूप समाजवाद आयेगा। यह अवस्था संक्रमण कालीन अवस्था है।
- साम्यवाद मार्क्स के लिये कोई लुभावना मुहावरा नहीं है और न ही यह कोई आदर्श है। यह तो वह रेखा है, वह लकीर है जिस पर इतिहास बराबर चलता आ रहा है।

9.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **पूँजीवाद (Capitalism):** एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था जिसमें आर्थिक जीवन का अधिकांश भाग विशेषकर उत्पादित वस्तुओं का स्वामित्व या विनियोजन निजी तौर पर आर्थिक प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया तथा लाभ प्राप्ति की प्रकट इच्छा रखी जाती है।

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. पूँजीवादी व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं की विवेचना करें।
2. मार्क्स ने अपनी कौन-सी दो प्रमुख पुस्तकों में 'पूंजीवाद' पद का प्रयोग नहीं किया है।
3. मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद के बाद कौन-सी अवस्था आयेगी?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. तत्कालीन   2. अवधि   3. उत्पादक।

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थ्योरी—जे. एच. टर्नर।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।

इकाई–10 : वर्गों का उद्भव एवं वर्ग-संघर्ष (Origin of Class and Class-Struggle)

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष (Class and Class-Struggle)

10.2 सारांश (Summary)

10.3 शब्दकोश (Keywords)

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मार्क्स के अनुसार वर्ग के निर्माण को जानना।
- वर्ग-संघर्ष की सैद्धान्तिक प्रक्रिया को समझना।
- आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी युग में जीविका उपार्जन की प्राप्ति के विभिन्न साधनों के कारण व्यक्ति के उत्पादन के साधन के साथ भिन्न संबंध होते हैं। उत्पादन के साधनों के साथ भिन्न–भिन्न संबंध होने के कारण मनुष्य विभिन्न वर्गों में विभाजित हो जाता है और प्रत्येक वर्गों में एक विशेष वर्ग चेतना उत्पन्न हो जाती है। इसी वर्ग चेतना के कारण वर्गों में संघर्ष होता है, जिसे वर्ग–संघर्ष कहा जाता है।

10.1 वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष (Class and Class-Struggle)

मार्क्सवादी विचार के अनुसार मनुष्य साधारणतया एक सामाजिक प्राणी है, परन्तु अधिक स्पष्ट और आधार रूप में वह एक 'वर्ग–प्राणी' (class animal) है। **मार्क्स** का कहना है कि किसी भी युग में, जीविका–उपार्जन की प्राप्ति के विभिन्न साधनों के कारण पृथक्–पृथक् वर्गों में विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक वर्ग में एक विशेष वर्ग–चेतना

नोट

उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में, वर्ग का जन्म उत्पादन के नवीन तरीकों के आधार पर होता है। जैसे ही भौतिक उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होता है वैसे ही नए वर्ग का उद्‌भव भी होता है।

नोट्स एक समय की उत्पादन–प्रणाली ही उस समय के वर्गों की प्रकृति को निश्चित करती है।

वर्ग–निर्माण के आधार (Basis of Class-Formation)

आदिम समुदायों में कोई भी वर्ग नहीं होता था और मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करते थे। जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का वितरण बहुत–कुछ समान था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं से कर लेता था। दूसरे शब्दों में, प्रकृति द्वारा जीवित रहने के साधनों का वितरण समान होने के कारण वर्ग का जन्म उस समय नहीं हुआ था। पर शीघ्र ही वितरण में भेद या अन्तर आने लगा और उसी के साथ–साथ समाज वर्गों में विभाजित हो गया। **मार्क्स** के अनुसार समाज स्वयं अपने को वर्गों में विभाजित कर लेता है-यह विभाजन धनी और निर्धन, शोषक और शोषित तथा शासक और शासित वर्गों में होता है। आधुनिक समाज में आय के आधार पर तीन महान् वर्गों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें प्रथम वे हैं जो केवल श्रम–शक्ति के अधिकारी हैं, दूसरे वे हैं जो पूँजी के अधिकारी हैं तीसरे वे जो जमींदार हैं। इन तीन वर्गों की आय के साधन क्रमशः मजदूरी, लाभ और लगान हैं। मजदूरी कमाने वाले समाज के तीन महान् वर्ग हैं। आधुनिक युग में, **मार्क्स** के अनुसार, इन तीनों वर्गों का जन्म बड़े पैमाने पर पूँजीवादी उद्योग–धन्धों के पनपने के फलस्वरूप हुआ है। पूँजीवादी क्रान्ति का यही प्रत्यक्ष प्रभाव और सर्वप्रथम परिणाम है। एक राष्ट्र में औद्योगीकरण तथा श्रम–विभाजन के फलस्वरूप सर्वप्रथम औद्योगिक तथा व्यावसायिक–श्रम कृषि–श्रम से गाँव शहर से पृथक् हो जाता है। इसके फलस्वरूप अलग–अलग स्वार्थ–समूहों का भी जन्म होता है। श्रम–विभाजन और भी अधिक विस्तृत रूप में लागू होने पर व्यावसायिक–श्रम भी औद्योगिक–श्रम से पृथक् हो जाता है। साथ ही श्रम–विभाजन के आधार पर ही उपर्युक्त विभिन्न वर्गों में श्रम में सहयोग करने वाले व्यक्तियों में भी विभिन्न प्रकार के विभाजन हो जाते हैं। इन विभिन्न समूहों की सापेक्षिक स्थिति कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का वर्तमान स्तर व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को भी निश्चित करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वे व्यक्ति, जो उत्पादन–कार्य में क्रियाशील हैं, कुछ निश्चित सामाजिक तथा राजनैतिक सम्बन्ध को स्थापित करते हैं। इस प्रकार वर्गों का जन्म जीविका–उपार्जन के आर्थिक साधन के अनुसार होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के उत्पादन–कार्यों में लगे हुए व्यक्ति समूहों में बँट जाते हैं। पर इन सबकी एकमात्र पूँजी 'श्रम' ही होती है और अपने श्रम को बेचकर ही वे अपना पेट पालते हैं; इस कारण उनको 'मेहनतकश' या 'श्रमिक–वर्ग' कहा जाता है। इसके विपरीत समाज में एक और वर्ग होता है जोकि पूँजी का अधिकारी होता है और वह उसी से अन्य लोगों के श्रम को खरीदता है। यही पूँजीपति–वर्ग हैं।

वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class-Struggle)

इस वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त को **मार्क्स** ने अति स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है; परन्तु यह सर्वप्रथम उन्हीं का सिद्धान्त है—यह **मार्क्स** नहीं मानते। **बेडेमेर** के नाम अपने 5 मार्च सन् 1852 के पत्र में **मार्क्स** ने इसी बात पर जोर दिया है। उन्होंने लिखा है, ...और जहाँ तक मेरी बात है आधुनिक समाज में वर्गों के अस्तित्व का, या उनके बीच होने वाले संघर्षों का पता लगाने का कोई श्रम मुझे देना उचित नहीं है। मुझसे पहले बहुत ही पूँजीवादी इतिहासकारों ने इस वर्ग–संघर्ष के ऐतिहासिक विकास का और पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों ने वर्गों के आर्थिक गठन का वर्णन किया था। मैंने इसमें जो नई चीजें जोड़ी हैं वे यह सिद्ध करती हैं कि–

(1) विभिन्न वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास के किसी ऐतिहासिक क्रम-विशेष के साथ ही जुड़ा हुआ होता है;

(2) वर्ग-संघर्ष का चरमोत्कर्ष आवश्यक रूप से सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व होता है;

(3) अधिनायकत्व की यह अवस्था अपने-आपमें सभी वर्गों के उन्मूलन और वर्गहीन समाज की ओर संक्रमण करने की अवस्था होती है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, **मार्क्स** का कथन है कि सदा से ही प्रत्येक समाज में दो विरोधी वर्ग-एक शोषक और दूसरा शोषित वर्ग होता है। जब शोषक-वर्ग की शोषण-नीति असहनीय हो जाती है, तब तक एक स्तर पर इन दोनों वर्गों में संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** में **मार्क्स** और **एंगेल्स** ने लिखा है, "अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही इतिहास है। स्वतन्त्र व्यक्ति तथा दास कुलीन वर्ग तथा साधारण जनता, सामन्त तथा अर्द्ध-दास किसान, गिल्ड का स्वामी तथा उसमें कार्य करने वाले कारीगर, संक्षेप में शोषक तथा शोषित, सदा एक-दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष परन्तु अनवरत युद्ध करते रहते हैं। इस संघर्ष का अन्त प्रत्येक बार या तो समग्र समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में या संघर्षरत वर्गों की आम बर्बादी में होता है। ...आधुनिक पूँजीवादी समाज, जोकि सामन्तवादी समाज के अवशेषों से अंकुरित हुआ है, वर्ग-संघर्ष से विमुक्त नहीं है। इसने केवल पुराने के स्थान में नवीन वर्गों को, उत्पीड़न की नई अवस्थाओं को तथा नवीन प्रकार के संघर्षों को जन्म दिया है। फिर भी हमारे इस युग की, पूँजीवादी युग की, एक विशिष्ट विशेषता यह है कि इसने वर्ग-संघर्ष को अधिक सरल बना दिया है। समग्र रूप में समाज उत्तरोत्तर दो महान् विरोधी समूहों में बँट रहा है; ये दो महान् वर्ग, पूँजीपति और सर्वहारा, एक-दूसरे से प्रत्यक्ष रूप में संघर्षरत हैं।"

क्या आप जानते हैं **मार्क्स** का कथन है कि यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भू-सम्पत्ति के विपरीत पूँजी सदैव धन का आकार ग्रहण करती है।

पूँजी का प्रथम साकार रूप धन है। उसके बाद पूँजीपतियों द्वारा उस धन से श्रमिकों के श्रम को उसके वास्तविक मूल्य से कम मूल्यों में खरीदकर और इस प्रकार अतिरिक्त मूल्यों को एकत्रित करके धन को पूँजी में बदल दिया जाता है। इस पूँजी से उन चीजों को खरीदकर, जोकि नए उत्पादन में आर्थिक रूप में सहायक होती हैं और जो कि उत्पादन-क्रिया के एक साधन के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं, पूँजीपति लोग श्रमिकों के श्रम से पूँजी का एकत्रीकरण करते रहते हैं या दूसरे शब्दों में, धन से धन को बढ़ाते हैं। यह पूँजी बढ़ते-बढ़ते एक ऐसे जीवित-दानव में बदल जाती है जोकि कटु-फलदायक और स्वयं बढ़ने वाली होती है और जो श्रमिकों के खून को धीरे-धीरे चूसती रहती है। इस प्रकार, मार्क्स के अनुसार, पूँजी वह धन है जो कि श्रमिकों का शोषण करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस शोषण से ही वर्ग-संघर्ष का बीजारोपण हो सकता है।

टास्क वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

मार्क्स ने इस पूँजीवादी फैक्ट्री-प्रणाली के प्रमुख परिणामों का उल्लेख इस प्रकार किया है कि फैक्ट्री-प्रणाली में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है जिसके कारण बहुधा अति-उत्पादन से वह स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे कि अधिकाधिक व्यापार-चक्र या व्यापारिक संकटकाल का उद्‌भव स्वाभाविक होता है। इसके फलस्वरूप कम हैसियत वाले पूँजीपति या छोटे पैमाने के मिल-मालिकों को हानि होती है और धीरे-धीरे उनका सब-कुछ बड़े पूँजीपतियों

नोट

के हाथ में चला जाता है। जिससे पूँजी का उत्तरोत्तर केन्द्रीकरण कुछ लोगों के हाथ में हो जाता है। परिणामस्वरूप छोटे पूँजीपति अधिक संख्या में पूँजीवादी-वर्ग से बाहर निकलकर श्रमिक-वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं और जनता का अधिकाधिक भाग एक अति अल्पसंख्यक पूँजीपति-वर्ग का नौकर हो जाता है। प्रत्येक व्यापारिक संकटकाल में पूँजीपति वस्तुओं के मूल्यों में कमी कर देता है क्योंकि ऐसा करने से अति-उत्पादित वस्तुओं का अधिकाधिक बेचना सम्भव होना है। जब वस्तुओं का मूल्य गिरता है तो मजदूरों का वेतन भी आप-से-आप कम हो जाता है। मजदूरों को कम वेतन पर अधिक-से-अधिक काम करना पडता है। इससे श्रमिकों की क्रय-शक्ति घटती है। वे अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाते हैं धन या पूँजी का वास्तविक उत्पादक श्रमिक होता है, परन्तु उसे उसका उचित हिस्सा नहीं मिल पाता है। धोखे और अन्याय से पूँजीपति श्रमिकों की गाढ़ी कमाई का फल छीन लेते हैं। यही मार्क्स के अनुसार, 'मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण' है। इससे श्रमिक-वर्ग में असन्तोष बढ़ता रहता है जोकि प्रत्यक्ष तौर पर वर्ग-संघर्ष के रूप में प्रकट होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. मार्क्स का कथन है कि हमेसा से ही प्रत्येक ········· में दो विरोधी वर्ग-एक शोषक और दूसरा शोषित होता है।
2. अभी तक के सभी समाजों का इतिहास ········· का ही इतिहास है।
3. केवल पुराने के स्थान में नवीन वर्गों, उत्पीड़त की नई ········· को तथा नवीन प्रकार के संघर्षों को जन्म दिया है।

आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में आन्तरिक विरोध व वर्ग-संघर्ष
(Internal Contradictions of Modern Capitalistic System and Class Conflict)

मार्क्स ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसे कई आन्तरिक विरोध क्रियाशील हैं जिनके कारण पूँजीपति और श्रमिकों के कठोर संघर्ष का और भी तीव्र होना और साथ ही पूँजीवाद का विनाश अवश्यम्भावी है। पूँजीवाद स्वयं अपने विनाश का बीज उत्पन्न करता है। पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत क्रियाशील आन्तरिक विरोधों का निरूपण **मार्क्स** ने विशद् रूप में किया है। इस सम्बन्ध में उनके विचारों को **फ्रांसिस डब्ल्यू.** कोकर ने अति उत्तम ढंग से प्रस्तुत किया है—

"**सर्वप्रथम** पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रवृत्ति बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा एकाधिकार की ओर है। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप, जो भागीदारी, संयुक्त-पूँजी कम्पनी तथा कार्पोरेशन के रूप में हमें देखने को मिलता है, सम्पत्ति उत्तरोत्तर कम-से-कम व्यक्तियों (पूँजीपतियों) के हाथों में इकट्ठी होती है; और इस प्रकार छोटे पूँजीपति अधिकाधिक पूँजीवादी-वर्ग से बाहर निकाल दिए जाते हैं और वे सर्वहारा-वर्ग में मिलते जाते हैं। इस प्रकार पूँजीवाद का विकास होने का परिणाम यह होता है कि पूंजीपतियों की संख्या कम होती जाती हैं और मजदूरों की संख्या में वृद्धि होती जाती है। दूसरे, पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रवृत्ति स्थानीय एकत्रीकरण की ओर है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने हेतु एक छोटे-से स्थान पर लाखों मजदूरों की संख्या एकत्र करना आवश्यक हो जाता है और इस प्रकार परस्पर सम्पर्क से मजदूरों को अपनी सामान्य कठिनाइयों एवं आवश्यकताओं का अधिक ज्ञान होता है। उनमें वर्ग-चेतना शक्तिशाली हो जाती है और उन्हें सहयोग के साधन सुलभ हो जाते हैं। तीसरे, पूँजीवादी उत्पादन की प्रवृत्ति अपने लिए अधिकाधिक व्यापक बाजार प्राप्त करने की ओर भी होती है। इसके लिए औद्योगिक संसार के विविध भागों में यातायात के साधनों के उच्चतम विकास की आवश्यकता होती है और इससे संसार के विविध

नोट

औद्योगिक केन्द्रों में फैले हुए मजदूरों में परस्पर सम्पर्क स्थापित करने के लिए सुविधा मिलनी हैं। चौथे, पूँजीवादी-प्रणाली समय-समय पर आर्थिक संकट पैदा करती है। मजदूर ही एक बड़ी संख्या में उपभोक्ता होते हैं और उन्हें केवल उतना ही वेतन मिलता है जितने में वे अपने उत्पादन का एक अत्यन्त सीमित भाग ही खरीद सकते हैं। उत्पादित वस्तुएँ एकत्र हो जाती हैं और अत्यधिक उत्पादन के कारण आर्थिक संकट पैदा हो जाता है। ज्यों-ज्यों पूँजीवाद का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों समय-समय पर उत्पन्न होने वाले संकट तीव्रतर होते जाते हैं और उनके कारण पूँजीपतियों का आधिपत्य अधिकाधिक असुरक्षित होता जाता है; और पूँजीपति ऐसे संकटों के निवारण हेतु विभिन्न उपायों को काम में लाते हैं– जैसे नए बाजारों की प्राप्ति। उन उपायों को अपनाने से संकट और भी गम्भीर एवं अधिक व्यापक होते जाते हैं।....अन्त में, पूँजीवाद के अन्तर्गत ऐसी प्रवृत्ति भी है जिससे मजदूरों के दु:ख-दैन्य, अज्ञानता और पराधीनता में वृद्धि होती है जिससे उनमें विद्वेष और असन्तोष भी बढ़ता है। अपनी समस्त प्रक्रिया में पूँजीवाद जहाँ एक ओर तो सदैव सम्पत्तिहीन व्यक्तियों की संख्या बढ़ाता है, वहीं दूसरी ओर वह परिश्रम बचाने वाली मशीनों के विकास द्वारा आवश्यक मजदूरों की संख्या कम करता जाता है, अर्थात् पूँजीवाद निरंतर ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम करता रहता है, जो बढ़ते हुए उत्पादन को खरीदने की क्षमता रखते हैं।"

"इस प्रकार पूँजीवादी-प्रणाली मजदूरों की संख्या बढ़ाती है, उन्हें सुसंगठित समूहों में एकत्र कर देती है, उनमें वर्ग-चेतना का प्रादुर्भाव करती है और उनमें परस्पर सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित करने के लिए विश्वव्यापी पैमाने पर यातायात तथा संचार के साधन प्रदान करती है; उनकी क्रय-शक्ति को कम करती है और उनका अधिकाधिक शोषण करके उन्हें संगठित प्रतिरोध करने या बदला लेने के लिए प्रोत्साहित करती है। अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते हुए और मुनाफे के आधार पर स्थिर व्यवस्था की सतत् रक्षा करते हुए पूँजीपति सदैव ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न करते रहते हैं, जिनसे मजदूरों को श्रमिक-समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल व्यवस्था स्थापित करने के लिए तैयारी करने के अपने स्वाभाविक प्रत्यन्नों में प्रोत्साहन तथा बल मिलता है।" संक्षेप में, स्वयं पूँजीवादी व्यवस्था में ही तीव्रतम वर्ग-संघर्ष (जिसकी कि स्वाभाविक अभिव्यक्ति क्रान्ति है) और पूँजीवाद के विनाश के बीज छिपे हुए हैं। इस प्रकार, मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में दिन-प्रतिदिन श्रमिक-वर्ग में निर्धनता, भुखमरी और बेरोजगारी बढ़ती जाएगी और उनकी दशा उत्तरोत्तर दयनीय होती जाएगी। परन्तु सहन करने की भी एक सीमा होती है; उस सीमा के बाद श्रमिक या सर्वहारा-वर्ग अपनी समस्त जंजीरों को तोड़कर पूँजीपतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना लेकर उठ खड़ा होगा ही। यही क्रान्ति का युग होगा। मार्क्स के अनुसार पुराने समाज के अन्त और नए समाज के जन्म के लिए क्रान्ति नितान्त आवश्यक है। अपने स्वार्थों से घिरे हुए पूँजीपति संसदीय नियमों द्वारा अपने एकाधिकार का कभी भी परित्याग नहीं करेंगे; अर्थात् शान्तिपूर्ण ढंग से उन्हें हटाया नहीं जा सकेगा; उसके लिए तो क्रान्ति ही एक सामान्य उपाय है। इस क्रान्ति का परिणाम होगा पूँजीवादी-वर्ग या शोषक-वर्ग का विनाश और सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना। **कम्युनिस्ट घोषणा** में **मार्क्स** ने लिखा है, "पूँजीपतियों के साथ संघर्ष के दौरान अपनी परिस्थितियों से विवश होकर सर्वहारा अपने को एक वर्ग के रूप में संगठित करने को बाध्य होगा। एक क्रांति के द्वारा वह अपने को शासक वर्ग बनाता है और इस प्रकार उत्पादन की पुरानी अवस्थाओं को बलपूर्वक निकाल फेंकता है।"

"कल्पनावादी समाजवादी सर्वहारा-वर्ग को असहाय और पीड़ित जनसमूह भर मानते थे इसके विपरीत, **मार्क्स** ने मजदूर-वर्ग को एक ऐसी सामाजिक शक्ति के रूप में देखा जो सारे समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है। वैज्ञानिक कम्युनिज्म की पूरी इमारत की नींव सर्वहारा-वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका के विचार की शिला पर रखी गई थी।"

नोट

नोट्स **लेनिन ने लिखा है–"मार्क्स** के पूरे सिद्धान्त में मुख्य बात यही है कि वह समाजवादी समाज के निर्माता के रूप में सर्वहारा-वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका को उभारकर सामने ले आता है।"

इसी प्रतिभाशाली खोज के आधार पर समाजवाद का कल्पनावादी दृष्टिकोण बदलकर वैज्ञानिक बन गया। इतिहास में पहली बार उसे एक ठोस आधार मिला और उसका भविष्य उदयीमान क्रान्तिकारी-वर्ग के साथ जुड़ गया।

मार्क्स ने यह सिद्ध कर दिखाया कि "समाज में अपनी स्थिति-विशेष के कारण सर्वहारा ही एक ऐसा वर्ग है जो क्रान्तिकारी सिद्धान्त और प्रगतिशील दर्शन का झंडा लेकर आगे चल सकता है और जिसे चलना चाहिए।" **मार्क्स** के शब्दों में "जिस प्रकार दर्शनशास्त्र को अपना भौतिक अस्त्र सर्वहारा के रूप में मिल जाता है, ठीक उसी प्रकार सर्वहारा-वर्ग को दर्शनशास्त्र के रूप में अपने विचार सम्बन्धी अस्त्र मिल जाते हैं....।" इसीलिए, **मार्क्स** के अनुसार, सर्वहारा-वर्ग ही स्थायी रूप में पूँजीवाद का विरोध कर सकता है। "अन्य वर्ग भी पूँजीवाद का विरोध करते हैं, किन्तु उनका पूँजीवादी समाज में कोई-न-कोई स्वार्थ निहित रहता है। इसलिए वे पूँजीवाद का विनाश नहीं, अपितु सुधार चाहते हैं। अतएव.....पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति केवल मजदूर दल के नेतृत्व में ही हो सकती है।"

मार्क्स सर्वहारा-वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना पर बल देते हैं, परन्तु क्रान्ति के द्वारा ही इस प्रकार की व्यवस्था की स्थापना प्रत्येक देश में अनिवार्य है–इसे **मार्क्स** स्वीकार नहीं करते। उन्होंने हेग कांग्रेस के बाद एमस्टर्डम में होने वाली एक बैठक में, समाजवादी पुनर्निर्माण के लिए सर्वहारा-वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार किए जाने की आवश्यकता पर बल देते हुए यह कहा था, "लेकिन हमने कभी यह दावा नहीं किया कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने का केवल एक ही अपरिवर्तनशील साधन है। हम समझते हैं कि विभिन्न देशों को अपनी-अपनी संस्थाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए; और हम इसे भी अस्वीकार नहीं करते कि अमेरिका और इंग्लैंड जैसे कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ मजदूर शान्तिपूर्ण साधनों से अपने उद्देश्य को पूरा करने की आशा रख सकते हैं। यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूँ, तो हालैण्ड भी इसी श्रेणी में आता है। जो भी हो, हमें यह भी मानना चाहिए कि यूरोप के अधिकांश देशों में हमारी क्रान्ति का मुख्य रूप बल-प्रयोग होगा; हाँ बल-प्रयोग ही, और इससे भी आवश्यक बात यह है कि बल-प्रयोग ठीक अवसर पर किया जाए, जिससे कि मजदूरों का शासन स्थायी रूप में स्थापित हो सके।"

मार्क्स का मत है कि 'वर्ग-संघर्ष', 'क्रान्ति' आदि शब्दों से आम जनता को भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। डर तो उन पूँजीपतियों को होना चाहिए जो कि हरदम मेहनतकश जनता का खून चूस-चूसकर फल-फूल रहे हैं; डर तो उन्हें (पूँजीपतियों को) होना चाहिए जिनकी समस्त शक्ति और शोषण करने का अधिकार क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वहारा-वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित हो जाने पर धूल में मिल जाएगा। **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** सर्वहारा क्रान्ति के लिए इसी 'बुलन्द और विजयपूर्ण आवाहन' के साथ समाप्त होता है–कम्युनिस्ट क्रान्ति के भय से शासक-वर्गों को काँपने दो। सर्वहारा के पास खोने के लिए अपनी-अपनी बेड़ियों के सिवाय और है ही क्या! पर जीतने के लिए तो उनके सामने पूरी दुनिया है।

10.2 सारांश (Summary)

- **मार्क्स** की विचारधाराओं और सिद्धान्तों को आश्चर्यजनक लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी है, विशेषकर श्रमजीवी जनता को प्रचुर प्रेरणा मिली है।
- **लेनिन** ने यह भी लिखा है कि **मार्क्स** ने "मानवीय चिन्तन की प्रत्येक अनुभूति को एक नए साँचे में ढाला, उसकी आलोचना की, मजदूर-वर्ग के आन्दोलन की कसौटी पर उसे परखा और ऐसे निष्कर्ष निकाले जो

नोट

पूँजीवादी संकीर्णताओं में फँसे हुए, या पूँजीवादी अन्धविश्वासों में जकड़े हुए विचारक नहीं निकाल सकते थे।"

- **मार्क्स** के मुख्य सिद्धान्त नए नहीं थे; किन्तु उन्होंने "पुराने विचारों को विशद् एवं व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया और उन्हें नवीन एवं प्रभावकारी रूप दिया।"
- वैज्ञानिक दर्शन है कि इसका उपयोग "न केवल विश्व को समझने के लिए, बल्कि उसे बदलने के लिए भी" किया जा सकता है और किया भी गया है।

10.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **वर्ग (Class):** आनुवांशिक विशेषताओं के अतिरिक्त किसी भी अन्य आधार पर एक-दूसरे से विभक्त समूह को वर्ग कहते हैं। उत्पादन के साधन के साथ समान सम्बन्ध रखने वाले लोग एक वर्ग का निर्माण करते हैं। इस समूह के सदस्यों में वर्ग चेतना का होना भी आवश्यक है।
2. **वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत (Theory of Class Struggle):** समग्र रूप में समाज उत्तरोत्तर दो महान् विरोधी समूहों में बंट रहा है; ए दो महान् वर्ग, पूंजीपति और सर्वहारा, एक-दूसरे से प्रत्यक्ष रूप में संघर्षरत हैं।

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मार्क्स के वर्ग निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें।
2. मार्क्स के वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष संबंधी सिद्धान्त की विवेचना करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. समाज
2. वर्ग-संघर्ष
3. अवस्थाओं।

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।
2. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्क्स।
3. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट—जे. एच. टर्नर।
4. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्र नाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–11 : पूँजीवादी समाज में अलगाव (Alienation in Capitalistic Society)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

11.2 सारांश (Summary)

11.3 शब्दकोश (Keywords)

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अलगाव का अर्थ समझना।
- अलगाव की विशेषताओं को जानना।
- अलगाव के विभिन्न स्वरूपों के बारे में जानकारी होना।

प्रस्तावना (Introduction)

अलगाव का शाब्दिक अर्थ है "अलग होना"। मार्क्स ने इस शब्द को समाजशास्त्रीय अर्थ प्रदान किया है। मार्क्स का अलगाव की अवधारणा से अभिप्राय ऐसे समाज की संरचना से है जिसमें उत्पादन के साधनों से उत्पादक वंचित रहता है तथा जिसमें 'निर्जीव श्रम' (पूंजी) का 'जीवित श्रम' (श्रमिक) पर प्रभुत्व होता है। श्रमिक उत्पादित वस्तु का इस्तेमाल अपने लिए नही कर सकता। उसकी बनाई हुई रचना एक ऐसी वस्तु बन जाती है जो उसके बनाने वाले से पृथक हो जाती है। कारीगर के लिए वस्तु का पृथक रूप धारण कर लेना और भी गहरा हो जाता है जब कारखानें में उत्पादन प्रक्रिया अलग-अलग हिस्सों में बाँट दी जाती है तथा कारीगर के हिस्से में एक पूरे काम का छोटा-सा हिस्सा ही आता है। श्रमिक का काम मशीन जैसा हो जाता है तथा वह सोच-समझ से कार्य करने की क्षमता को खो देता है। मार्क्स ने "फैटिशिज्म आफ कमोडिटीज एण्ड मनी" शीर्षक के अन्तर्गत 'कैपीटल (1861-1879) में इस अवधारणा की विस्तृत एवं व्यवस्थित व्याख्या दी है।'

11.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

नोट

पूंजीवादी व्यवस्था में, चाहे वह दुनिया के किसी भी कोने में हो, कामगार की स्थिति किसी भी भवन में लगाये जाने वाले पत्थर के उन चौखटों की है जिसे कारीगर चाहे तो फर्श पर लगा दें और चाहे तो थुकदानी के स्टैण्ड पर जोड़ दे। पत्थर की ये चौखटें बेजान हैं, उन्हें तो घड़ा और तराशा ही इसलिये है कि कारीगर अपनी मनमर्जी से उन्हें कहीं भी लगा देवे। हिन्दी के प्रगतिशील कवि दुष्यन्त एक जगह पर कहते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था में आदमी तो केवल मात्र एक झुनझुना है जिसे बिना आदमी की चिन्ता किये कहीं भी किसी भी मौके पर बजाया जा सकता है।

जिस तरह चाहो, बजाओ इस सभा में।
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।।

इसी संदर्भ में कामगार तो एक झुनझुना है जिसे पूंजीपति को अपनी इच्छानुसार बजाता है। झुनझना अपने आप में कुछ नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था में कामगार एक अजनबी (Stranger) मात्र है। उसके पास कोई शक्ति नहीं (Powerless) है।

मार्क्स ने केपिटल की पहली जिल्द में अलगाववादी श्रमिकों (Alienated Labour) की चर्चा विस्तार से की है।

क्या आप जानते हैं इरविंग जैटलिन (Irving M. Zeitlin) जैसे सिद्धान्त वेत्ताओं का तो कहना है कि मार्क्स ने कैपिटल पुस्तक का शीर्षक अलगाव भी रखा होता तो अनुचित नहीं था।

कैपिटल में मार्क्स ने यह विस्तारपूर्वक बताया है कि पूंजीवादी व्यवस्था बराबर विकसित होती है और इसका कारण बढ़ती हुई उत्पादन शक्तियाँ और बुनियादी उत्पादन सम्बन्ध है। इस संदर्भ में केपिटल में मार्क्स ने यह स्थापित किया है कि पूंजीवाद के विकास के साथ जीवन की दशाओं में बहुत तेजी से परिवर्तन आया है। ज्यों-ज्यों पूंजीवाद के पंख फैले हैं त्यों-त्यों कारखानों और मिलों में काम करने वाले श्रमिकों में अलगाव आया है। मिलों के धुएं के गुबार के नीचे कामगार बराबर सोचता है, इस सम्पूर्ण व्यवस्था में मैं तो बराबर घूमने वाला दाँता (Cog) हूँ जिसका होना न होना बराबर है। मैं तो एक मात्र चना हूँ जो भाड़ नहीं फोड़ सकता। कामगार की इस विवशता को मार्क्स ने श्रमिकों को अलगाव के अन्तर्गत रखा है। अलगाव की समस्या इस भाँति वर्ग व्यवस्था से जुड़ी हुई है और इसीलिये हम इसका विवेचन वर्ग के अन्तर्गत करते हैं।

अलगाव का अर्थ (Meaning of Alienation)

अंग्रेजी में अलगाव के लिये एलिनिएशन (Alienation) पद काम में लिया जाता है। इसका प्रयोग केवल मार्क्सवादी ही करते हों, ऐसा नहीं है। गैर-मार्क्सवादी भी पर्याप्त रूप में इस पद को काम में लाते हैं। 20वीं शताब्दी के मध्य में इस पद का प्रयोग दर्शनशास्त्र के शब्द कोष में हुआ था। इससे पहले यद्यपि दर्शनशास्त्र और उसके बाहर भी इसको प्रयोग में लाया जाता था। एक अवधारणा के रूप में यह पहली बार शब्द कोष में इस शताब्दी के मध्य में आया। गैर-दर्शन शास्त्रीय प्रयोग में जब इसको काम में लिया जाता था तो इसका मतलब अपने पुराने दोस्तों और सहयोगियों से सम्बन्ध विच्छेद करने से था। अर्थ और कानून में जब सम्पति एक हाथ से दूसरे हाथ को हस्तानान्तरित की जाती थी तब अलगाव का प्रयोग होता था। उदाहरण के लिये वस्तुओं को खरीदना बेचना वस्तु की चोरी करना, किसी को भेंट देना ये सब अलगाव के अर्थ के अन्तर्गत आते थे। मार्क्स पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस अवधारणा को दर्शन का दर्जा दिया। ईसाई धर्म में इस पद की उत्पत्ति पापों से मुक्ति के अर्थ से है।

नोट

> *नोट्स* कुछ विचारकों का कहना है कि अलगाव पद की पहली अभिव्यक्ति पश्चिमी विचारधारा में ओल्ड टेस्टामेन्ट (Old Testament) में देखने को मिलती है।

दार्शनिकों ने अलगाव के प्रयोग की उत्पति यूनानी प्लेटो के विचारों में भी खोजी है। रूसो ने भी इसका प्रयोग किया था। हीगेल के बाद मार्क्स ने पहली बार व्यवस्थित रूप से इस पद को वैज्ञानिक स्तर पर रखने का प्रयास किया। हीगेल के बाद फारबेच (Feuerbach) ने इस अवधारणा को काम में लिया है। इन्होंने धर्म से विमुख होने वालों के लिये इस पद का प्रयोग किया है।

अलगाव की अवधारणा में बराबर विविधता रही है। इस विविधता के होते हुए भी, किसी भी अंतिम विश्लेषण में, अलगाव वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति स्वयं से ही विमुख हो जाता है। मनुष्य का जो सार (Essance) या उसकी प्रकृति (Nature) है उससे जब वह अलग हो जाता है, तो यह अलगाव की अवस्था है। दूसरे शब्दों मे जब व्यक्ति स्वयं अलगाव (Self Alienation) की अवस्था में होता है तब वह निम्न प्रकार की गतिविधि करता है यह गतिविधि ही उसका अलगाव है:

(1) ऐसे व्यक्ति अपनी मानवीय प्रकृति से दूर हो जाते हैं।

(2) ये व्यक्ति अपने स्वयं से, अपनी कार्यप्रणाली से अपनी जीवन की गतिविधि से, दूर हो जाते हैं। जीवित रहते हुए भी ये व्यक्ति अपने सामाजिक आर्थिक जीवन से बेखबर रहते हैं।

(3) यह बेखबरी इस हद तक पहुँच जाती है कि वे अपने शरीर से भी अपने आप को जोड़ते नहीं एक तरह से उनका सम्पूर्ण मानस ही सुन्न हो जाता है।

(4) अलगाव ऐसी विनाशकारी स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति और व्यक्तियों से एकदम दूर हो जाता है, उसके इर्द-गिर्द क्या होता है, उसे पता नहीं। उसके स्वयं के शरीर को जोड़-जोड़ और अंग-अंग टूटने लगता है, तब भी वह इससे सरोकार रहीं रखता। पूंजीवादी व्यवस्था में, कामगार कभी भी अपने आप को उत्पादन और उससे होने वाले लाभ के साथ जोड़ता नहीं है। लाभ और उत्पादन से उसका कोई मतलब नहीं है। उसे तो केवल अपनी दिहाड़ी ही या वेतन ही मिलना है।

(5) अलगाव व्यक्ति का अमानवीकरण (De-humanisation) है। अलगाव के कई स्वरुपों में मूल स्वरूप की व्याख्या मार्क्स ने की है। मार्क्स के अनुसार अलगाव वह अवस्था है जिसमें कामगार उसके स्वयं के श्रम से उपार्जित वस्तुओं से अपने आप को अलग रखता है। वह अपने आप को गुलाम समझता है, शक्तिहीन मानता है और स्वयं से बेखबर होकर उत्पादन प्रक्रिया में जुटा रहता है।

मार्क्स की अवधारणा के अनुसार अलगाव का विकास कई अवस्थाओं में होता है। पहली अवस्था तो तब होती है जब वह सामान्य रूप में कारखाने के उत्पादन में अपना सहयोग देता है। इस अवस्था में अलगाव की भावना नहीं है। धीरे-धीरे उसे लगता है कि मालिक का मुनाफा तो बराबर बढ़ता जाता है, और स्वयं उसकी स्थिति दिनों-दिन खस्ता होती जाती है। उसके जीवित रहने की दशा बदत्तर हो जाती है। इस अवस्था में आकर उसमें स्वयं के लिये, स्वयं से अलगाव हो जाता है। यह अलगाव आत्म अलगाव (Self Alienation) है तीसरी अवस्था तब आती है जब उसके जैसे कई कामगार स्वयं का अलगाव महसूस करने लगते हैं। अब कामगार का अलगाव एक व्यक्ति का अलगाव नहीं रखता, स्वयं कामगारों का अलगाव बन जाता है। एक चौथी स्थिति भी आती है जब समस्त मजदूरों में श्रम से अलगाव की भावना तीव्रतर हो जाती है। इस अवस्था में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की अपील होती है।

नोट

कामगार संगठित होते हैं और एक ऐसा वातावरण बनता है जब यह निश्चित होने लगता है कि पूंजीवाद के उन्मूलन के लिये क्रान्ति ही एक मात्र विकल्प है। इस अवस्था में आकर व्यक्ति में एक नयी शक्ति आ जाती है अब वह शक्तिहीन नहीं है क्योंकि उसमें पूंजीवाद को नष्ट करने की ताकत है। अब अलगाव उस सीमा तक पहुँच जाता है जिसे मार्क्स अ-अलगाव (De-alienation) की अवस्था कहते हैं। अलगाव की सम्पूर्ण अवधारणा को इसकी विभिन्न अवस्थाओं में देखा जाना चाहिये।

अलगाववादी अवधारणा पर विवाद (Controvercy on Alienation Concept)

यद्यपि मार्क्स ने अलगाववादी अवधारणा को हीगेल और पूर्ववर्ती विचारकों से लिया था, इसकी लोकप्रियता द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दर्शनशास्त्र तथा समाजविज्ञानों में बढ़ गयी। दार्शनिकों के अतिरिक्त इस अवधारणा पर मार्क्सवादियों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों आदि ने भी लिखा है। वास्तव में इस शताब्दी के छठे दशक में जाकर अलगाववाद पर एक खासा साहित्य तैयार हो गया। इस युग में यह भी हुआ कि यह अवधारणा विवाद के घेरे में भी आ गयी। स्वयं मार्क्सवादियों में अलगाव के अर्थ पर विभेद हो गया और गैर मार्क्सवादी भी इस विभाजन से छूट नहीं पाये।

मार्क्सवादियों में लुकास (Luckas), ब्लाँच (Bloch) ई. फ्रोम (E.Fromm) आदि अग्रणी लेखक हैं। लुकास अलगाव की अवधारणा को हीगेल और मार्क्स की परम्परा में रखते हैं। फ्रोम का कहना है कि मार्क्स के अलगाव की समाजशास्त्र, मनोवैज्ञानिक और दर्शनशास्त्र की दृष्टि से विवेचना होना चाहिये। इधर संरचनावादी मार्क्सवादियों (Structuralist-Marxist) में जिनमें अल्थुजर (Althusser) मुख्य है तर्क देते हैं कि अलगाव का कारण व्यक्तिगत सम्पति, वर्ग प्रभुत्व, शोषण और श्रम विभाजन है। कुछ ऐसे मार्क्सवादी लेखक भी हैं जो आत्म अलगाव (Self alienation) की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि आत्म अलगाव में ऐतिहासिकता नहीं है और इसलिये यह अवधारणा अ-ऐतिहासिक बन जाती है।

अलगाव की अवधारणा की बहस में गैर मार्क्सवादी भी हैं। इस सिलसिले में हैडेगर (Heidegger) और सार्त्रे (Sartre) का योगदान महत्वपूर्ण है। सार्त्रे वस्तुत: अस्तित्ववादी (Existentialist) हैं। वे अलगाव को अस्तित्ववादी संदर्भ में देखते हैं और इसी संदर्भ में इसकी व्याख्या करते हैं। अस्तित्ववादी परम्परा में टीलिच (P.Tillich) ने भी मार्क्स के अलगाव की व्याख्या की है।

अलगाव की अवधारणा विद्वानों की कई पीढ़ियों से गुजरी है। मार्क्सवादी यह तो स्वीकार करते हैं कि वर्ग और श्रम शक्ति का विश्लेषण अलगाव की अवधारणा के बिना नहीं किया जा सकता, लेकिन वे इसके ऐतिहासिक और वैयक्तिक पहलुओं पर विवाद करतें हैं। अलगाव पर जो भी साहित्य उपलब्ध है, चाहे वह मार्क्सवादियों गैर-मार्क्सवादियों और समाज वैज्ञानिकों का हो, उसमें कुछ विशेषताएँ बहुत स्पष्ट हैं, इनका हम यहाँ उल्लेख करेगें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. फ्रोम का कहना है कि मार्क्स के अलगाव की ········ मनोवैज्ञानिक और दर्शनशास्त्र की दृष्टि से विवेचना होना चाहिए।
2. कुछ ऐसे ········ लेखक भी हैं जो आत्म अलगाव की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते।
3. अलगाव की अवधारणा की बहस में ········ भी हैं।

नोट

अलगाव की विशेषताएँ (Characteristics of Alienation)

(1) कामगार का अमानवीकरण : पूंजीवादी समाज व्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया इतनी जटिल हो जाती है कि इसमें कामगार का अमानवीकरण (De-humanisation) हो जाता है। उत्पादन वस्तु के साथ व्यक्ति की भावनाओं और संवेगों का कोई जुड़ाव नहीं होता। जब परिवार में माँ अपने बच्चों के पहनने के लिये गरम स्वेटर बनाती है तो हर सुई में, ऊन के हर रंग में उसका प्रेम और स्नेह जुड़ा रहता है। पहनने वाला भी इस स्वेटर के माध्यम से अपने आपको स्वेटर बनाने वाले के साथ तादात्म्य कर लेता है। यही स्त्री जब कारखाने में करघे पर काम करती है तो यह एक भौतिक श्रम मात्र है और उत्पादन के साथ न तो उसके संवेग जुड़े होते हैं और न कोई भावनाएँ। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया कामगार के लिये तो यांत्रिक (Mechanical) मात्र है। अत: अलगाव की स्थिति में व्यक्ति में अमानवीयता आ जाती है।

(2) वैयक्तिक विघटन : कुछ गैर-मार्क्सवादियों ने अलगाव की स्थिति को ऐनोमिक (Anomic) कहा है। यह वह स्थिति है जिसमें कामगार न तो अपने समूह और समाज के नियम-उपनियमों को स्वीकार करता है और न ही वह अपनी व्यवस्था के लक्षणों की प्राप्ति के प्रति जागरूक होता है। ऐनोमिक की अवधारणा को दुर्खीम (Durkheim) ने रखा था। बाद में इसे रॉबर्ट मर्टन (Robert Merton) ने पूरी तरह से विकसित किया। यदि हम अवधारणात्मक संदर्भ से देखें तो इन विचारकों के अनुसार अलगाव एक प्रकार से वैयक्तिक विघटन (Personal Disorganisation) है।

(3) समाज के साथ अनुकूलन का अभाव : कुछ लेखकों के अनुसार अलगाव सर्वहारा वर्ग की वह स्थिति है जिसमें कामगार अपने आप को अपने समूह के साथ अनुकूल नहीं कर सकता, वह तो ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है जब उस पर समाज का कोई अंकुश ही नहीं रहता। वह तो अपने काम को किसी यन्त्र की तरह करता रहता है– न तो प्रतिबद्धता और न संवेग।

(4) स्वयं और दुनिया से पृथक्करण: जोसेफसन और जोसेफसन (josephson and Josephson) का कहना है कि अलगाव में मस्तिष्क की ऐसी दशा हो जाती है कि व्यक्ति अपने आप को, स्वयं से, अपने इर्द-गिर्द के लोगों से और एक तरह से सारे संसार से पृथक कर लेता है। इस लेखकों के अनुसार अलगाव एक व्यक्तिगत समस्या है।

(5) वस्तुगत जीवन पद्धति : अलगाव की व्याख्या में यह भी कहा जाता है कि यह व्यक्ति की केवल भावना और अनुभूति ही नहीं है जो उसे पूरी तरह तोड़ देती है। यह तो एक वस्तुगत तथ्य (Objective Fact) है– जीवनयापन की एक पद्धति है जो उसे पूरी तरह न केवल कारखाने वरन् समाज से विमुख कर देती है।

(6) अलगाव एक दार्शनिक और समाजशास्त्रीय कोटि है : दर्शनशास्त्र के सोवियत शब्द कोष में ओर्गुसोव (A.P. Ogurtsoy) ने अलगाव की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह वह कोटि है जिसमें आदमी की गतिविधियों का वस्तुगत परिवर्तन होता है जिसके परिणाम स्वरूप आदमी के सभी क्रियाकलाप केवल गौण हो जाते हैं और उत्पादन की प्रक्रिया उस पर हावी हो जाती है।

जब हम अलगाव की प्रक्रिया को उसके लम्बे ऐतिहासिक दौर में देखते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल अपने स्वरूप में आर्थिक और भौतिक ही नहीं है, दार्शनिक और ऐतिहासिक भी है। यहाँ यह भी कहना चाहिये कि मार्क्स ने इस अवधारणा को दो संदर्भों में देखा है: (1) ऐतिहासिक और (2) उत्पादन प्रक्रिया की भूमिका में। यह सत्य है कि प्रारम्भ में इस अवधारणा का मूल हीगेल का दर्शनवाद था। जब मार्क्स ने केपिटल में इसे पहली बार रखा तो इसकी व्याख्या उत्पादन प्रक्रिया और ऐतिहासिक संदर्भ में की। यह बात दूसरी है कि गैर-मार्क्सवादी लेखक इस प्रक्रिया का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक स्तर पर भी करते हैं।

नोट

अलगाव के स्वरूप (Forms of Alienation)

अलगाव के सिद्धान्त को विकसित करने में मार्क्स के अतिरिक्त कई अन्य दर्शनशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों का भी योगदान है। इन लेखकों ने अपने-अपने संदर्भ में अलगाव के विभिन्न स्वरूप प्रस्तुत किये हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख स्वरूपों का उल्लेख करेगें–

(1) एडम स्वाफ के अनुसार अलगाव का वर्गीकरण: एडम स्वाफ ने अलगाव को एक सामाजिक प्रघटना के रूप में लिया है। उनके अनुसार अलगाव के दो प्रकार हैं: (अ) वस्तुगत या सामान्य अलगाव, और (ब) व्यक्तिगत या आत्म अलगाव।

(2) रिचार्ड स्चाट के अनुसार अलगाव का वर्गीकरण: ई. 1970 में इन्होंने अपनी पुस्तक अलगाव में इसके प्रकारों का उल्लेख किया है: (अ) आदमी का प्रकृति से अलगाव; (ब) आदमी का अपने इष्ट मित्रों से अलगाव; (स) आदमी का अपने काम तथा स्वयं मस्तिष्क से अलगाव, तथा (द) आदमी का स्वयं से अलगाव।

(3) एम. सीमन के अनुसार अलगाव का वर्गीकरण : इन्होंने अलगाव की स्थिति को पाँच कोटियों में रखा है: (अ) शक्तिहीनता, (ब) अर्थहीनता, (स) सामाजिक पृथक्करण, (द) नियमहीनता, और (स) सामाजिक पृथक्करण, (द) नियमहीनता, और (य) आत्म उदासीनता।

अलगाव का उपर्युक्त वर्गीकरण किसी भी अर्थ में सम्पूर्ण वर्गीकरण नहीं है। ऐसा वर्गीकरण कुछ अर्थों में सही भी है और कुछ में गलत। यह सब होते हुए भी वर्गीकरण का बहुत बड़ा लाभ यह है कि इससे हमें अलगाव की विशेषताओं का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है।

मार्क्स की अलगाव की अवधारणा की अलोचना कई मुद्दों पर हुई है, उदाहरण के लिये आत्म अलगाव की अवधारणा को स्वयं मार्क्सवादियों ने कई तरह से बुरा-भला कहा है। इसके आलोचकों का कहना है कि इस तरह की अवधारणा ऐतिहासिक शक्ति की अवेहलना करती है। सच्चाई तो यह है कि अलगाव में व्यक्ति ऐतिहासिक संभावनाओं को नकार देता है और इस तर्क पर आत्म अलगाव सही नहीं उतरता। यह भी कहा जाता है कि यदि अलगाव को मस्तिष्क की एक दशा कहा जाय तो यह मार्क्स के साथ अन्याय होगा। ऐसी व्याख्या मनोवैज्ञानिक है और उत्पादन प्रक्रिया को नकार देती है। इसी तरह जब अलगाव को ऐनोमी (Anomie) और व्यक्तिगत विघटन के रूप में देखा जाता है तब भी यह अवधारणा केवल समाजशास्त्रीय रह जाती है। मार्क्स ने तो अलगाव को उत्पादन प्रक्रिया और शोषण तथा अतिरिक्त मूल्य के संदर्भ में रखा है और इसलिये इसे इसी अर्थ में समझना चाहिये।

इरविंग जेटलिन जब श्रम शक्ति के अलगाव की चर्चा करते हैं तो इसके उपसंहार में उनका बयान है कि पूंजीवादी व्यवस्था में कामगार का अंतिम उद्देश्य अपने आप को तकनीकी दबाव से मुक्त करना है। इस व्यवस्था में हुआ यह है कि आदमी तेजी के साथ उत्पादन प्रक्रिया पर नियंत्रण अधिकार खो रहा है। इस अवस्था में हो यह रहा है कि वह अपनी सृजनात्मक मानवीय कुशलता को खोकर उत्पादन संगठन को मजबूर कर रहा है। इसी कारण मार्क्स इस अवस्था के अमानवीयकरण की प्रक्रिया मानता है।

टास्क अलगाव की विशेषताएँ क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

11.2 सारांश (Summary)

- मार्क्सवादी अर्थ में अलगाव एक ऐसी क्रिया है, जिसके माध्यम से (अथवा जिस स्थिति में) एक व्यक्ति, एक समूह, एक संस्था, अथवा एक समाज निम्न के प्रति अलगावित हो जाता है–
  – अपने कामों के परिणामों अथवा उत्पादों के प्रति

नोट

– उस प्राकृतिक वातावरण के प्रति जिसमें वह रहता है

– अन्य व्यक्तियों के प्रति

– स्वयं के प्रति

- अलगाव सदैव आत्म-अलगाव होता है, अर्थात् अपने ही कामों द्वारा अपने से अलग हो जाना
- पूंजीवादी समाज व्यवस्था में उत्पादन प्रक्रिया इतनी जटिल हो जाती है कि इसमें कामगार का अमानवीकरण (De-humanisation) हो जाता है।
- अलगाव के सिद्वान्त को विकसित करने में मार्क्स के अतिरिक्त कई अन्य दर्शनशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों का भी योगदान है।

11.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अलगाव (Alienation) –** अलगाव व्यक्ति की एक ऐसी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्थिति अथवा दशा की परिचायक अवधारणा है जिसमें व्यक्ति अपने सामाजिक पक्षों से कट जाता है।
2. **अलगाव की विशेषताएँ (Characteristics of Alienation) –** अलगाव की प्रक्रिया केवल अपने स्वरूप में आर्थिक और भौतिक ही नहीं है, दार्शनिक और ऐतिहासिक भी है।

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मार्क्स के अलगाव सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. अलगाव की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
3. 'अलगाव' पद की पहली अभिव्यक्ति पश्चिमी विचारधारा में कहाँ देखने को मिलती है।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. समाजशास्त्र 2. मार्क्सवादी 3. मार्क्सवादी।

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थ्योरी–जे. एच. टर्नर।
2. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।
3. समाजशास्त्र–टी. बी. बोटोमोर।

नोट

इकाई–12 : सामाजिक परिवर्तन का मार्क्स का सिद्धान्त (Theory of Marx of Social Change)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 मार्क्स का सिद्धांत (Theory of Marx)

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा को समझना।
- मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन संबंधी सिद्धान्त की जानकारी।
- मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन संबंधी सिद्धान्त की प्रासंगिकता।

प्रस्तावना (Introduction)

मार्क्स के अनुसार, समाज कोई अस्थायी ढांचा नहीं बल्कि गतिशील परिपूर्णता है। इस परिपूर्णता को आर्थिक कारक ही गति प्रदान करता है। आर्थिक कारक पर अपने सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को आधारित करते हुए मार्क्स ने लिखा है, "राजनैतिक, न्यायिक, दार्शनिक, साहित्यिक और कलात्मक विकास आर्थिक विकास पर निर्भर होता है। लेकिन ये एक-दूसरे पर प्रक्रिया करते हैं और ये प्रतिक्रिया, आर्थिक आधार पर करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं होता है कि आर्थिक स्थिति ही एकमात्र क्रियाशील कारक है, और अन्य सभी का परोक्ष प्रभाव है। आर्थिक आवश्यकता के क्षेत्र पर परस्पर सम्पर्क होता है और इस भांति अंतिम रूप से इसी का प्रभाव रहता है।"

नोट

इस प्रकार कार्ल मार्क्स का यह दृढ़ मत रहा है कि समाज की सांस्कृतिक सुपर संरचना का आधार उत्पादन संबंधी सम्बन्ध हैं। इस दृष्टि से उत्पादन सम्बन्धी इन सम्बन्धों से मार्क्स का तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों से ही है। इस प्रकार उसके इस सिद्धान्त का सारभूत आधार यही है कि इन उत्पादन सम्बन्धी सम्बन्धों में परिवर्तन आने से समाज में परिवर्तन होता है।

12.1 मार्क्स का सिद्धांत (Theory of Marx)

मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा इतिहास की उपरोक्त भौतिकवादी व्याख्या से बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाती है। मार्क्स के मतानुसार इतिहास के सभी परिवर्तन उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन के ही फलस्वरूप होते हैं। भौगोलिक परिस्थितियाँ, जनसंख्या की वृद्धि आदि कारकों का प्रभाव मानव-जीवन पर अवश्य ही पड़ता है, परन्तु ये सब सामाजिक परिवर्तन के निर्णायक कारण नहीं हैं।

नोट्स **मार्क्स** के अनुसार जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों (भोजन, कपड़ा, मकान, उत्पादन के उपकरण आदि) की उत्पादन-प्रणाली ही सामाजिक परिवर्तन की निर्णायक शक्ति है।

व्यक्ति को जीवित रहने के लिए भौतिक मूल्यों (वस्तुओं) की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु वह उत्पादन करता है और उत्पादन करने के लिए उसे **उत्पादक-शक्ति** की आवश्यकता होती है। साथ ही, उत्पादन के सिलसिले में वह अन्य व्यक्तियों के साथ **उत्पादन-सम्बन्ध** स्थापित करता है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन की प्रणाली उत्पादन के कुछ निश्चित सम्बन्धों (जैसे, जमींदार और किसान, स्वामी और दास, पूँजीपति और मजदूर के बीच पाए जाने वाले उत्पादन-सम्बन्ध) को उत्पन्न करती हैं। ये उत्पन्न-सम्बन्ध व्यक्ति की स्वेच्छा पर आश्रित नहीं होते, वरन् उत्पादक-शक्तियों के अनुसार अनिवार्य होते हैं। ये उत्पादन-सम्बन्ध किसी भी युग की सांस्कृतिक व्यवस्था, उसके नैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विचार एवं संस्थाओं का मुख्यत: निर्धारण करते हैं। जब समाज की उत्पादक-शक्ति में कोई परिवर्तन होता है, तो उसी के साथ-साथ उत्पादन-सम्बन्ध बदलता है और उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन होने से सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। अत: संक्षेप में यही मार्क्सवादी सामाजिक परिवर्तन की धारणा है। अब हम इस विषय में मार्क्स के विचारों की विस्तारित विवेचना करेंगे जोकि निम्नवत् हैं–

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Theory)

मार्क्स के अनुसार समस्त सामाजिक परिवर्तन उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन के फलस्वरूप होते हैं। इस उत्पादन-प्रणाली के दो पक्ष होते हैं–**पहला,** उत्पादन-शक्ति (जोकि उत्पादन के उपकरण, श्रमिक और उत्पादन-अनुभव श्रम-कौशल से मिलकर बनती है), और **दूसरा,** उत्पादन के सम्बन्ध। उत्पादन-प्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह किसी भी अवस्था में अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती, अपितु सदा परिवर्तन तथा विकास की दिशा में उन्मुख रहती है। साथ ही, उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन होने से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था, विचारों राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है, क्योंकि उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन होने से समग्र सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था का भी पुन: निर्माण अनिवार्य होता है।

उत्पादन-प्रणाली की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें परिवर्तन और विकास तभी होता है जब उत्पादक-शक्तियों में परिवर्तन व विकास होता है और इससे भी पहले उत्पादन के उपकरणों–औजार, यन्त्र आदि–में परिवर्तन व विकास होता है। इस प्रकार उत्पादक-शक्तियों में भी परिवर्तन व विकास होता है। समाज की उत्पादक-शक्तियों में परिवर्तन का परिणाम यह होता है कि इन उत्पादक-शक्तियों से सम्बन्धित और इस पर आधारित मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जाता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उत्पादन-सम्बन्ध का

नोट

कोई प्रभाव उत्पादन-शक्ति पर नहीं पड़ता है, न ही इसका यह अर्थ है कि उत्पादन-शक्ति उत्पादन-सम्बन्धों पर भी निर्भर नहीं है। यद्यपि उत्पादन-सम्बन्धों का विकास उत्पादक-शक्ति के विकास पर ही निर्भर है, फिर भी उत्पादन-सम्बन्ध भी उत्पादन-शक्ति पर अपना प्रभाव डालते ही हैं और वह इस अर्थ में कि उत्पादन-सम्बन्ध उत्पादक-शक्ति के विकास की गति को धीमी या तीव्र करते हैं। ये दोनों एक-दूसरे से एक निश्चित ढंग से जुड़े हुए हैं और इनसे जुड़ा हुआ है मनुष्य का सम्पूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन और संबंध। **मार्क्स** ने स्पष्ट ही लिखा है कि "सामाजिक संबंध उत्पादक-शक्तियों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। नई उत्पादक-शक्तियों के प्राप्त होने पर मनुष्य अपनी उत्पादन-प्रणाली बदल देते हैं। अपनी उत्पादन-प्रणाली तथा अपनी जीविका-उपार्जन की प्रणाली बदलने से वे अपने समस्त सामाजिक सम्बन्ध को परिवर्तित करते हैं। जब हाथ की चक्की थी तब सामन्तवादी समाज था; भाप से चलने वाली चक्की वह समाज बनाती है जिसमें प्रभुत्व औद्योगिक पूँजीपति का होता है।"

क्या आप जानते हैं उत्पादन-प्रणाली में ही सामाजिक परिवर्तन का रहस्य छिपा हुआ है।

उत्पादन-प्रणाली की **तीसरी** विशेषता यह है कि नवीन उत्पादन-शक्तियों तथा उनसे सम्बन्धित उत्पादन के सम्बन्धों का उद्‌भव पुरानी व्यवस्था से पृथक् या पुरानी व्यवस्था के लोप हो जाने के बाद नहीं, बल्कि पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत ही होता है। दूसरे शब्दों में, नवीन व्यवस्था का बीज पुरानी व्यवस्था में ही अन्तर्निहित या छिपा होता है। **अतः सामाजिक परिवर्तन एक अनोखी नहीं, वरन् एक स्वाभाविक घटना है;** यही प्रकृति का नियम है कि सब-कुछ अपने आन्तरिक स्वभाव द्वारा विकसित व परिवर्तित होगा। इतना ही नहीं, नवीन उत्पादन-शक्तियों का जन्म मनुष्य की विचारपूर्वक तथा सचेत-क्रिया के फलस्वरूप नहीं, बल्कि आप-से-आप या स्वतः, अचेत रूप में तथा मानव-इच्छा से स्वतन्त्र रहकर होता है। ऐसा दो कारणों से होता है—**पहला**, तो यह कि जब नवीन पीढ़ी का जन्म होता है तो वह एक विशेष प्रकार की उत्पादन शक्ति तथा उत्पादन-संबंधों को मौजूद पाता है और अपनी जीविका-उपार्जन या भौतिक मूल्यों के उत्पादन हेतु उसे उन्हीं को ग्रहण करना तथा उनसे अनुकूल करना पड़ता है। **दूसरा,** कारण यह है कि जब मनुष्य उत्पादन के किसी उपकरण को किसी उत्पादक-शक्ति को सुधारता है या नवीन आविष्कार करता है तो वह उससे होने वाले 'सामाजिक परिणामों' का अन्दाजा नहीं लगा पाता है। वह केवल इतना ही सोच पाता है कि इस सुधार के कारण अपनी जीविका-उपार्जन के लिए उसे अब कम मेहनत करनी पड़ेगी। उदाहरणार्थ, जब हाथ से चलने वाले उत्पादन के उपकरणों के स्थान पर भाप या बिजली से चलने वाली मशीनों को उत्पादन-कार्य में लगाया गया तो उस समय शायद ही किसी ने यह सोचा हो कि इस परिवर्तन का 'सामाजिक परिणाम' यह होगा कि सम्पूर्ण सामन्तवादी व्यवस्था का उद्‌भव होगा। सामाजिक परिवर्तन इसी प्रकार परिवर्तित उत्पादन-प्रणाली का एक 'सामाजिक परिणाम' होता है।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन या उत्पादन के पुराने सम्बन्धों का उत्पादन के नवीन सम्बन्धों में बदलना निर्विध्नता से, बिना किसी संघर्ष या बिना किसी उथल-पुथल के हो जाता है। इसके विपरीत, इस प्रकार का परिवर्तन साधारणतः क्रान्ति के द्वारा होता है। क्रान्ति के द्वारा पुरानी व्यवस्था या उत्पादन के सम्बन्धों को उखाड़ फेंका जाता है और उनके स्थान पर नवीन व्यवस्था या उत्पादन के सम्बन्धों को प्रतिष्ठित किया जाता है। कुछ समय तक तो उत्पादक-शक्तियों का विकास तथा उत्पादन-संबंधों में परिवर्तन स्वाभाविक गति से तथा स्वतन्त्रतापूर्वक होता रहता है, परन्तु यह तभी तक होता है जब तक कि नवीन तथा विकासोन्मुख उत्पादन-शक्ति पूर्ण रूप से परिपक्व न हो जाए। इनके परिपक्व होते ही विद्यमान उत्पादन के सम्बन्ध तथा उनके प्रवर्तन अर्थात् शासक-वर्ग के लिए एक ऐसी 'अलंघनीय' बाधा बन जाती है जिसे कि बलपूर्वक क्रान्ति के द्वारा ही हटाया जा सकता है। इसी को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार समझा सकते हैं कि जैसे ही उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन होता है, उसके फलस्वरूप एक नवीन वर्ग का जन्म होता है। यह नया वर्ग पुराने वर्ग के द्वारा उत्पीड़ित होता है क्योंकि

नोट

उत्पादन के सभी साधन उसी पुराने वर्ग के अधिकार में होते हैं। इस प्रकार पुराना वर्ग नए वर्ग की प्रगति को रोकता है और नाना प्रकार से उसका शोषण करता है। नवीन वर्ग की यह दयनीय दशा या उसका सामाजिक अस्तित्व उसमें विशिष्ट प्रकार ही चेतना को जन्म देता है। इसलिए मार्क्स ने लिखा है कि "मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, वरन् उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निश्चित करता है।" धीरे-धीरे नए वर्ग में यह चेतना दृढ़ होती जाती है कि वे बुराइयाँ, जिनके कारण उसका शोषण हो रहा है और उसकी प्रगति रुकी हुई है, पुरानी आर्थिक व्यवस्था का ही अभिन्न अंग हैं, और जब तक सम्पूर्ण पुरानी व्यवस्था या उस पुराने वर्ग को, जोकि उसका उत्तरोत्तर शोषण करता जा रहा है, समाप्त न कर दिया जाए तब तक उन बुराइयों या उत्पीड़न से छुटकारा नहीं मिल सकता। इस प्रकार पुराने वर्ग (जिसके हाथों में उत्पादन के साधन अधिकाधिक केन्द्रीकृत होते जाते हैं) और नए वर्ग (जोकि पुराने वर्ग के शोषण का उत्तरोत्तर शिकार होते जाते हैं) के बीच तनाव पनपने लगता है। धीरे-धीरे इस संघर्ष का रूप स्पष्ट हो जाता है और नया वर्ग पुराने वर्ग को क्रान्ति के द्वारा बलपूर्वक उखाड़ फेंककर एक नवीन सामाजिक व्यवस्था को जन्म देता है।

टास्क मार्क्स का सिद्धांत क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

"सामाजिक परिवर्तन या प्रगति में विचारों, सिद्धान्तों, मतों और संस्थाओं का भी स्थान होता है। ये समाज के भौतिक जीवन पर तो अवश्य आश्रित होते हैं, किन्तु इनका सामाजिक-शक्तियों को समेटने और संगठित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है। नए विचार और सिद्धान्त नई भौतिक परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं। इनके द्वारा जन-साधारण को भौतिक जीवन की त्रुटियों और आन्तरिक विरोधों का ज्ञान हो जाता है। जब ये विचार जनता की निधि बनते हैं, तो वे सामाजिक परिवर्तन के लिए अमूल्य हो जाते हैं। इनकी पृष्ठभूमि में ही जनता उन शक्तियों का विध्वंस कर सकती है जो समाज की प्रगति में बाधक हैं।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... एक अनोखी नहीं, वरन् एक स्वाभाविक घटना है।
2. जब मनुष्य उत्पादन के लिए जीवन आविष्कार करता है तो वह उससे होने वाले .... का अंदाजा नहीं लगा पाता।
3. क्रान्ति के द्वारा पुरानी व्यवस्था या उत्पादन के संबंधों को .... जाता है।

सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of Theory)

यद्यपि **मार्क्स** ने सामाजिक व्यवस्था और उसमें होने वाले परिवर्तनों का आधार उत्पादन-प्रणाली को ही माना है, फिर भी अपने लेखों तथा पत्र-व्यवहारों में उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि उनके सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं है कि आर्थिक या भौतिक कारकों के अतिरिक्त अन्य सभी कारकों को पूर्णतया गौण या व्यर्थ माना जाए। **एंगेल्स** के शब्दों में, "राजनीतिक, वैधानिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक विकास आदि आर्थिक विकास पर ही आधारित हैं। परन्तु ये सभी एक-दूसरे को और आर्थिक आधार को भी प्रभावित करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि आर्थिक प्रभाव एकमात्र कारण है और वह ही सक्रिय है, जबकि दूसरे और सभी प्रभाव निष्क्रिय हैं। वास्तव में आर्थिक आवश्यकता, जोकि अन्त में सदैव अपने महत्त्व को प्रमाणित करती है, के आधार पर विभिन्न कारकों में

नोट

अन्तक्रिया होती रहती है।" अधिक स्पष्ट रूप में एंगेल्स ने और भी लिखा है, "इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार वास्तविक जीवन में उत्पादन और पुनःउत्पादन ही अन्तिम रूप से (न कि एकमात्र) निर्णायक तत्त्व है। भौतिक प्रभाव को इससे अधिक महत्त्व न मार्क्स ने और न ही मैने प्रदान किया है। यदि कोई हमारे कथनों को तोड़-मोड़कर इस भाँति प्रस्तुत करे कि 'मार्क्स के अनुसार आर्थिक प्रभाव ही एकमात्र निर्णायक कारक है' तो ऐसा करके वह भौतिकवादी व्याख्या को अर्थहीन और हास्यास्पद बना देता है।"

12.2 सारांश (Summary)

- मार्क्स ने अपनी रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन पर व्यापक रूप से विचार किया है। उसका यह दृढ़ मत है कि सामाजिक उत्पादन शक्तियां उत्पादन सम्बन्धों को स्थापित करती है।
- नवीन शक्तियां प्राचीन के गर्भ में ही यद्यपि विकसित होती हैं, तथापि नवीन व प्राचीन में संघर्ष होना स्वाभाविक है।
- नवीन शक्तियों की प्रतिस्थापना क्रान्ति द्वारा होती है और इसी क्रांति से सामाजिक परिवर्तन होते हैं।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक परिवर्तन (Social change)**—किसी समाज के सामाजिक संगठन उसकी किन्हीं सामाजिक संस्थाओं अथवा सामाजिक भूमिकाओं के प्रतिमानों में अथवा सामाजिक प्रक्रियाओं में होने वाले किसी भी प्रकार के रूपान्तरण, बदलाव, परिष्करण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।
2. **सिद्धांत की व्याख्या (Explanation of the Theory)**—सामाजिक परिवर्तन या प्रगति में विचारों, सिद्धांतों, मतों और संस्थाओं का भी स्थान होता है।

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मार्क्स के सामाजिक परिवर्तन संबंधी सिद्धान्त की संक्षिप्त व्याख्या करें।
2. कार्ल मार्क्स के अनुसार, समाज की सांस्कृतिक सुपर संरचना का सिद्धांत क्या है?
3. मार्क्स के अनुसार, जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक मूल्य क्या हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सामाजिक परिवर्तन 2. सामाजिक परिणामों 3. उखाड़ फेंका।

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र—टी. बी. बोटोमोर।
2. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।
3. समाजशास्त्र—गुप्ता एवं शर्मा।
4. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–13 : ईमाइल दुर्खीम : बौद्धिक पृष्ठभूमि (Emile Durkheim: Intellectual Background)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 बौद्धिक पृष्ठभूमि (Intellectual Background)

13.2 सारांश (Summary)

13.3 शब्दकोश (Keywords)

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दुर्खीम के जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानना।
- दुर्खीम के विचारों पर समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव।
- दुर्खीम के सामाजिक योगदान को जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

फ्रेंच सामाजिक विचारकों में **कॉम्ट** के 'उत्तराधिकारी' के रूप में इमाइल दुर्खीम का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। सामाजिक विचारधारा के क्षेत्र में **कॉम्ट** की भाँति आपका योगदान भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है कि आप भी बहुत-कुछ प्रत्यक्षवादी थे और **कॉम्ट** की भाँति ही धार्मिक तथा तात्विक विचारधारा से बहुत दूर रहना चाहते थे। आप सदा ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जाग्रत रखने के लिए प्रति सचेत रहे और इसीलिए वैज्ञानिक पद्धतियों को ही अपने समस्त अध्ययन का आधार बनाया। आपका विश्वास था कि समाज या सामाजिक घटनाएँ इतनी सरल नहीं हैं कि उन्हें केवल मात्र कल्पना के आधार पर समझा या समझाया जा सके; इसके लिए तो वास्तविक तथ्यों का संकलन अति अनिवार्य है। साथ ही, काल्पनिक आधार पर किसी घटना की व्याख्या इधर-उधर के कारकों की सहायता से करना उचित नहीं है। समस्त सामाजिक घटनाओं का मूल कारक तो समाज स्वयं है। समाजशास्त्री का

नोट

कार्य वास्तविक प्रयोगों द्वारा प्राप्त किए गए तथ्यों के आधार पर इसी मूल कारक समाज का विश्लेषण तथा व्याख्या करना है, न कि मूल्यों के आधार पर अनुमान लगाना। परन्तु इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने बारम्बार इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि सामाजिक घटनाओं को जन्म देने में सामूहिक चेतना या समान विचार, धारणाएँ और भावनाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती हैं।

नोट्स 'सामूहिक प्रतिनिधित्व' का सिद्धांत है जिसे कि समाजशास्त्रीय विचारधारा के क्षेत्र में दुर्खीम का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत योगदान माना जाता है।

इस प्रकार दुर्खीम ने अपने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन को केवल एक सतही अध्ययन ही न रखा बल्कि प्रत्येक विषय में अत्यन्त सावधानी बरतते हुए सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन किया। आपने किसी भी विषय में अपना निश्चित मत तब तक व्यक्त नहीं किया जब तक उस विषय से सम्बन्धित समस्त वैषयिक तथ्यों की कसौटी में उसे खूब कस न लिया। उनके द्वारा प्रस्तुत 'सामाजिक श्रम विभाजन का सिद्धांत', 'धर्म का सामाजिक सिद्धांत', 'आत्महत्या का सिद्धांत' आदि के विश्लेषण से इसी सत्य का पता चलता है

13.1 बौद्धिक पृष्ठभूमि (Intellectual Background)

फ्रेंच दार्शनिक तथा समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम का जन्म सन् 1858 में फ्रांस के एपीनल में हुआ था। पेरिस में कुछ दिनों शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् दुर्खीम जर्मनी चले गए और वहीं पर उन्होंने अर्थशास्त्र; लोक मनोविज्ञान, सांस्कृति मानवशास्त्र आदि का व्यापक अध्ययन किया और अन्त में बोर्डियक्स विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उस समय उस विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **अल्फ्रेड एस्पिनास** भी प्रोफेसर थे जिनका समूह-मस्तिष्क सम्बन्धी विचार एक उल्लेखनीय सिद्धांत है और इनके इस सिद्धांत से मिलता-जुलता ही दुर्खीम का समूह-मस्तिष्क का सिद्धांत है। **दुर्खीम** ने **एस्पिनास** के सिद्धांत की विस्तृत विवेचना करके उसे परिष्कृत करने का प्रयत्न किया ताकि उसे एक बोधगम्य स्वरूप प्राप्त हो सके। इसके पश्चात् आप पेरिस विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र तथा शिक्षा के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसके पहले ही उन्हें सन् 1893 में इसी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि मिल चुकी थी। आपके थीसिस का विषय था: De la division du travail social (The Division of Labour in Society)। यही आपका सर्वप्रथम तथा एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ समझा जाता है।

क्या आप जानते हैं सन् 1898 में दुर्खीम ने L' annee sociologique नामक समाजशास्त्र सम्बन्धी एक पत्रिका प्रकाशित करनी आरम्भ की और स्वयं ही उसके सम्पादक रहे। सन् 1917 में इस असाधारण प्रतिभासम्पन्न समाजशास्त्री की मृत्यु हो गई।

दुर्खीम के प्रमुख ग्रंथ निम्न हैं: De la division du travail social (Paris, 1893), Lee regles de la methode sociologique (Paris, 1895), Le Suicide (Paris, 1897), Les formes elementaire de la vie religieuse (Paris, 1912), Education et sociologie (Paris, 1922), Sociologie et philosophy (Paris, 1924), and L' education morale (Paris, 1925)।

नोट

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है De la division du travail social दुर्खीम का सर्वप्रथम ग्रंथ था परन्तु उनकी ख्याति की यह एक दृढ़ आधारशिला थी। इस पुस्तक में सामाजिक श्रम-विभाजन का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह आर्थिक दृष्टिकोण से श्रम-विभाजन का अध्ययन नहीं, बल्कि सामाजिक परिणामों की विवेचना है। यह पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है–**प्रथम** खंड में सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित श्रम विभाजन के कार्यों तथा प्रभावों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है और **दूसरे** खंड में श्रम-विभाजन की प्रकृति तथा कारणों की विवेचना है। अत: स्पष्ट है कि इस पुस्तक की विषय-वस्तु अर्थशास्त्रीय नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय है।

इस प्रथम पुस्तक के दो वर्ष बाद ही उनकी पुस्तक Les regles de la methode sociologique (translated as The Rules of Sociological Method) प्रकाशित हुई। जैसाकि इस पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है, इस पुस्तक में दुर्खीम ने समाजशास्त्रीय पद्धतियों के नियमों को प्रतिपादित किया क्योंकि इसके बिना समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करना असम्भव होगा। इस पुस्तक में आपने बारम्बार इस बात पर बल दिया है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन-क्षेत्र से कल्पना तथा प्रातीतिक विवेचना को दृढ़ता से निकाल फेंकना चाहिए। सामाजिक घटनाओं के समस्त अध्ययन अनिवार्य रूप में वैषयिक तथ्यों पर आधारित होने चाहिएँ। समाजशास्त्र एक विज्ञान है, इस कारण उसकी उस प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए उसके अध्ययन-कार्य में वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग ही उचित है। **दुर्खीम** की यह पुस्तक इसी कारण समाजशास्त्रीय साहित्य में एक आधारभूत ग्रंथ के रूप में सम्मानित होती है।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रकाशित होने के दो वर्ष पश्चात् सन् 1897 में **दुर्खीम** की तीसरी पुस्तक Le suicide (The Suicide) प्रकाशित हुई। यह पुस्तक आत्महत्या के सम्बन्ध में अनुपम विश्लेषण तथा विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करती है। इसका उद्देश्य उन सामाजिक प्रक्रियाओं, प्रभावकों या कारकों का विश्लेषण एवं निरूपण है जिनके कारण आत्महत्या घटित होती है। इस पुस्तक में आत्महत्या से सम्बन्धित कितने ही आँकड़ों को एकत्रित करके **दुर्खीम** ने यह प्रमाणित किया है कि आत्महत्या निश्चित रूप से एक सामाजिक घटना है और सामाजिक घटना इस अर्थ में है कि आत्महत्या तभी होती है जबकि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति का सामूहिक जीवन अव्यवस्थित हो जाता है या उस पर ऐसे सामाजिक प्रभाव या दबाव क्रियाशील होते हैं जोकि उसके सामूहिक जीवन को विघटित कर देते हैं। समाज या समूह ही अधिकतर आत्महत्या का प्रमुख कारण है।

उपर्युक्त पुस्तक के प्रकाशित होने के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद सन् 1912 में दुर्खीम की एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक Le formes elementaire de la vie religieuse (translated as The Elementary Forms of Religious Life) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का उद्देश्य धर्म के एक विशुद्ध समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस पुस्तक में धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण, प्रभाव आदि की अत्यधिक विस्तृत तथा सूक्ष्म व्याख्या की गई और उसी के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि समस्त धर्म की उत्पत्ति का प्रमुख स्रोत 'समाज' ही है। 'धर्म का सामाजिक सिद्धान्त' दुर्खीम की विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

उपर्युक्त चार महान् ग्रन्थ **दुर्खीम** के जीवनकाल में ही प्रकाशित हुए थे। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नी ने उनकी कुछ अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करवाया था। दुर्खीम की मृत्यु के बाद प्रकाशित इन ग्रन्थों में विशेषत: तीन का नाम उल्लेखनीय है–Education et sociologie (1922), Sociologie et Philosophy (1924), और L' education morale (1925)। इन सब ग्रन्थों ने समाजशास्त्रीय साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है और **दुर्खीम** की असाधारण प्रतिभा का परिचय देकर आज भी अमर हैं।

टास्क वौद्धिक पृष्ठभूमि क्या है? संक्षेप में वर्णन करें।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सामाजिक घटनाओं के समस्त अध्ययन .... रूप में वैषयिक तथ्यों पर आधारित होने चाहिए।
2. .... एक विज्ञान है, इस कारण उसकी उस प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए उसके अध्ययन-कार्य में वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग ही उचित है।
3. .... से संबंधित कितने ही आँकड़ों को एकत्रित करके दुर्खीम ने यह प्रमाणित किया है कि आत्महत्या निश्चित रूप से एक सामाजिक घटना है।

13.2 सारांश (Summary)

- फ्रांस में समाजशास्त्र की नींव स्थापित करने वाला प्रथम समाजशास्त्री दुर्खीम था। उसका सम्पूर्ण जीवन बौद्धिक कार्यों में लगा रहा। तथापि उसने फ्रेंच समाज के सम्बन्ध में व्यापक रूप से कार्य किया।
- ऑगस्ट कॉम्टे के पश्चात् समाजशास्त्र के इतिहास में इमाइल दुर्खीम ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसका महत्त्व एवं प्रभाव सर्वाधिक था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि कॉम्टे ने समाजशास्त्र की नींव रखी तो दुर्खीम ने उस नींव का इस क्षेत्र में अपने वैज्ञानिक कार्यों द्वारा ठोस आधार प्रदान किया है।

13.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **बौद्धिक पृष्ठभूमि (Intellectual Background):** De La division du travail Social दुर्खीम का प्रथम ग्रंथ था। इस पुस्तक में सामाजिक श्रम-विभाजन का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। आर्थिक दृष्टिकोण से श्रम-विभाजन का अध्ययन नहीं बल्कि सामाजिक परिणामों की व्याख्या है। अतः स्पष्ट है कि विषय-वस्तु अर्थशास्त्रीय नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय है।

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दुर्खीम के विचारों को प्रभावित करने वाले विचारकों के योगदान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
2. सन् 1898 में दुर्खीम ने कौन-सी समाजशास्त्री संबंधी पत्रिका प्रकाशित की?
3. दुर्खीम का सर्वप्रथम ग्रंथ कौन-सी थी?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अनिवार्य 2. समाजशास्त्र 3. आत्महत्या।

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट–जे.एच. टर्नर।
3. सामाजिक विचारधारा–रवीन्द्र नाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–14 : समाजशास्त्र की पद्धति में योगदान–विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र-सामाजिक तथ्य की अवधारणा (Contribution in Sociological Method Sociology–as a Science, the Concept of Social Facts)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 दुर्खीम का पद्धतिशास्त्र (Methodology of Durkheim)

14.2 सामाजिक तथ्य (Social Facts)

14.3 सारांश (Summary)

14.4 शब्दकोश (Keywords)

14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दुर्खीम की अध्ययन पद्धति के बारे में जानना।
- सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की व्याख्या।
- सामाजिक तथ्य की व्याख्या।

प्रस्तावना (Introduction)

श्रम-विभाजन नामक उक्त पुस्तक के प्रकाशित होने के दो वर्ष पश्चात् सन् 1895 में दुर्खीम की दूसरी पुस्तक 'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की अवधारणा प्रतिपादित

की है। वह सामाजिक घटना को सामाजिक तथ्य कहता है। इस पुस्तक को लिखने का दुर्खीम का उद्देश्य समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान बनाना था। इसलिए उसने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया। इस ग्रंथ में दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री, क्षेत्र एवं अध्ययन पद्धति को परिभाषित किया है। दुर्खीम सामाजिक तथ्य को वस्तु के रूप में व्यक्ति से बाहर मानता है। उसने लिखा है, "प्रत्येक क्रिया का तरीका, स्थायी अथवा नहीं, व्यक्ति पर बाहरी निर्धारक तत्व की भाँति प्रभाव डालने में समर्थ है।"

14.1 दुर्खीम का पद्धतिशास्त्र (Methodology of Durkheim)

पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से समाजशास्त्र में दुर्खीम का योगदान अत्यन्त उल्लेखनीय एवं विचारणीय है। उसका इस दृष्टि से प्रमुख उद्देश्य यही रहा है कि समाजशास्त्र एक स्वतंत्र और विशिष्ट विज्ञान के रूप में प्रकट हो। इसी दृष्टिकोण से उसने अपना ध्यान इसकी पद्धति में सुधार करने पर टिका दिया। उसके विचारों का केन्द्रीय विषय यही है कि वह सामाजिक-घटना के अध्ययन पर बल देता है। दुर्खीम ने इसी दृष्टिकोण से समाजशास्त्रीय पद्धति में प्रचलित प्राणीशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणाओं की कटु आलोचना करके इनका बहिष्कार किया।

नोट्स दुर्खीम ने लिखा है कि समाजशास्त्रीय को सामाजिक-संरचनात्मक निर्णयकों के अध्ययन के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

इस प्रकार दुर्खीम ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति को अपनाया। इस पद्धति की समाजशास्त्रीय उपयोगिता के प्रति लिखते हुए दुर्खीम ने इंगित किया है, "सामाजिक घटना की परिपूर्ण व्याख्या करने के लिए प्रकार्य का निर्धारण अति आवश्यक है। सामाजिक तथ्य की व्याख्या के लिए इतना पर्याप्त नहीं है कि केवल उस कारण को प्रदर्शित कर दिया जाए, जिस पर यह टिका हुआ है। अत: हमें अधिकांश परिस्थितियों में उसके उन प्रकार्यों को इंगित करना चाहिए जो सामाजिक व्यवस्था के निर्माण से सम्बन्धित हैं।"

दुर्खीम की सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय व्यवस्था कुछ पद्धतिशास्त्रीय आधारों पर ही टिकी हुई है। इसीलिए दुर्खीम के समाजशास्त्र में हमें उसके पद्धतिशास्त्रीय सिद्धांतों की झलक मिलती है। जिसके मूल तत्व निम्न प्रकार से हैं–

1. प्रत्यक्षवाद या वैषयिकतावाद: कॉम्टे से प्रभावित होने के कारण दुर्खीम के कार्यों में पॉजिटीविज्म या प्रत्यक्षवाद की परम्परा की निरन्तरता स्पष्ट दिखाई देती है। यह उसकी पद्धतिशास्त्र में स्पष्ट दिखाई देता है। उसके अनुसार समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विज्ञान है, और वह दर्शनशास्त्र या तत्वज्ञान पर किसी भी प्रकार से आधारित नहीं है। यद्यपि दर्शनशास्त्र को तो आवश्यक तत्वों के लिए समाजशास्त्र का आश्रय लेना ही पड़ता है। दुर्खीम लिखता है कि समाजशास्त्र एक विज्ञान है। इसीलिए किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन में विश्वास, मूल्य आदि को कोई स्थान नहीं देना चाहिए। आब्जेक्टीविस्टिक या वैषयिकतावाद के समान दुर्खीम भी समाजशास्त्र में मानसिक प्रक्रियाओं को कोई स्थान नहीं देना चाहता था। उसका यह दृढ़ मत था कि वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए उन्हीं तथ्यों को लेना चाहिए जिनका पर्यवेक्षण कर अवलोकन किया जा सके। अर्थात् जो तथ्य इन्द्रियों को प्रभावित करने वाली बाह्य जगत की प्रत्यक्ष घटना हो। इस दृष्टि से दुर्खीम को पॉजिटीविस्ट एवं आब्जेक्टीविस्ट माना जाता है।

क्या आप जानते हैं चार्ल्स ने तो यहाँ तक कह दिया है कि समाजशास्त्र में आब्जेटीविस्टिक अथवा वैषयिकतावादी आंदोलन को दुर्खीम ने ही प्रारंभ किया था।

नोट

2. मनोवैज्ञानिक तत्वदार्शनिक व दर्शनशास्त्रीय समाजशास्त्र का बहिष्कार: दुर्खीम समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय अथवा समाजशास्त्रीय का प्रमुख नेता था। इस दृष्टि से समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय की सभी विशेषताएँ दुर्खीम के समाजशास्त्र में दिखाई देती है। दुर्खीम के समाजशास्त्र में कॉम्टे का प्रभाव है। कॉम्ट ने विज्ञानों का वर्गीकरण किया है। इसमें क्रमश: (क) नक्षत्र विज्ञान, (ख) भौतिकशास्त्र, (ग) रसायनशास्त्र, (घ) शरीरशास्त्र, एवं (ङ) सामाजिक भौतिक अथवा समाजशास्त्र का उल्लेख किया है। इस प्रकार इस वर्गीकरण में शरीरशास्त्र के तुरन्त बाद समाजशास्त्र को ले लिया गया है। मनोविज्ञान को विज्ञानों में सम्मिलित नहीं किया है लेकिन जे.एस. मिल तथा हर्बर्ट स्पेन्सर जैसे कुछ विद्वानों ने इसका विरोध किया है। उन्होंने बताया है कि मनोविज्ञान को प्राणीशास्त्र के बाद में तथा समाजशास्त्र के पूर्व रखना चाहिए। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय का यह आधार है। इस सम्प्रदाय ने समाजशास्त्र को मनोविज्ञान पर आधारित बनाया है। उनके अनुसार सामाजिक घटना का एक मनोवैज्ञानिक घटना के द्वारा विश्लेषण करने पर बल दिया जाना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय के अनुयायी यह भी बताते हैं कि सामाजिक घटना की उत्पत्ति व्यक्ति की क्रियाओं से होती है। वे इसे स्वीकार नहीं करते कि व्यक्ति की क्रियाएँ सामाजिक वास्तविकता अथवा समाज का परिणाम है। लेकिन अपने समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय के द्वारा दुर्खीम ने कॉम्टे के वर्गीकरण को ही उपयुक्त माना है। उनके अनुसार समाजशास्त्र को प्राणीशास्त्र के तुरन्त बाद में आना चाहिए। मनोविज्ञान तत्वज्ञान और दर्शन को समाजशास्त्र का आधार बनाना तर्कसंगत नहीं है। उसने इसी आधार पर बताया कि मनोवैज्ञानिक घटना का विश्लेषण सामाजिक घटना के द्वारा ही हो सकता है। दुर्खीम के समाजशास्त्र का भी यही आधार है। वह मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र का कट्टर विरोधी था।

दुर्खीम के अनुसार, समाज या सामाजिक वास्तविकता, समाज को बनाने वाले व्यक्तियों से सर्वथा भिन्न है। ऐसी स्थिति मे सामाजिक तथ्यों को मनोवैज्ञानिक नियमों पर कैसे घटाया जा सकता है। दुर्खीम व्यक्ति को सत्ता को गौण मानता है। वह समाज को सत्ता पर बल देता है। उसके अनुसार व्यक्ति की क्रियाएँ समूह अथवा सामाजिक मस्तिष्क द्वारा संचालित होती है। इस प्रकार वह समाज के एक तरफा प्रभाव पर बल देता है। दुर्खीम ने समाज अथवा सामाजिक दशाओं को मानव की सभी क्रियाओं का कारण माना है।

3. सामाजिक तथ्य का अध्ययन: दुर्खीम समाजशास्त्र का संस्थापक विचारक था। उसने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री को भी निश्चित करने का प्रयास किया। इस दृष्टि से उसने इस शास्त्र की स्वतंत्रता और विशिष्टता बनाये रखने पर जोर दिया। इसी उद्देश्य से उसने सामाजिक तथ्य की अवधारणा का सूत्रपात किया। उसने अपने ग्रंथों में और विशेष रूप से उसकी रचना 'समाजशास्त्री पद्धति के नियमों' में समाजशास्त्र की विषय-सामग्री सामाजिक तथ्य ही निर्धारित की है। इस सम्बन्ध में विवेचन करते हुए वह लिखता है, "सामाजिक तथ्यों के अध्ययन की पद्धति के सम्बन्ध में विचार करने से पहले यह जान लेना अनिवार्य है कि किन तथ्यों को साधारणत: सामाजिक कहा जाता है। उसने आगे लिखा है कि समाज से सम्बन्धित सभी घटनाएँ और तथ्य समाजशास्त्र की विषय-वस्तु नहीं है। यदि इन सभी तथ्यों को सामाजिक मान लिया जाए तो समाजशास्त्र की पृथक् अपनी कोई विषय-सामग्री नहीं होगी।"

4. कार्य-कारण का नियम: दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र की एक प्रमुखता यह है कि उसने कार्य कारण विश्लेषण पर बहुत अधिक जोर दिया है। उसने लिखा है—तत्वज्ञानियों द्वारा विकसित और विभाजित उपकल्पनाओं की समाजशास्त्र को कोई आवश्यकता नहीं है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में निर्णयवाद की प्रकृति घातक है। उसने लिखा है कि सामाजिक घटना के कारण शास्त्र के विश्लेषण पद्धति के सिद्धांत को अपनाने की मंत्रणा दी है। कार्य-कारण सिद्धांत की उपयोगिता पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा है, "जबकि कार्य-कारण सिद्धांत की प्रकृति के अन्य क्षेत्रों में प्रामाणिकता सिद्ध हो गई और जबकि इस सिद्धांत का अधिकार भौतिक रासयनिक विश्व से लेकर प्राणीशास्त्रीय तक

नोट

तथा आगे मनोवैज्ञानिक तक प्रगतिशीलता से विकसित हो गया है, तो हम इसे सामाजिक संसार के लिए भी समान रूप से उपयोगी मानने की माँग कर रहे हैं।"

5. प्रयोगिक समाजशास्त्र: दुर्खीम के प्रत्यक्षवाद की रोचक झलक हमें उस समय मिलती है जबकि उसके पद्धतिशास्त्र के विश्लेषण के हेतु प्रायोगिक समाजशास्त्र की योजना पर दृष्टिपात करते हैं। उसका दृष्टिकोण था कि समाजशास्त्र को अपना महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक योगदान करना चाहिए। उसने अपने शोध में लिखा है कि यदि हमारा उद्देश्य केवल कल्पनात्मक पक्ष तक ही सीमित है तो हमें अपने वैज्ञानिक परिश्रम को सफल नहीं समझना चाहिए। इस दृष्टि से उसने प्रायोगिक समाजशास्त्र की रूपरेखा तैयार की। उसने बताया कि इस विज्ञान का उद्देश्य सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत करना ही नहीं होगा, बल्कि वह यह भी बतायेगा कि समाज को किन-किन उद्देश्यों की प्राप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार यह शास्त्र उद्देश्यों के चुनाव के साथ-साथ उसकी प्राप्ति के प्रयत्न से भी सम्बन्धित होगा। उद्देश्यों के चुनाव के लिए दुर्खीम ने बताया कि यह कार्य समाज के वैज्ञानिक अवलोकन के आधार पर करना होगा।

6. सामान्य और व्याधिशास्त्रीय: दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र की एक और यह विशेषता थी कि उसने सामान्य व व्याधिशास्त्रीय तथ्यों में अन्तर किया है। दुर्खीम ने बताया है कि सामाजिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक व्याधि का यदि एक कर्म विषयक आधार प्राप्त हो जाता है तो प्रायोगिक समाजशास्त्र का कार्य सरल बन जाता है। इसका कर्म विषयक आधार प्राप्त होने पर सामाजिक विज्ञान सामाजिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए समाजशास्त्र के नियमों को उसी प्रकार लागू कर सकेंगे। जिस प्रकार औषधशास्त्र व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए शरीरशास्त्र के नियमों को लागू करता है। इसके लिए दुर्खीम ने स्वास्थ्य का माप सामान्यता माना है और इस सामान्यता के आधार के रूप में साधारण स्थिति को लिया है। इसी को समझाते हुए दुर्खीम ने लिखा है "सामाजिक रूप से स्वस्थ वह है जो सामान्य है और सामान्य प्रकार औसत प्रकार के समान है। इस स्तर से प्रत्येक विचलन एक व्याधियुक्त घटना है।"

लेकिन इस मापदण्ड को लागू करने से कई विरोधी बातें सामने आती हैं। उदाहरणार्थ, किसी या अधिकतर समाजों में अपराध पाया जाता है तो उसे सामान्य समझना चाहिए और उसे सामाजिक स्वास्थ्य की संज्ञा दी जानी चाहिए। इसी प्रकार कुछ बातें तो पाश्चात्य समाजों में पिछली शताब्दी में सामान्य थीं, उनको दुर्खीम ने व्याधिशास्त्रीय स्थिति बताया है, जैसे आत्महत्याओं में वृद्धि, आत्महत्या के प्रति नैतिक विचारों में कमजोरी एवं आर्थिक अव्यवस्थान आदि। इस प्रकार इस आधार से दुर्खीम एक उलझन में पड़ गया दिखाई देता है।

पद्धतिशास्त्र की इन्हीं बातों का उपयोग हमें दुर्खीम के समाजशास्त्र में देखने को मिलता है। दुर्खीम का समाजशास्त्र एवं उसके सभी सिद्धांत उसका पद्धतिशास्त्रीय आधार लिए हुए हैं। उसका सारा समाजशास्त्र एक ही नींव पर आधारित है। संक्षेप में हम दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र का महत्त्व निम्न आधारों में वर्णित कर सकते हैं–

1. दुर्खीम के पद्धतिशास्त्र की प्रथम महत्ता यह है कि उसने दर्शन, तत्वज्ञान, धर्म और मनोविज्ञान भिन्न और विशिष्ट पद्धति का सृजन किया है। दुर्खीम ने समाजशास्त्र पर पड़ी दर्शन की छाया को हटाकर इसे अनुभव-आश्रित विज्ञान की दिशा में स्थापित किया है। दुर्खीम विशिष्ट समाजशास्त्र का समर्थक था। इसलिए उसने प्रत्यक्षवादी, उद्‌विकासीय और आदर्शवादी विचारों की टीका की। उसने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है, "जब उसे केवल समाजशास्त्र कहकर संतोष लेना चाहिए।"

2. पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से दुर्खीम ने यह भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने कार्य-कारण सिद्धांत पर अधिक जोर दिया है। यह सिद्धांत विज्ञान की कसौटी कहा जा सकता है। इस दृष्टि से दुर्खीम ने तत्वज्ञानी उपकल्पनाओं के आधार को त्याग की मंत्रणा दी है। विभिन्न अध्ययनों का संदर्भ खोजकर उसने इस सिद्धांत को समाजशास्त्र के लिए उपयोगी माना है।

नोट

3. दुर्खीम का यह दृढ़ मत था कि समाजशास्त्र को एक विशिष्ट विज्ञान होना चाहिए। इस दृष्टि से उसने बताया है कि यदि समाजशास्त्र का कार्य दर्शनशास्त्र के अद्भुत तत्वों के आधार पर प्रकट किया जायेगा तो इसका कोई नया योगदान नहीं होगा। इस संबंध में स्पष्टीकरण करते हुए दुर्खीम लिखता है कि हमें सामाजिक तथ्यों के सामान्य लक्षणों का बहिष्कार करके उनका विस्तृत विश्लेषण करना चाहिए। वह लिखता है, "इस प्रकार, समाजशास्त्र विशिष्ट बन जाता है, यह दर्शनशास्त्रीय प्रतिच्छाया को विकसित करने के लिए अधिक मौलिक सामग्री प्रदान करेगा।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ········ की इन्हीं बातों का उपयोग हमें दुर्खीम के समाजशास्त्र से देखने को मिलता है।
2. कुछ बातें तो पाश्चात्य समाजों में पिछली शताब्दी में सामान्य थी, उनको दुर्खीम ने ········ स्थिति बताया है।
3. दुर्खीम के ········ प्रथम महत्ता यह है कि उसने दर्शन, तत्वज्ञान, धर्म और मनोविज्ञान भिन्न और विशिष्ट पद्धति का सृजन किया है।

14.2 सामाजिक तथ्य (Social Facts)

'समाजशास्त्री पद्धति के नियम' दुर्खीम की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जो सन् 1895 में प्रकाशित हुई। जिस समय इस पुस्तक की रचना हुई, उस समय समाजशास्त्र एक नवोदित विषय के रूप में स्थापित हो रहा था। दुर्खीम ने यह बात महसूस की थी कि समाजशास्त्र एक पृथक् विज्ञान के रूप में तब तक स्थापित नहीं किया जा सकता जब तक कि इसकी एक विशिष्ट अध्ययन वस्तु और उसके अन्वेषण के लिए एक व्यवस्थित अध्ययन पद्धति विकसित न हो। इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दुर्खीम ने इस पुस्तक की रचना की। उसने समाजशास्त्र को मनोविज्ञान और जीवनशास्त्र से मुक्त करके उसे एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया तथा सामूहिक चेतना तथा सामूहिक सम्मिलन से उत्पन्न एक स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के रूप में स्थापित किया। इस सामाजिक वास्तविकता का अध्ययन मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक पद्धति से नहीं हो सकता वरन् इसके लिए एक वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता है और यह वैज्ञानिक पद्धति प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति हो सकती है।

'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' ग्रंथ के छह अध्याय हैं। **प्रथम अध्याय** में दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-सामग्री एवं अनुसंधान की समस्या के रूप में सामाजिक तथ्य की परिभाषा और उसके लक्षणों की व्याख्या की है। **दूसरे अध्याय** में सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक और वैषयिक अवलोकन के नियम निर्धारित किये हैं। **तीसरे अध्याय** में सामान्य तथा व्याधिकीय तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। **चतुर्थ अध्याय** में सामाजिक तथ्यों के वर्गीकरण के नियमों की व्याख्या की गयी है। **पाँचवें अध्याय** में सामाजिक तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की गयी है। **छठा अध्याय** निर्वाचन तथा सामान्यीकरण की प्रणालियों से सम्बन्धित है तथा अन्तिम अध्याय में दुर्खीम ने अपने सम्पूर्ण विवेचन का संक्षिप्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। हम यहाँ सामाजिक तथ्य पर दुर्खीम के विचारों का उल्लेख करेंगे।

सामाजिक तथ्य क्या है? (What is a Social Fact?)

दुर्खीम ने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के रूप में सामाजिक तथ्यों की विवेचना की है। सामाजिक तथ्य वे तथ्य हैं जो सामूहिक चेतना से सम्बन्धित हों और जो व्यक्तिगत चेतना से स्वतंत्र हों। सामाजिक तथ्यों के दबाव से ही व्यक्ति एवं समूह व्यवहार करते हैं। सामाजिक तथ्यों को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं, "सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार, अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप से सम्भव है और जो एक विशेष ढंग

नोट

से व्यवहार करने को बाध्य करता है।" एक अन्य स्थान पर दुर्खीम लिखते हैं, "सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने एवं अनुभव करने के वे तरीके हैं, जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाये रखने की उल्लेखनीय विशेषता होती है।" समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम पुस्तक के प्रथम अध्याय की अन्तिम पंक्तियों में सामाजिक तथ्यों को विस्तृत रूप में समझाते हुए दुर्खीम लिखते हैं, "सामाजिक तथ्य क्रिया करने का एक स्थायी अथवा अस्थायी तरीका है जो व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालने में समर्थ होता है अथवा पुन: क्रिया करने का एक तरीका है जो किसी समाज में सामान्य रूप से पाया जाता है, किन्तु साथ ही साथ जो व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वंतत्र पृथक् अस्तित्व रखता है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य क्रिया करने अथवा व्यवहार के तरीके हैं। इन क्रिया करने के तरीकों में दुर्खीम मानव के सोचने-विचारने और अनुभव करने के तरीकों को सम्मिलित करता है जो स्थायी अथवा अस्थायी हो सकते हैं। कुछ सामाजिक तथ्य स्थायी होते हैं। उदाहरणार्थ, आत्महत्या, विवाह एवं मृत्यु की संख्या में किसी भी समाज में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता है, अत: इनकी वार्षिक दर लगभग स्थायी एवं स्थिर रहती है। इसलिए इन्हें सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में रखा जाता है। निवास करने के तरीकों को भी क्रिया करने का तरीका माना गया है। नगरों में जनघनत्व में वृद्धि, मकान बनाने के तरीके, रहन-सहन, खान-पान और जीवन व्यतीत करने के तरीकों को भी सामाजिक तथ्य माना गया है क्योंकि इनमें भी परिवर्तन बहुत कम होते हैं। इसी प्रकार से स्थायी और अस्थायी तरीके जो मनुष्यों की क्रियाओं, विचारों और जीवन पद्धतियों को निर्देशित करते हैं, सामाजिक तथ्य कहलाते हैं। समूह में प्रचलित विश्वास, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, आदर्श, नैतिकता, मान्यताएँ तथा कार्य करने के तरीके भी सामाजिक तथ्य हैं क्योंकि इनमें भी परिवर्तन बहुत कम आते हैं और ये किसी व्यक्ति विशेष की नहीं वरन् सम्पूर्ण समूह की सम्पत्ति माने जाते हैं।

टास्क सामाजिक तथ्य क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

सामाजिक तथ्यों की विशेषताएँ (Characteristics of Social Facts)

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है—बाह्यता तथा बाध्यता। सामाजिक तथ्यों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इन दोनों विशेषताओं तथा तीन अन्य विशेषताओं को समझना आवश्यक है।

1. सामाजिक तथ्य काम करने, सोचने, या अनुभव करने के तरीके हैं (Ways of acting, thinking and feeling are Social Facts): सामाजिक तथ्यों की दुर्खीम द्वारा दी गयी परिभाषा से स्पष्ट है कि सामाजिक तथ्य समाज अथवा समूह में काम करने, सोचने और अनुभव करने के तरीके हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति अपने विवाह के बारे में सोचता है तब वह यह भी सोचता है कि विवाह साथी का चुनाव उसके परिवार, वर्ग, जाति, शिक्षा, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति आदि के अनुरूप हो। उसके इस सोच पर भी सामाजिक दबाव है। अत: यह सोच सामाजिक तथ्य है। हमारे व्यवहार और सोच-विचार समाज की देन हैं, समाज ही इनकी उत्पत्ति का स्रोत है। हम समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज में विभिन्न प्रकार से व्यवहार करना सीखते हैं। किस चीज को उचित या अनुचित, अच्छा या बुरा समझा जायेगा, यह सब हमें समाज ही बताता है। किस अवसर पर हम किस प्रकार का व्यवहार, कार्य एवं आचरण करेंगे, यह भी समाज ही बताता है, समाज के नियम, प्रथाएँ, परम्पराएँ आदि सभी हमारे आचरण को नियमित एवं नियंत्रित करते हैं। इसलिए ही ये सभी सामाजिक तथ्य कहलाते हैं। सामाजिक तथ्य का प्रभाव व्यक्ति पर इतना अधिक होता है कि उसकी सम्पूर्ण अनुभूति भी सामाजिक तथ्यों के अन्तर्गत आ जाती है। व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर सामाजिक तथ्यों का प्रभाव पाया जाता है।

नोट

2. सार्वभौमिकता (Universality): सामाजिक तथ्य सार्वभौमिक होते हैं अर्थात् उनका प्रचलन सारे समूह और समाज में पाया जाता है, सभी उन्हें एक ही अर्थ में समझते हैं और पालन करते हैं। सामाजिक तथ्यों में केवल उन्हीं तरीकों को सम्मिलित किया जाता है जो सम्पूर्ण समाज में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

3. सामाजिक उत्पत्ति (Social origin): सामाजिक तथ्य व्यक्ति की व्यक्तिगत चेतना की उपज नहीं वरन् वे सामूहिक चेतना के परिणाम हैं। इनकी उत्पत्ति समाज में होती है, समाज से होती है तथा इनका विकास समाज के इतिहास में जुड़ा हुआ है। जैसा समाज होगा वैसा उसका मिजाज होगा, उसी के अनुरूप उसके सामाजिक तथ्य होंगे। भारत में स्त्रियाँ घूंघट निकालती हैं, यूरोपीय समाज में नहीं। अभिवादन के लिए हम हाथ मिलाते हैं, गले लगते हैं, पांव छूते हैं, नमस्कार, जय रामजी, जय श्रीकृष्ण, गुड् मॉर्निंग आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये सभी सामाजिक तथ्य हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज की देन है। समाज में बार-बार दोहराये जाने के कारण वे स्थायी हो जाते हैं। इस स्थायित्व के कारण ही इनमें तीव्र गति से परिवर्तन नहीं होता।

4. सामाजिक तथ्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित किये जाते हैं (Social facts are transmitted from generation to generation): सामाजिक तथ्य समाजीकरण के माध्यम से सीखे जाते हैं, पुरानी पीढ़ी इन्हें नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है। दीपावली, होली, रक्षाबंधन, रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी आदि त्यौहारों को कैसे मनाया जायेगा, इस दिन घर में भोजन क्या बनेगा, किस प्रकार के वस्त्र पहने जायेंगे आदि सभी बातें व्यक्ति परिवार एवं समाज से ग्रहण करता है और धीरे-धीरे वे सभी उसके जीवन के अंग बन जाते हैं, उसकी आदतें एवं व्यवहार में सम्मिलित हो जाते हैं। वह भी इन्हें आने वाली नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है। इस प्रकार सामाजिक तथ्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित किये जाते हैं।

5. सामाजिक तथ्य सीखे जाते हैं (Social facts are Learned): सामाजिक तथ्य चूँकि समाज की उपज हैं अत: समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखे जाते हैं, ये हमें वंशानुक्रमण, शारीरिक लक्षणों जैसे कालापन, गोरापन, आँख, नाक, कान एवं बालों की बनावट आदि की तरह माता-पिता से प्राप्त नहीं होते। शिक्षा समाजीकरण का एक सशक्त साधन है, औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक तथ्यों को सीखता है। परिवार के लोग व्यक्ति को यह सिखाते हैं कि उसे अभिवादन कैसे करना चाहिए और वस्त्र कैसे पहनना चाहिए तो शिक्षण संस्थाएँ हमें समाज के कानूनों, विश्वासों आदि का ज्ञान करवाती हैं। सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना, सामूहिक प्रतिनिधित्व के रूप में समाज में मौजूद होते हैं जिन्हें व्यक्ति सीखता है। केवल वे सीखे हुए व्यवहार ही जो किसी समूह या समाज के सदस्यों द्वारा स्वीकृत और मान्य होते हैं, सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में आते हैं।

6. सामाजिक तथ्य अधिवैयक्तिक होते हैं (Social facts are super-individual): सामाजिक तथ्यों का प्रदर्शन एवं प्रकटीकरण यद्यपि व्यक्ति की क्रियाओं में ही होता है किन्तु इनका अस्तित्व व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र होता है। नैतिक नियम, धार्मिक और राजनीतिक विश्वास विभिन्न संस्थाओं में प्रचलित मान्यताएँ आदि किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रयोग किये जाने वाले तथ्य हैं किन्तु कोई भी वैयक्तिक क्रिया उन्हें पूर्णरूप से उत्पन्न नहीं कर सकती। सामाजिक तथ्यों की उत्पत्ति सामूहिक चेतना के द्वारा होती है, अत: ये किसी एक व्यक्ति के नहीं होते वरन् सम्पूर्ण समाज के होते हैं। दुर्खीम इन्हें **सामाजिक धाराएँ** (Social Currents) कहता है। समय-समय पर ये धाराएँ व्यक्ति को विशेष प्रकार का आचरण करने की प्रेरणा देती हैं। सामाजिक तथ्य एक स्वतंत्र शक्ति है जो व्यक्ति व्यवहारों में प्रकट होती है। यह शक्ति समूह की देन है। प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ आदि जो कि सामाजिक तथ्य हैं किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं है, वरन् सम्पूर्ण समूह की उपज हैं। इनका निर्माण विकास परिमार्जन, संशोधन एवं परिवर्तन किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं वरन् समूह या समाज के द्वारा होता है। इसी रूप में सामाजिक तथ्य अधिवैयक्तिक हैं, व्यक्ति की क्षमता व शक्ति से परे और सामाजिक हैं।

7. बाह्यता (Exteriority): सामाजिक तथ्य की एक विशेषता यह है कि ये समाज वैज्ञानिक के व्यक्तिगत विचार, व्यक्तिगत व्यक्ति चेतना और अधिकार क्षेत्र से बाहर होते हैं। इन पर व्यक्ति विशेष के विचारों या क्रिया का प्रभाव

नोट

नहीं पड़ता क्योंकि इनका अस्तित्व व्यक्ति से स्वतंत्र होता है। सामाजिक तथ्यों की उत्पत्ति सामूहिक चेतना से होती है, इसलिए ये व्यक्तिगत तथ्यों से पृथक् एवं भिन्न होते हैं। जिस प्रकार पर पानी, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर बनता है फिर भी पानी न तो हाइड्रोजन है और न ऑक्सीजन। पानी इन दोनों से अपना पृथक् और स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। सामाजिक तथ्यों का निर्माण भी समूह के सदस्यों की सामूहिक एवं पारस्परिक अन्त:क्रिया के परिणामस्वरूप होता है, किन्तु उनका अस्तित्व व्यक्तिगत तथ्यों से स्वतंत्र होता है। जैसे मनुष्य के मन में विचारों का जन्म विभिन्न कोष्ठों (cells) की पारस्परिक अन्त:क्रिया के कारण होता है, उसी प्रकार से विभिन्न व्यक्तियों की अन्त:क्रिया के कारण सामूहिक चेतना एवं सामूहिक विचारों का जन्म होता है फिर भी उनका अस्तित्व व्यक्ति विशेष की चेतना से बाहर और पृथक् होता है। वे किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होते। सोचने, विचारने, अनुभव करने एवं कार्य करने के तरीके समाज में पहले से ही विद्यमान होते हैं। धार्मिक विचार और विश्वास प्रथाएँ, नियम, नैतिकता आदि सामूहिक चेतना की ही उपज होते हैं, अत: व्यक्ति की शक्ति और अधिकार से परे होते हैं। इसलिए इन्हें सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में गिना जाता है। सामाजिक तथ्यों पर वैज्ञानिक के व्यक्तिगत विचारों का प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए वे व्यक्ति के नियंत्रण से स्वतंत्र होते हैं।

8. बाध्यता (Constraint): सामाजिक तथ्यों की एक विशेषता यह है कि इनका पालन व्यक्ति के लिए बाध्यतामूलक होता है। क्योंकि इनकी उत्पत्ति व्यक्तिगत चेतना से नहीं होती वरन् ये सामूहिक चेतना के परिणाम होते हैं, अत: व्यक्ति के लिए दबावकारी होते हैं। व्यक्ति से बाहर की वस्तु होने के कारण ही ये व्यक्ति पर एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए दबाव डालते हैं। सामाजिक तथ्यों के पीछे समाज एवं समूह की शक्ति होती है। इस शक्ति के प्रभाव एवं दबाव के कारण ही व्यक्ति उसी प्रकार का आचरण करता है जैसा समाज चाहता व निर्देश देता है। सामाजिक दबाव या शक्ति व्यक्ति से बाहर की वस्तु और व्यक्ति से श्रेष्ठ होती है, अत: व्यक्ति उसके सामने नतमस्तक होता है, झुकता है, समाज के नियमों और आदेशों को शिरोधार्य करता है। समाज की इस शक्ति का पता सामान्य जीवन और सामान्य स्थिति में नहीं लगता वरन् उस समय लगता है जब हम उसका विरोध करते हैं, उसे नकारते हैं, या उसका उल्लंघन करते हैं। तभी समाज का रोष प्रकट होता है तथा वह दण्ड की व्यवस्था करता है। दण्ड सामाजिक तथ्यों के विरोध का परिणाम ही है।

दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की बाह्यता और बाध्यता को प्रकट करने के लिए अनेक उदाहरण दिये हैं। दुर्खीम ने व्यक्तिगत और सामूहिक मस्तिष्क में भेद किया है। राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना व्यक्तिगत भावना से प्रबल होती है।

व्यक्तिगत भावना के आधार पर बलिदान करने वाले व्यक्तियों की संख्या राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर बलिदान करने वालों से कम होती है। व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों, मनोभावों एवं क्रियाओं में शीघ्र ही परिवर्तन आ जाते हैं, किन्तु सामाजिक तथ्यों में परिवर्तन बहुत कम होते हैं। यहीं कारण है कि किसी देश में आत्महत्या, विवाह और मृत्यु-दर में वार्षिक घटत-बढ़त बहुत कम ही होती है।

दुर्खीम के अनुसार नैतिकता एक सामाजिक तथ्य है और सामूहिक चेतना इसके उल्लंघन पर नियंत्रण लगाती है। नैतिकता के उल्लंघन पर समाज दण्ड की व्यवस्था भी करता है, चाहे वह अधिक कठोर नहीं हो। समाज के कानून, प्रथाएँ, परिपाटियाँ सामाजिक तथ्य हैं। यदि हम इसका विरोध करते हैं, अवमानना करते हैं तो हमें दबाव महसूस होता है, समाज हमें ऐसा करने से रोकता है, हमसे क्षति हो गयी हो तो समाज हमसे क्षतिपूर्ति की माँग करता है। और यदि पूर्ति सम्भव न हो तो समाज इसके लिए दण्ड देता है। दुर्खीम कहता है कि यदि मैं समाज की परिपाटियों को स्वीकार नहीं करता हूँ, अपनी वेशभूषा, अपने देश तथा वर्ग के प्रचलित रीति रिवाजों को नहीं मानता हूँ तो जिस उपहास का पात्र मुझे बनाया जाता है, जिस प्रकार समाज से मुझे पृथक् रखा जाता है......यह दबाव अप्रत्यक्ष होते हुए भी प्रभावपूर्ण होता है। मेरे लिए यह आवश्यक नहीं है कि मैं अपने देशवासी से फ्रांसीसी भाषा में ही बात करूँ या प्रचलित मुद्रा का प्रयोग करूँ, किन्तु तो भी इसके विपरीत कार्य करना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।.....एक उद्योग

नोट

के रूप में, मैं गत शताब्दियों की तकनीकी पद्धतियों को अपनाने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र हूँ, तथापि मैं ऐसा करने पर निश्चित रूप से अपनी बरबादी आमंत्रित करूँगा। यदि मैं इन नियमों से अपने आपको स्वतंत्र कर भी लेता हूँ तथा सफलता से उसका उल्लंघन करता हूँ तो भी मैं सर्वदा इसमें संघर्ष करने के लिए बाध्य किया जाता हूँ। अन्त में निष्प्रभावित होकर भी वे अपने दबाव का अपने प्रतिरोध द्वारा हमें अनुभव करा देते हैं। सभी नवोन्मेषकर्ताओं (आविष्कारकों) के उपक्रम को सफलता प्राप्त लोगों सहित, इस प्रकार के प्रतिरोध को सहना पड़ता है।"

दुर्खीम कहता है कि सामाजिक तथ्यों की 'बाध्यता' को कई बार प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं सकते, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे बाध्यकारी होते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने समाजीकरण और शिक्षा का उदाहरण दिया है। समाजीकरण और शिक्षा के द्वारा हम बच्चे पर कार्य करने, अनुभव करने, देखने और विचार करने के तरीकों को थोपते ही तो हैं। प्रारंभ से ही बच्चे को हम नियमित समय पर खाना पीना, सोना-बैठना सिखाते हैं, उसे बाध्य करते हैं। हम उसे स्वच्छता, शान्ति तथा आज्ञाकारिता के लिए बाध्य करते हैं। हम उसे दूसरों के प्रति अच्छे विचार रखने, परम्पराओं, नियमों, रीति-रिवाजों आदि का सम्मान करना सिखाते हैं और काम करने की आवश्यकता आदि समझाते हैं। इन सब प्रतिबंधों की बाध्यता अनुभव होने का कारण यह है कि यह बाध्यता धीरे-धीरे आदतों में बदल जाती है। शिक्षा का उद्देश्य भी समाजीकरण करना है।

समाजीकरण के द्वारा बच्चे पर निरन्तर यह दबाव पड़ता है कि वह समाज के अनुकूल बने और माता-पिता तथा शिक्षक इस प्रक्रिया के प्रतिनिधि एवं मध्यस्थ होते हैं। इस प्रकार दुर्खीम सामाजिक तथ्यों में दबाव को एक आवश्यक तत्व मानते हैं, चाहे यह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। वे लिखते हैं, "एक सामाजिक तथ्य बाह्य दबाव की शक्ति से पहचाना जाता है। जिसका प्रयोग यह व्यक्ति पर करता है अथवा व्यक्तियों में प्रयोग कर सकने के योग्य है और इस शक्ति की उपस्थिति उसके लिए विशिष्ट अनुमति से या इसका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के प्रतिरोध से जानी जाती है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की है। ये सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र की विषय-वस्तु हैं। यदि समाजशास्त्र को मनोविज्ञान और जीवशास्त्र के चुंगल से मुक्त करना है तो निश्चय ही इसे अपने को सामाजिक तथ्यों के अध्ययन तक सीमित करना होगा।

सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम (Rules for the Observation of Social Facts)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक **'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम'** के दूसरे अध्याय मे उन नियमों का उल्लेख किया है, जिनके द्वारा सामाजिक तथ्यों का अवलोकन किया जा सके, उन्हें देखा एवं समझा जा सके। सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए दुर्खीम वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग पर बल देते हैं। समाजशास्त्र को एक व्यवस्थित और वास्तविक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए दुर्खीम प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति को अपनाना आवश्यक मानते हैं। सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन के लिए हमें निष्पक्ष और तटस्थ होकर उनका अध्ययन करना होगा जैसाकि प्राकृतिक विज्ञानों में किया जाता है। सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में अध्ययनकर्ता के स्वयं व्यक्तिगत विचारों, राग-द्वेष आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक, तटस्थ और निष्पक्ष अध्ययन कैसे किया जाए, इसके लिए दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के कुछ नियमों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित हैं–

1. सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में समझना चाहिए (Consider Social facts as things): सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन का पहला नियम यह है कि प्रत्येक सामाजिक तथ्य को एक पृथक् वस्तु के रूप में देखा जाए। दुर्खीम वस्तु और विचार में भेद करता है। विचार-अमूर्त और परोक्ष तथ्य है जबकि वस्तु एक प्रत्यक्ष तथ्य है। जो प्रत्यक्ष है उसमें अध्ययनकर्ता अपनी इच्छा से कोई परिवर्तन नहीं कर सकता जबकि परोक्ष तथ्य भाव-प्रधान होते हैं। वैषयिक दृष्टि ही वैज्ञानिक अवलोकन का आधार हो सकती है। जब तक हम सामाजिक तथ्यों

को एक बाहरी वस्तु समझकर उसका प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं करेंगे तब तक उनकी वास्तविकता प्रकट नहीं होगी क्योंकि हमारे पूर्व निर्णय और हमारी पूर्व-धारणाएँ हमारे वैज्ञानिक अध्ययन में बाधक होते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए सामाजिक तथ्यों को भी भौतिक तथ्यों की भाँति एक बाहरी घटना समझा जाए। वस्तुएँ स्वत: स्पष्ट होती हैं, वे हमारे समाने स्वयं अपने स्वरूप को प्रकट करती हैं। हमारी भावनाएँ तथा पूर्व-धारणाएँ उनके वास्तविक स्वरूप को प्रभावित नहीं कर सकतीं। इसीलिए सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए दुर्खीम उन्हें वस्तुओं के रूप में मानने पर जोर देता है। वस्तु को परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखता है, "वह सब जो स्वत: स्पष्ट है, वह सब जो देखा जा सकता है, एक वस्तु की विशेषता रखता है।" वस्तु एक वैषयिक (Objective) तथ्य है और सामाजिक घटनाएँ वस्तुएँ हैं। सामाजिक घटनाओं को वस्तुओं के रूप में तभी समझा जा सकता है जब हम उन्हें मनोवैज्ञानिक तथ्यों से पृथक् समझें। सामाजिक तथ्यों में यह गुण पाया जाता है कि वे व्यक्तिगत चेतना का फल नहीं होते अत: वे व्यक्ति के नियंत्रण से परे हैं। वस्तुओं की भाँति सामाजिक तथ्यों में भी हम अपनी इच्छानुसार संशोधन और परिवर्तन नहीं कर सकते। संक्षेप में, दुर्खीम यह मानते हैं कि सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत चेतना से परे और स्वतंत्र होने एवं व्यक्ति पर नियंत्रण रखने के कारण वस्तुओं के रूप में समझे जा सकते हैं।

2. सभी पूर्व-मान्यताओं का उन्मूलन (Eradication of all Preconceptions): दुर्खीम के विचार में वैज्ञानिक अध्ययन की सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि हम विषय-वस्तु के सम्बन्ध में जितनी भी पूर्व-मान्यताएँ एवं कल्पनाएँ अपने मस्तिष्क में रखते हैं उन्हें निकाल दें, त्याग दें तथा केवल वैज्ञानिक मान्यताओं को ही महत्त्व दें। एक समाजशास्त्री को अध्ययन के दौरान उन विचारों से मुक्त होना चाहिए जो एक साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क पर छाये रहते हैं तथा समाज का सदस्य होने के नाते उसकी मानसिक संरचना के रूप में विद्यमान रहते हैं। वैज्ञानिक अवलोकन में भावात्मक लगाव एक बाधा है। जिन विषयों से हमारा लगाव होता है, उनके विरुद्ध हम कुछ भी देखना या सुनना पसंद नहीं करते। धर्म, नैतिकता और राजनीतिक विश्वासों से सम्बन्धित हम जो विचार रखते हैं वे हमारे तटस्थ अध्ययन में बाधक होते हैं। दुर्खीम कहते हैं, "यह भावात्मक प्रकृति तथ्यों को समझने तथा उनकी व्याख्या करने की हमारी पद्धति को दूषित कर देती है।" उनके विचार से जितना अधिक हम सामाजिक तथ्यों के अवलोकन में पूर्व-धारणाओं और भावनाओं से मुक्त होते जाते हैं, हमारे अध्ययन में उतनी ही वैज्ञानिकता आती जाती है। यही कारण है कि दुर्खीम सामाजिक तथ्यों के अवलोकन में पूर्व-धारणाओं का उन्मूलन करने पर जोर देते हैं।

3. विषय-वस्तु की परिभाषा (Definition of the Subject-matter): वैज्ञानिक और तटस्थ अध्ययन के लिए केवल पूर्व-धारणाओं का निराकरण ही पर्याप्त नहीं है। एक समाजशास्त्री को अपनी विषय-वस्तु की भी स्पष्ट व्याख्या करनी चाहिए। इसके लिए उसके अध्ययन में आने वाली वस्तुओं की स्पष्ट परिभाषा की जानी चाहिए। दुर्खीम लिखते हैं "अत: समाजशास्त्री का प्रथम कार्य उन वस्तुओं की परिभाषा करना होना चाहिए जिनका वह अध्ययन करता है ताकि उसकी विषय सामग्री का पता लग जाए। यह समस्त प्रमाणों तथा पुनर्परीक्षाओं की सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक अपरिहार्य दशा हैं।"

4. वैयक्तिक तथ्यों तथा सामाजिक तथ्यों की पृथकता (Separation of Individual and Social Facts): सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक तथ्यों को पृथक् किया जाना चाहिए। दुर्खीम लिखते हैं, "जब समाजशास्त्री किसी प्रकार के सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करता है तो उसे उनके उस पक्ष पर ध्यान देने का प्रयत्न करना चाहिए जो उनकी व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र है।" सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, धाराओं, उद्वेगों को स्थान नहीं देना चाहिए बल्कि वस्तुएँ जिस रूप में समाज में विद्यमान हैं, उनका उसी रूप में अध्ययन करना चाहिए।

सामाजिक तथ्यों के प्रकार (Types of Social Facts)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के तीसरे अध्याय में सामाजिक तथ्यों को दो भागों में बाँटा है—सामान्य तथ्य तथा व्याधिकीय तथ्य। उसने इन दोनों में भेद करने के लिए नियमों का भी उल्लेख किया है।

नोट

1. सामान्य सामाजिक तथ्य (Normal Social Facts) सामान्य सामाजिक तथ्य वे हैं जो समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप होते हैं तथा सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं। इसे शरीर के उदाहरण से समझ सकते हैं। जब शरीर सामान्य स्थिति में होता है तो वह मौसम से अनुकूलन कर लेता है और स्वस्थ्य बना रहता है। स्वस्थ्य अवस्था में रुग्णता न्यूनतम होती है। समाज में भी जो व्यवस्था बनी हुई है वह चलती रहती है तो इसको बनाए रखने वाले सामाजिक तथ्य सामान्य हैं। इस अवस्था में व्याधिकीय तथ्य न्यून मात्रा में होते हैं। इस प्रकार सामान्य सामाजिक तथ्य वे हैं जो समाज की यथास्थिति को बनाए रखते हैं, इनमें व्याधिकीय तत्व इतने नहीं होते कि समाज की व्यवस्था और कानून गड़बड़ा जाए।

2. व्याधिकीय सामाजिक तथ्य (Pathological Social Facts)**:** वे तथ्य हैं जो समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के विपरीत होते हैं। ये समाज में रुग्णता पैदा करते हैं तथा समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। अपराध, बाल-अपराध, डकैती, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या आदि व्याधिकीय सामाजिक तथ्य हैं। जब समाज के व्याधिकीय तथ्य अधिक बढ़ जाते हैं तो समाज का सामान्य जीवन ठप्प हो जाता है। दुर्खीम कहते हैं कि समाजशास्त्र की विषयवस्तु की परिभाषा करने के लिए इन दोनों ही प्रकार के तथ्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

सामाजिक तथ्यों की व्याख्या (अवलोकन) के नियम

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के पाँचवे अध्याय में सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों का उल्लेख किया है। समाजशास्त्रीय पद्धति में वर्गीकरण के बाद विश्लेषण तथा व्याख्या का चरण आता है। वर्गीकरण के द्वारा हम संकलित तथ्यों को समझाने और व्याख्या करने का कार्य करते हैं। व्याख्या के द्वारा हम किसी तथ्य को समझाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक विद्वान तथ्यों की व्याख्या के नाम पर उनकी उपयोगिता और लाभों का वर्णन करते रहे हैं। दुर्खीम का मत है कि किसी वस्तु की उपयोगिता का वर्णन करना उसकी व्याख्या नहीं है। उपयोगिता व्याख्या का विषय नहीं है। व्याख्या के अन्तर्गत तो उस वस्तु की उत्पत्ति और प्रकृति का स्पष्टीकरण होना चाहिए। समाजशास्त्री को किसी घटना का उद्देश्य खोजने के स्थान पर यह देखना चाहिए कि वह घटना समाज रूपी सावयव की सामान्य आवश्यकताओं के साथ किस प्रकार से सम्बन्धित है।

नोट्स सामाजिक तथ्यों का अस्तित्व सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के संदर्भ में भी समझा जा सकता है जिसे दुर्खीम प्रकार्य (Function) कहता है।

इस प्रकार दुर्खीम के अनुसार किसी सामाजिक तथ्य की व्याख्या करने का तात्पर्य है, उसकी उत्पत्ति के कारकों तथा उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले प्रकार्यों की खोज करना। सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों के अन्तर्गत ही दुर्खीम ने प्रकार्य की अवधारणा का विकास किया। सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों को हम संक्षेप में इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं–

1. किसी सामाजिक तथ्य के निर्धारक कारण की खोज उसके पूर्ववती सामाजिक तथ्यों में की जानी चाहिए, व्यक्तिगत चेतना की अवस्थाओं में नहीं।

2. किसी सामाजिक तथ्य के प्रकार्य की खोज किसी सामाजिक उद्देश्य के साथ उसके सम्बन्ध में की जानी चाहिए।

3. किसी भी प्रकार से महत्त्वपूर्ण समस्त सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रथम उत्पत्ति की खोज सामाजिक समूह की आन्तरिक रचना में जानी चाहिए।

समाजशास्त्रीय प्रमाणों की स्थापना के नियम

वैज्ञानिक पद्धति का अन्तिम चरण निष्कर्ष प्राप्त करना तथा नियमों का निर्माण करना है। दुर्खीम ने इसी वैज्ञानिक नियम का प्रयोग समाजशास्त्रीय सिद्धांत के अन्तर्गत भी किया है। निष्कर्ष प्राप्त करने और नियम बनाने के लिए अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें ऐतिहासिक, प्रयोगात्मक तथा तुलनात्मक पद्धतियाँ प्रमुख हैं। दुर्खीम ऐतिहासिक एवं प्रयोगात्मक पद्धतियों की आलोचना करते हैं तथा उन्हें समाजशास्त्रीय नियमों की स्थापना के लिए अनुपयुक्त मानते हैं। इसके स्थान पर वे तुलनात्मक पद्धति को सामाजिक घटनाओं की व्याख्या और विश्लेषण के लिए उपयुक्त मानते हैं। तुलनात्मक विधि में कई प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जो वैध और विश्वसनीय नहीं कही जा सकतीं, फिर भी दुर्खीम अन्य विधियों की तुलना में तुलनात्मक विधियों को ही सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए अधिक उपयोगी मानते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion): पुस्तक के सातवें अध्याय में दुर्खीम ने उपर्युक्त सभी अध्यायों के आधार पर तीन प्रमुख निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं–

1. समाजशास्त्र की स्वतंत्र अध्ययन पद्धति का निर्माण: दुर्खीम ने अपनी इस रचना के माध्यम से समाजशास्त्र के लिए एक स्वतंत्र वैज्ञानिक पद्धति का निर्माण किया है जो समाजशास्त्र को दार्शनिक व्याख्या से हटाकर विज्ञान के क्षेत्र में ले जाती है।

2. वैषयिक पद्धति: इस ग्रंथ में दुर्खीम ने जिस पद्धति का निर्माण किया है, वह वस्तुनिष्ठ या वैषयिक है। इसलिए वे कहते हैं कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में समझा जाना चाहिए तथा उसके बारे में पूर्व धारणाओं को मन से निकाल कर उनकी बाह्य प्रत्यक्ष विशेषताओं के आधार पर अध्ययन किया जाना चाहिए।

3. समाजशास्त्रीय पद्धति: दुर्खीम यह मानते हैं कि उनकी यह पद्धति पूर्ण रूप से समाजशास्त्रीय पद्धति है और मनोवैज्ञानिक व्याख्या से स्वतंत्र है। सामाजिक तथ्य की व्याख्या मानसिक संरचना के आधार पर नहीं वरन् सामाजिक आधार पर ही की जा सकती है। इन सामाजिक तथ्यों को ही दुर्खीम समाजशास्त्र की विशिष्ट विषय-सामग्री मानते हैं। वे समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र और विशिष्ट विज्ञान मानते हैं। वे अपने निष्कर्ष का समापन करते हुए कहते हैं कि अब समय आ गया है जबकि समाजशास्त्र को यथार्थ तथा वैषयिक विज्ञान के रूप में प्रकट होना चाहिए।

अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि 'समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम' तथा 'सामाजिक तथ्य' की अवधारणा दुर्खीम की समाजशास्त्र को महान देन है। इस ग्रंथ की भाषा सरल, स्पष्ट एवं रोचक है। एक नवोदित विज्ञान के रूप में उसने समाजशास्त्र की विषय-वस्तु एवं वैज्ञानिक पद्धति स्थापित करने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। समाजशास्त्र में रुचि रखने वाले विद्वानों के लिए उसने सिद्धांत और पद्धतिशास्त्र दोनों क्षेत्रों में ध्रुवतारे की भाँति मार्गदर्शन का कार्य किया है। उसने आगस्त कॉम्ट की वैज्ञानिकता तथा प्रत्यक्षता (Positivism), वैषयिकता तथा व्यावहारिक प्रयोग को अपने समाजशास्त्र का केन्द्रीय तत्व बनाकर समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

> *क्या आप जानते हैं* **कैटलिन** ने दुर्खीम को पद्धति का आचार्य कहा है, एक ऐसी पद्धति का जिसके सफल परिणाम हुए हैं।

बीरस्टीड ने दुर्खीम के इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है, "दुर्खीम वास्तविक अर्थ में, समाजशास्त्र के विज्ञान की स्थापना की दशा में विश्वव्यापी आंदोलन का प्रणेता था, पद्धति पर उसकी पुस्तक, एक घोषणा पत्र थी जिसने समस्त पाठकों के समक्ष घोषित किया कि समाजशास्त्र का विज्ञान केवल सम्भव ही नहीं था वरन् यह आवश्यक भी था।"

नोट

14.3 सारांश (Summary)

- सामाजिक तथ्य कोई काल्पनिक धारणा या विचार नहीं होता, इसका वास्तविक अस्तित्व होता है। इस वास्तविक आधार पर सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक बोध-सरल हो जाएगा। साथ ही, सामाजिक तथ्य में 'बाह्यता' की विशेषता विद्यमान होती है, अर्थात् इसे एक स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में अनुभव किया जा सकता है। अत: इसकी सहायता से सामाजिक घटनाओं को अति सरलता से समझा जा सकता है। उसी प्रकार सामाजिक तथ्य की दूसरी विशेषता 'बाध्यता' है जोकि हमें विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करती है। इससे सामाजिक घटनाओं में भी एक क्रमबद्धता उत्पन्न हो जाती है और उसका वैज्ञानिक बोध सम्भव होता है।
- कदाचित श्री दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की अवधारणा के आधार पर ही सामाजिक एकता, श्रम-विभाजन, धर्म, आत्महत्या, ज्ञान आदि सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण तथा व्याख्या की है। साधारणतया यह समझा जाता है कि श्रम-विभाजन एक आर्थिक अवधारणा है, परन्तु श्री दुर्खीम के अनुसार, कुछ सामाजिक तथ्य ही श्रम-विभाजन का कारण हैं और श्रम-विभाजन के सामाजिक परिणाम आर्थिक परिणामों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

14.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक तथ्य (Social fact):** एक सामाजिक तथ्य व्यवहार सोचने-समझने, अनुभव करने या क्रिया सम्पादित करने का एक भाग है जो प्रेक्षक की दृष्टि में वस्तुपरक है तथा जिसकी प्रकृति बाध्यतामूलक होती है। इसमें बाह्यता, बाध्यता एवं सामान्यता के गुण विद्यमान होते हैं।

14.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दुर्खीम की अध्ययन की पद्धति को स्पष्ट करें।
2. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सामाजिक तथ्य की अवधारणा को स्पष्ट करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पद्धतिशास्त्र 2. व्याधिशास्त्रीय 3. पद्धतिशास्त्र।

14.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजी—टी.बी. बोटोमोर।
2. द सोसाइटी—मैकाईवर एवं पेज।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मार्गन।
4. द स्ट्रक्चर ऑफ़ सोशियोलॉजिकल थॉट—जे.एच. टर्नर।

नोट

इकाई–15 : समाज में श्रम-विभाजन–यांत्रिक एवं सावयवी एकता (Division of Labour in Society–Mechanical and Organic Solidarity)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

15.2 सारांश (Summary)

15.3 शब्दकोश (Keywords)

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- श्रम-विभाजन के सामाजिक पक्ष को जानना।
- श्रम-विभाजन पर आधारित समाज की एकता को समझना।
- यांत्रिक एकता एवं सावयवी एकता की समझ विकसित करना।

प्रस्तावना (Introduction)

श्री दुर्खीम के अनुसार सबसे प्राचीन समाजों में श्रम-विभाजन स्त्री-पुरुष के भेद पर आधारित था। पुरुष शिकार करने या फल एकत्र करने जाते थे और स्त्रियाँ घर का काम-काज और बच्चों का पालन-पोषण करती थीं। चूँकि इस युग में आर्थिक जीवन में कोई विशेष श्रम-विभाजन की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई। सब मिलकर काम कर लिया करते थे। चूँकि श्रम-विभाजन नहीं था, इस कारण विशेषीकरण का भी कोई प्रश्न न था। प्रत्येक व्यक्ति प्राय: सभी प्रकार के सामाजिक और आर्थिक कार्यों को कर सकता था। राजा पुजारी भी हो सकता था और शिकारी भी। इस

प्रकार प्राचीन समाजों में आधुनिक अर्थ में कोई विशेष श्रम-विभाजन और विशेषीकरण नहीं था। श्री दुर्खीम के अनुसार, इस प्रकार के समाजों में यान्त्रिक एकता थी। इसका कारण भी स्पष्ट है। सभी लोग सामूहिक इच्छा से बँधे होते थे। समाज में लोग जनमत, परम्परा, धर्म और राजा के दबाव में आँख मूँदकर यन्त्रवत् कार्य करते रहते थे और इस रूप में समाज यान्त्रिक एकता में सम्बद्ध था।

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ; वैसे-वैसे आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलू विकसित होते गए, वस्तुओं की माँगें बढ़ीं और आवश्यकताओं में विविधताओं का विस्तार हुआ। इन सबके फलस्वरूप सामाजिक उत्पादन-कार्यों में श्रम-विभाजन की आवश्यकता अनुभव की गई।

15.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

"समाज में श्रम विभाजन" दुर्खीम की सर्वप्रथम कृति है जिसे उसने फ्रेंच भाषा में 'De la division du Travail Special' नाम से प्रकाशित करवाया और जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद *'The Division of Labour is society'* नाम से हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1893 में हुआ। इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने अपनी डॉक्टरेट की उपाधि हेतु की थी। इस ग्रन्थ में दुर्खीम ने श्रम-विभाजन का विस्तार से उल्लेख किया है। साथ ही श्रम-विभाजन से जनित समस्याओं एवं अनेक नवीन अवधारणाओं का भी उल्लेख किया है। चूँकि यह ग्रन्थ दुर्खीम की पहली रचना थी, इसलिए इसमें विचारों का बिखराव तथा साथ ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रस्तुतीकरण भिन्न-भिन्न रहा।

> *नोट्स* रेमण्ड ऐरन ने श्रम-विभाजन की केन्द्रीय समस्या को दुर्खीम से सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय चिन्तन की प्रमुख समस्या बताता है। यह समस्या व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की है।

दुर्खीम की रचना 'समाज में श्रम-विभाजन' तीन खण्डों में विभाजित है जिसमें श्रम-विभाजन से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का उल्लेख किया गया है। ये तीन खण्ड हैं:

1. **श्रम-विभाजन के प्रकार्य** (The Functions of Division of Labour)–इसके अन्तर्गत दुर्खीम ने सामाजिक एकता के लिए श्रम-विभाजन को आधार माना है तथा उसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कानूनों के स्वरूप, एकता के रूप, मानवीय सम्बन्धों के स्वरूप, अपराध, दण्ड, सामाजिक उद्विकास आदि अनेक समस्याओं और अवधारणाओं की व्याख्या की है।

2. **कारण एवं दशाएँ** (Causes and Conditions)–इस खण्ड के अन्तर्गत दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के कारण एवं परिणामों की विस्तार से चर्चा की है।

3. **श्रम-विभाजन के असामान्य स्वरूप** (Abnormal Forms of Division of Labour)–इसके अन्तर्गत श्रम -विभाजन के कुछ असामान्य स्वरूपों का उल्लेख किया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक चौदह अध्यायों में बँटी हुई है, किन्तु अध्यायों की विषय-सामग्री उनके शीर्षकों से पूरी तरह बंधी हुई नहीं है। हम यहाँ इस ग्रन्थ के आधार पर दुर्खीम के श्रम-विभाजन सम्बन्धी विचारों की विवेचना करेंगे।

श्रम-विभाजन का प्रकार्य (Function of Division of Labour)

एक प्रकार्यवादी समाजशास्त्री के रूप में दुर्खीम ने सर्वप्रथम श्रम-विभाजन के प्रकार्य का उल्लेख किया। दुर्खीम के अनुसार श्रम-विभाजन एक सामाजिक तथ्य है, इसीलिए श्रम-विभाजन के प्रकार्यात्मक विश्लेषण से ही इस ग्रन्थ का

नोट

प्रारम्भ किया है। सर्वप्रथम उसने प्रकार्य शब्द के अर्थ की व्याख्या की है। उसके प्रकार्य के दो अर्थ बताये: (*i*) प्रकार्य का अर्थ गति व्यवस्था अर्थात् क्रिया से है, और (*ii*) क्रिया के द्वारा पूर्ण होने वाली आवश्यकता से है। दुर्खीम ने प्रकार्य शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थ में किया है। **श्रम-विभाजन के प्रकार्य से उसका तात्पर्य है कि आवश्यकता की पूर्ति करती है। प्रकार्य का अर्थ उसने परिणाम या प्रभाव से नहीं लिया है वरन् भूमिका** (Role) के अर्थ में लिया है। प्रकार्यों के अभाव में किसी शरीर या उसके अंगों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती।

दुर्खीम समाज को एक नैतिक वास्तविकता मानते हैं। नैतिक व्यवस्था के अभाव में कोई भी सामाजिक व्यवस्था अधिक समय तक चल नहीं सकती इसलिए किसी भी सामाजिक तथ्य का प्रकार्य स्वाभाविक रूप से नैतिक होना चाहिए। दुर्खीम के अनुसार नैतिकता के व्यवहार वे नियम हैं जो मानव के आचरण पर अनिवार्य रूप से लागू होते हैं और जिनके साथ समूह की अभिमति (Sanction) जुड़ी होती है। इस प्रकार नैतिक तथ्य का सम्बन्ध मानव आचरण से है और श्रम-विभाजन की प्रकृति भी नैतिक है, इसलिए श्रम-विभाजन का प्रकार्य भी स्वाभाविक रूप से समाज में नैतिक कार्यों को उत्पन्न करना है।

सामान्यत: यह माना जाता है कि श्रम-विभाजन का प्रकार्य सभ्यता का विकास करना है क्योंकि श्रम-विभाजन के विकास के साथ-साथ समाज में विशेषीकरण और उत्पादन शाक्ति में वृद्धि होती है, बौद्धिक तथा भौतिक प्रगाति होती है, सुख के उपभोग और ज्ञान का प्रसार होता है, इसलिए समाज में सभ्यता बढ़ती है। यही करण है कि कई विद्वान श्रम विभाजन को सभ्यता का स्रोत मानते हैं, किन्तु दुर्खीम मानते हैं कि श्रम-विभाजन का प्रकार्य सभ्यता का विकास करना नहीं है क्योंकि स्रोत का अर्थ प्रकार्य से नहीं है। सुखों की वृद्धि या बौद्धिक एवं भौतिक प्रगति श्रम-विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न होती है; इसलिए वे इसके परिणाम हैं प्रकार्य नहीं और प्रकार्य परिणाम नहीं होता।

दुर्खीम ने सभ्यता के विकास में तीन प्रकार के विकास को सम्मिलित किया है—औद्योगिक या आर्थिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक विकास।

1. **औद्योगिक या आर्थिक विकास–**इसे सभ्यता की प्रमुख विशेषता माना जाता है, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि जहाँ बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे स्थापित हैं, वहाँ नैतिक उन्नति के बजाय अपराध और आत्महत्याएँ अधिक देखने को मिलती हैं। रेल, मोटर, कार तथा अन्य मशीनें हमारे लिए काफी उपयोगी हैं, किन्तु इसके साथ कोई नैतिक बन्धन नहीं है। दुर्खीम का मत है कि औद्योगिक क्रियाएँ आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, किन्तु मौलिक आवश्यकताओं की नहीं।

2. **कलात्मक विकास–**कलात्मक विकास का सम्बन्ध भी नैतिक विकास से सम्बन्धित नहीं है। दुर्खीम तो कला को विलासिता एवं उद्देश्यहीन परिश्रम मानते हैं। कलाकृतियों में नैतिक घटनाओं की अभिव्यक्ति हो सकती है, परन्तु स्वयं कला नैतिक तथ्य नहीं है। कला के नाम पर रागात्मक प्रवृत्तियों के अनियन्त्रित एवं उत्तेजित विकास को दुर्खीम एक नैतिक संकट ही मानते हैं।

3. **वैज्ञानिक विकास–**दुर्खीम ने सभ्यता के तथ्यों में से केवल विज्ञान को ऐसा पक्ष माना है जिसमें आंशिक रूप से नैतिकता का तत्त्व है क्योंकि समाज में सदस्यों के द्वारा ज्ञान और बुद्धि को बढ़ाना तथा वैज्ञानिक सत्य को जानना एक कर्तव्य माना जाता है। इस प्रकार दुर्खीम सभ्यता के तीनों पक्षों के विकास का सम्बन्ध नैतिक विकास में नहीं मानते। इस सन्दर्भ में दुर्खीम ने लिखा है, 'नैतिकता सबसे कम अपरिहार्य, अत्यन्त आवश्यक है, नित्य भोजन है जिसके बिना समाज जीवित नहीं रह सकता।'

श्रम-विभाजन का प्रकार्य नवीन समूहों का निर्माण और उनकी एकता है–दुर्खीम यह मानते हैं कि श्रम-विभाजन का प्रकार्य समाज के अस्तित्व से सम्बन्धित किसी नैतिकता की पूर्ति करना है। जब समाज के सदस्यों की संख्या और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है तो समाज में श्रम-विभाजन में भी वृद्धि होती है, नये-नये

नोट

व्यावसायिक एवं सामाजिक समूह जन्म लेते हैं। इन विभिन्न समूहों के बीच एकता उत्पन्न करना समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। एकता के अभाव में समाज में व्यवस्था और सन्तुलन कायम नहीं हो सकते। अत: विभिन्न समूहों के बीच एकता की आवश्यकता एक नैतिक आवश्यकता है और श्रम-विभाजन का कार्य इसी नैतिक आवश्यकता की पूर्ति करना। जब समाज में परिवर्तन होता है, जीवन की दशाएँ एवं आवश्यकताएँ बदलती हैं तो नवीन समूहों का निर्माण होना भी एक सामाजिक आवश्यकता है और उसकी एकता भी समाज के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। दुर्खीम के अनुसार ये दोनों ही कार्य श्रम-विभाजन द्वारा पूरे किये जाते हैं।

श्रम-विभाजन एकता कैसे पैदा करता है, इसे स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने कई उदाहरण दिये हैं। हम केवल उन लोगों से ही मित्रता नहीं करते हैं जो हमारे से समानता रखते हैं वरन् उनसे भी रखते हैं जो हमारे से भिन्नता रखते हैं क्योंकि जिस बात की कमी का अनुभव करते हैं, उसकी पूर्ति हम अपने मित्र में ढूँढते हैं। दुर्खीम लिखते हैं, "हमारे अन्दर चाहे जितने गुण हों, फिर भी हममें कोई न कोई अभाव होता है और हम में से सर्वोत्तम भी अपनी कमी को महसूस करते हैं। यही कारण है कि हम अपने मित्रों में उन गुणों की खोज करते हैं जो हम में नहीं होते, क्योंकि उनके साथ रहने में हम कुछ अंशों में उनकी प्रकृति में भागीदार बन जाते हैं और स्वयं को कम अपूर्ण अनुभव करते हैं।" इस प्रकार समानता और भिन्नता दोनों ही आकर्षण का कारण हो सकते हैं। दुर्खीम ने वैवाहिक एकता एवं स्त्री-पुरुष की एकता को भी श्रम-विभाजन के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। इनकी एकता का कारण उनकी भावात्मक एवं वैचारिक समानता ही नहीं वरन् उनमें पायी जाने वाली भिन्नता भी है। दुर्खीम कहते हैं कि लैंगिक श्रम-विभाजन ही स्त्री-पुरुष की एकता का प्रमुख स्रोत है। इन दोनों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग हैं। स्त्रियों का कार्य रागात्मक क्षेत्र से एवं पुरुषों का बौद्धिक क्षेत्र से है। श्रम-विभाजन इन दोनों को परस्पर जोड़ता है और इनके प्रयत्नों को संगठित करता है। दुर्खीम का मत है कि श्रम-विभाजन का कार्य केवल यही नहीं है कि समाज के कार्य होते रहें या उनकी कुशलता और परिणाम में वृद्धि हो, वरन् इसका प्रमुख कार्य तो समाज में एकता उत्पन्न करना है।

टास्क श्रम-विभाजन का प्रकार्य नवीन समूहों का निर्माण और उनकी एकता के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

कानून एवं एकता (Law and Solidarity)

श्रम-विभाजन का प्रमुख कार्य समाज में एकता उत्पन्न करना है और एकता एक नैतिक तथ्य है जिसका अवलोकन एवं परीक्षण प्रत्यक्ष तरीकों से किया जा सकता है। दुर्खीम का कहना है कि वैधानिक कानून के अध्ययन के आधार पर हम किसी समाज की एकता को माप और समझ सकते हैं। वैधानिक कानून समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट करते हैं। सदस्यों में जितने घनिष्ठ सम्बन्ध होंगे, समूह में उतनी ही अधिक एकता होगी। समाज की कानूनी व्यवस्था जितने प्रकार की होती है, सामाजिक एकता भी उतने ही प्रकार की होती है। दुर्खीम ने कानून का वर्गीकरण कर प्रत्येक प्रकार के कानून से सम्बन्धित सामाजिक एकता के प्रकार का भी उल्लेख किया है। आपने प्रमुख रूप से दो प्रकार के कानूनों का उल्लेख किया है—दमनकारी कानून एवं प्रतिकारी कानून।

1. दमनकारी कानून (Repressive Law)—दमनकारी कानून 'सार्वजनिक कानून' होते हैं जो व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों का नियमन करते हैं? इनमें व्यक्ति के बजाय सामूहिक हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। दमनकारी कानून भी दो प्रकार के होते हैं—(क) दण्डकारी कानून (Penal law), जिनका सम्बन्ध कष्ट देने, हानि पहुँचाने, हत्या करने एवं स्वतन्त्रता का हनन करने से है। (ख) व्याप्त कानून (Diffused Law) जो सम्पूर्ण समूह में नैतिकता के आधार पर व्याप्त होते हैं।

नोट

2. प्रतिकारी कानून (Restitutive Law)–इन कानूनों का उद्देश्य व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में उत्पन्न असन्तुलन में सामान्य स्थिति पैदा करना है। इसके अन्तर्गत दीवानी कानून, व्यावसायिक कानून, संवैधानिक एवं प्रशासनिक कानून, आदि आते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के कानून दो भिन्न प्रकार की सामाजिक एकता, दो भिन्न प्रकार की जीवन शैली के परिणाम एवं द्योतक हैं। दमनकारी कानून व्यक्तियों में व्याप्त समानता का प्रतीक है। इसके द्वारा जिस प्रकार की एकता उत्पन्न होती है, उसे दुर्खीम 'यान्त्रिक एकता' कहता है। प्रतिकारी कानून का सम्बन्ध विभिन्नताओं एवं श्रम-विभाजन से है और यह जिस प्रकार की एकता को प्रकट करते हैं, दुर्खीम उसे 'सावयवी एकता' कहते हैं। हम यहाँ दुर्खीम की सामाजिक एकता की अवधारणा पर विचार करेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. श्रम-विभाजन का प्रमुख कार्य समाज में एकता उत्पन्न करना है और एकता एक नैतिक तथ्य है जिसका .... प्रत्यक्ष तरीकों से किया जा सकता है।
2. .... में जितने घनिष्ठ संबंध होंगे, समूह में उतनी ही अधिक एकता होगी।
3. .... कानून 'सार्वजनिक कानून' होते हैं जो व्यक्ति एवं राज्य के संबंधों का नियमन करते हैं।

सामाजिक एकता की अवधारणा (Concept of Social Solidarity)

सामाजिक एकता की अवधारणा समाजशास्त्रीय साहित्य में दुर्खीम का एक अनुपम योगदान है। दुर्खीम के अनुसार समूह का विकास उसकी एकता या सुदृढ़ता में निहित है। यह एकता सर्वोच्च शक्ति है तथा व्यक्ति इसी एकता के अंग हैं। समाज में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा समान रूप से विचार करने एवं व्यवहार करने से ही सामाजिक एकता प्रकट होती है। व्यक्तियों एवं समाज में पायी जाने वाली समानता एवं भिन्नता दोनों ही समाज में एकता को उत्पन्न करते हैं। समान शरीरिक एवं मानसिक अवस्थाएँ लोगों को एकीकरण की ओर ले जाते हैं। जब तक लोगों में एक-दूसरे के प्रति लगाव और आकर्षण नहीं होता है वे एक-दूसरे के प्रति निकट आने की आवश्यकता महसूस नहीं करते, किन्तु आकर्षण केवल समानता में ही नहीं है, भिन्नता और असमानता में भी है। स्त्री और पुरुष की शारीरिक भिन्नता ही उन्हें परस्पर निकट आने को आकर्षित करती है। इसी प्रकार से कार्यों की भिन्नता जिसे हम श्रम-विभाजन कहते हैं, सभी लोगों को निकट आने एवं मिलकर कार्य करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार दुर्खीम के अनुसार श्रम-विभाजन में ही सामाजिक एकता का रहस्य छिपा है।

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता एक नैतिक घटना है। यह समाज के नैतिक आदर्शों में निहित है। यह कोई मूर्त वस्तु नहीं है। वरन् समाज के सदस्यों की मानसिक स्थिति में निवास करती है। यह सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है। समाज के लोगों में जितनी अधिक लगाव एवं निकटता की भावना होगी, समाज में उतनी ही मात्रा में एकता पायी जायेगी।

दुर्खीम कहता है कि सामाजिक एकता की स्थिति एवं स्वरूप में जनसंख्या के आकार और श्रम-विभाजन के स्वरूप के आधार पर परिवर्तन होते रहते हैं। इसी आधार पर समाज में दो प्रकार की एकता के रूप जन्म लेते हैं—यान्त्रिक एकता तथा सावयवी एकता। हम यहाँ इन दोनों प्रकार की एकता पर विचार करेंगे।

यान्त्रिक एकता (Mechanical Solidarity)

सरल, आदिम और प्राचीन समाजों में यान्त्रिक एकता पायी जाती है। समूह के सदस्यों में पायी जाने वाली समानताएँ इस एकता का आधार हैं। इन समाजों में लोगों की प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं में, विचारों, विश्वासों और

नोट

जीवन-शैलियों में, मानसिक, सामाजिक और नैतिकता में समानता पायी जाती है। सरल, आदिम एवं प्राचीन समाजों का आकार बहुत छोटा होता है। लोगों की आवश्यकताएँ सीमित तथा लगभग समान होती हैं। उन पर परम्परा, जनमत और धर्म का नियन्त्रण और दबाव होता है और आंख मूंदकर लोग इनका पालन करते हैं अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के व्यक्तित्व में घुल जाता है। वह समूह के साथ यन्त्रवत् सोचता, कार्य करता एवं आज्ञाओं का पालन करता है। इस प्रकार के आचरण से स्थापित एकता को इसी कारण 'यान्त्रिक एकता' कहा गया है। दुर्खीम ने दमनकारी कानून और यान्त्रिक एकता को परस्पर सम्बन्धित माना है। इसी एकता की व्याख्या के दौरान ही आपने अपराध, दण्ड और 'सामूहिक चेतना' की व्याख्या प्रस्तुत की है।

यान्त्रिक समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Mechanical Society)—दुर्खीम ने यान्त्रिक समाज की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे अग्रांकित हैं—

1. **अविभेदीकृत या भेद भाव रहित समाज**—यान्त्रिक समाज के अन्तर्गत आदिम और ग्रामीण समाज आते हैं। इन समाजों में आयु, लिंग एवं अनुवांशिकता के आधार पर गैर बराबरी तो पायी जाती है, किन्तु आर्थिक विषमता का भयंकर रूप नहीं पाया जाता। इन समाजों में भूमि व्यक्तिगत नहीं होती वरन् सम्पूर्ण गाँव की सामूहिक सम्पत्ति होती है। गाँव या कबीले का मुखिया आनुवंशिकता के आधार पर दूसरों से ऊँचा होता है। निर्णय पंचायत द्वारा लिए जाते हैं। ऐसे समाजों में मानसिक, सामाजिक और नैतिक सभी क्षेत्रों में एकरूपता पायी जाती है। उनके विश्वासों, व्यवहारों एवं मतों में साम्यता पायी जाती है। परम्परा ऐसे समाजों में समरूपता उत्पन्न करती है। ऐसे समाजों में व्यक्तिवाद का अभाव पाया जाता है।

2. **व्यक्ति का द्वैतीयक स्थान**—यान्त्रिक एकता वाले समाजों में व्याक्ति के स्थान पर समाज को उच्च स्थान दिया जाता है। वहाँ समाज मुख्य एवं व्यक्ति गौण होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज में घुल-मिल जाता है। व्यक्ति में व्यक्तिगत चेतना होती है, वह उसी के आधार पर अपने कार्य करता है, किन्तु सामूहिक चेतना के सम्मुख व्यक्तिगत चेतना नगण्य हो जाती है, द्वैतीयक हो जाती है।

3. **सामूहिक चेतना का प्रभुत्व**—यान्त्रिक एकता वाले समाजों में सामूहिक चेतना का प्रभुत्व होता है। समाज के विश्वासों और संवेगों में समाज के प्रत्येक सदस्य की भागीदारी होती है। जब समाज का कोई भी सदस्य इनमें शंका उठाता है तो इसका तात्पर्य है वह समाज को चुनौती दे रहा है, जिसे समाज स्वीकार नहीं करता। सामूहिक चेतना पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। यह व्यक्ति एवं समय के ऊपर है।

4. **दमनकारी कानून की प्रधानता**—यान्त्रिक एकता वाले समाजों में दमनकारी कानूनों की प्रधानता पायी जाती है। दमनकारी कानून का उद्देश्य समाज की एकता को बनाए रखना होता है। सामूहिक चेतना को चोट पहुँचाना अपराध माना जाता है और समाज ऐसे व्यक्ति को दण्ड देता है। दमनकारी कानून का उद्देश्य व्यक्ति के स्थान पर सामूहिक हितों की रक्षा करना होता है।

5. **नैतिकता**—यांत्रिक एकता वाले समाजों में सामाजिक एकता का आधार नैतिकता होती है। यद्यपि यांत्रिक एवं सावयवी दोनों ही प्रकार के समाजों में नैतिकता के धरातल पर ही समाज खड़े होते हैं, किन्तु सावयवी समाजों में नैतिकता कमजोर हो जाती है तथा यान्त्रिक समाजों में नैतिकता के आधार पर समाज अपनी सुदृढ़ता एवं नियन्त्रण व्यवस्था बनाए रखता है।

6. **सजातीयता**—यान्त्रिक समाजों में जनसंख्या कम होती है, अतः हर क्षेत्र में सजातीयता पायी जाती है। ऐसे समाजों में जनमत का अधिक महत्त्व होता है। जनमत की एकरूपता भी समाज में सुदृढ़ता स्थापित करती है।

7. **राजनीतिक जीवन**—यान्त्रिक समाजों में न्याय, दण्ड एवं सामाजिक मामले सारे समूह द्वारा सामूहिक रूप से निपटाये जाते हैं। सारा समूह या समुदाय मिलकर ही कानून बनाने, उसे लागू करने एवं कानून का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देने का कार्य करता है। समाज का कोई भी मामला व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है, अतः आम सभा में ही इन्हें निपटाया जाता है।

नोट

8. **आर्थिक संगठन**–यान्त्रिक समाज में अर्थव्यवस्था भरण-पोषण वाली अर्थव्यवस्था होती है भोजन, वस्त्र और आवास की पूर्ति भी इन समाजों में कठिनाई से ही होती है। इनमें विशेषीकरण का अभाव पाया जाता है। उत्पादन की प्रक्रिया में परिवार एवं समुदाय में सभी लोग भाग लेते हैं। वर्गों का अभाव पाया जाता एवं सम्पत्ति सामूहिक होती है।

9. **धार्मिक संगठन**–यान्त्रिक समाजों में धर्म की प्रधानता होती है। इनमें धर्म का प्रारम्भिक स्वरूप टोटमवाद के रूप में पाया जाता है। टोटम की पूजा की जाती है। टोटम ही धार्मिक क्रियाओं का केन्द्र होता है। धर्म सामाजिक नियन्त्रण का प्रमुख साधन होता है।

दमनकारी कानून के आधार पर दुर्खीम ने अपराध व दण्ड की व्याख्या इस प्रकार की है–

1. **अपराध**–अपराध की व्याख्या दुर्खीम ने दमनकारी कानून के आधार पर की है। दण्ड अपराध से जुड़ा हुआ है। कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें अपराध के लिए दण्ड न दिया जाता हो। सभी समाजों में अपराध 'सामूहिक चेतना' पर चोट पहुँचाना माना जाता है, सामाजिक नैतिकता के विरुद्ध कार्य माना जाता है, इसलिए ही समाज में अपराध के विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है। दमनकारी कानून समूह की अभिमति (Sanction) होती है। इन कानूनों के अनुसार अपराध कार्य हैं जिन्हें समूह के सदस्य अनुचित मानते हैं, जो सामूहिक भावना को ठेस पहुँचाते हैं।

क्या आप जानते हैं अपराध का निर्धारण दमनकारी कानूनों के द्वारा होता है।

2. **अपराध सामूहिक भावनाओं पर आघात है**–प्रत्येक समूह में कुछ भावनाएँ ऐसी होती हैं जो समान रूप से सारे समूह में व्याप्त होती हैं, इनके विरुद्ध कार्य ही अपराध है। दुर्खीम अपराध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "एक कार्य अपराधी है जब वह सामूहिक आत्मा की शक्तिशाली तथा निश्चित अवस्थाओं पर आघात करता है।"

3. **दण्ड**–जो कार्य समूह के द्वारा दण्डनीय है, वही अपराध है। अपराध ही दण्ड की मात्रा और प्रकृति तय करता है। दण्ड अपराध के प्रति समूह की भावात्मक प्रतिक्रिया है। सामूहिक भावना के प्रतिकूल आचरण करने पर समूह के प्रत्येक सदस्य के मन में विरोधी प्रतिक्रिया होती है और समूह के सदस्य प्रतिशोध लेना चाहते हैं। प्रतिशोध की भावना का परिणाम ही दण्ड है। इसलिए दुर्खीम कहते हैं कि दण्ड का उद्देश्य प्रतिशोध लेना और प्रत्याघात करना है। चूँकि अपराध की प्रकृति सामाजिक है, इसलिए दण्ड की प्रकृति भी सामाजिक है। अपराध के विरुद्ध हमारा प्रतिशोध व्यक्तिगत नहीं होता। हम यह प्रतिशोध इसलिए व्यक्त नहीं करते कि अपराधी ने हमें हानि पहुँचाई है वरन् इसलिए करते हैं कि अपराध उन पवित्र और परम्परागत आदर्शों एवं भावनाओं पर आक्रमण है जो हम सबके हृदय में श्रद्धा के केन्द्र हैं।

दुर्खीम ने अपराध की सामाजिक उपयोगिता का भी उल्लेख किया है। आपके अनुसार अपराध समूह के लोगों को एकता के सूत्र में बांधता है। सभी व्यक्ति समान रूप से अपराध क्रिया का प्रतिशोध लेने या अपराधी को दण्ड देने की बात सोचते हैं। सामान्य आक्रोश समूह के सदस्यों में मानसिक एकता स्थापित करता है। दुर्खीम का कहना है कि अपराध उत्तेजित आत्माओं को एक-दूसरे के निकट ला देता है और उन्हें एकाग्र कर देता है। इसी प्रकार से दण्ड भी सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं। दण्ड ही दमन का माध्यम है। दमनकारी कानून दण्ड का निर्धारण करते हैं। दण्ड एक यन्त्रवत् प्रतिक्रिया है जो समूह की तीव्र उत्तेजनात्मक भावना का परिणाम है और दण्ड का उपयोग यह है कि वह सामूहिक चेतना को लगने वाली चोट के घावों को भरता है। इस प्रकार अपराध और दण्ड की सामान्य विशेषताओं और उपयोगिताओं द्वारा दुर्खीम ने समाज की यान्त्रिक एकता और दमनकारी कानूनों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट किया है।

नोट

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक ओर अपराध सामूहिक भावनाओं पर चोट करके समाज के सदस्यों के भीतर मौजूद सामूहिक आत्मा को सावधान कर देता है तथा दूसरी ओर दण्ड इन सामूहिक भावनाओं की रक्षा करने और उनकी पुन: प्रतिष्ठा करने के लिए, अपराधी से बदला लेने के लिए समूह को एकता के सूत्र में बांधता है। यह एकता समान उत्तेजनाओं तथा समान प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। दमनकारी कानून समाज की इसी प्रकार की एकता को प्रकट करते हैं जिसे दुर्खीम ने **'यान्त्रिक एकता'** नाम दिया है।

दुर्खीम ने समाज को सामूहिक आत्मा माना है जो प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा के भीतर मौजूद रहती है। इसी सामूहिक आत्मा के कारण लोगों में यान्त्रिक एकता उत्पन्न होती है। सामूहिक मन आत्मा का निर्माण समूह की सामान्य भावनाओं एवं आदर्शो के आधार पर होता है। अत: समूह के सदस्यों में पायी जाने वाली समानताओं, सामान्य प्रवृत्तियों एवं अनुरूपता के आधार पर यान्त्रिक एकता की उत्पत्ति होती है।

सावयवी एकता (Organic Solidarity)

'यान्त्रिक एकता' के विपरीत दुर्खीम ने दूसरे प्रकार की एकता को 'सावयवी एकता' कहा है जो कि आधुनिक जटिल, विकसित और औद्योगीकृत समाजों में पायी जाती है। ऐसे समाजों में **प्रतिकारी कानूनों की प्रधानता** होती है। आदिम समाजों में दमनकारी कानून पाये जाते हैं जिन्हें सामूहिक मन या चेतना से शक्ति प्राप्त होती है। ऐसे कानून व्यक्ति को समूह के साथ प्रत्यक्ष रूप से जोड़ते हैं, किन्तु आधुनिक समाजों में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण की प्रधानता होने के कारण भिन्नताएं अधिक पायी जाती हैं। ये भिन्नताएँ समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बढ़ावा देती है तथा सामूहिक चेतना की भावना को कमजोर करती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति समूह से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा नहीं होता है और यहाँ लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है विभिन्नतायुक्त आधुनिक समाजों में लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक-दूसरे पर निर्भर रहना होता है। श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण की बहुलता के कारण प्रत्येक व्यक्ति केवल एक कार्य का ही विशेषज्ञ होता है और दूसरे कार्यो के लिए उसे समाज के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना होता है। समाज के सदस्यों की यह पारस्परिक निर्भरता और विशेषीकरण से उत्पन्न असमानता उन्हें एक-दूसरे के निकट आने के लिए बाध्य करती है जिससे कि समाज में एक विशेष प्रकार की एकता स्थापित होती है जिसे दुर्खीम 'सावयवी एकता' कहता है। सावयवी एकता की अभिव्यक्ति प्रतिकारी कानूनों के द्वारा होती है। ये व्यक्ति को समाज से प्रत्यक्ष रूप में नहीं जोड़ते वरन् किन्हीं मध्यस्थ संस्थाओं और प्रतिनिधियों जैसे, न्यायालय, पंच, न्यायाधीश एवं वकील आदि के द्वारा जोड़ते हैं।

सावयवी एकता शारीरिक एकता के समान है। शरीर का निर्माण हाथ-पांव, आँख, नाक, कान मुंह, पेट, सिर आदि विभिन्न अंगों के मिलने से होता है। शरीर के इन विभिन्न अंगों के कार्य भी भिन्न हैं, किन्तु ये सभी अंग अपना कार्य तभी तक कर सकते हैं, जब तक कि वे परस्पर जुड़े हुए हैं। आँख और कान शरीर से अलग होकर अपना कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर के विभिन्न अंगों के बीच एकता पायी जाती है जो कि पारस्परिक निर्भरता के कारण उत्पन्न होती है। आधुनिक समाजों में भी इसी प्रकार की एकता पायी जाती है। जनसंख्या के बढ़ने पर लोगों की आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती है जिन्हें पूरा करने के लिए समाज में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण आवश्यक हो जाता है। श्रम-विभाजन और विशेषीकरण में एक व्यक्ति को एक ही प्रकार का कार्य सौंपा जाता है, इसमें व्यक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है क्योंकि वह समाज की किसी एक विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति करता है। चूँकि एक व्यक्ति एक प्रकार का कार्य ही कर पाता है (शरीर के एक अंग की भाँति) इसलिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह निर्भरता सहयोग और एकता को जन्म देती है जिसे दुर्खीम सावयवी एकता कहते हैं।

दुर्खीम ने बताया है कि परिवार, व्यवसाय, सरकार, इत्यादि में जो एकता और संगठन पाया जाता है वह इन सबसे सम्बन्धित व्यक्तियों में पायी जाने वाली समानताओं के कारण नहीं है। यह एकता ठीक उसी प्रकार की एकता है

नोट

जो किसी सावयव (Organism) के विभिन्न अंगों में पायी जाती है। सावयव के विभिन्न अंग अलग-अलग शारीरिक कार्य करते हैं। इनके कार्यों में सहयोग के आधार पर एकता पनपती है जिसके कारण सम्पूर्ण सावयव में संतुलन बना रहता है, वह क्रियाशील रहता है। इसी एकता को दुर्खीम ने सावयवी एकता (Organic Solidarity) नाम दिया है। इसका कारण यह है कि एक एकता की उत्पत्ति किसी सावयव के विभिन्न अंगों के बीच पाये जाने वाले श्रम-विभाजन एवं सहयोग से होती है। आधुनिक समाजों में श्रम-विभाजन के कारण ही सावयवी एकता पायी जाती है और प्रतिकारी कानून इसी एकता को प्रकट करते हैं। दुर्खीम का मानना है कि श्रम-विभाजन से उत्पन्न सावयवी सामाजिक एकता ही वास्तव में श्रम-विभाजन का प्रकार्य है।

सावयवी समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Organic Society)

दुर्खीम ने सावयवी समाज की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. विभेदीकरण की जटिल प्रक्रिया: जब यांत्रिक समाज की जनसंख्या के घनत्व तथा नैतिक घनत्व में वृद्धि होती जाती है तो वह सावयवी समाज की ओर अग्रसर होता है। सावयवी समाज की आवश्यकताएँ भी बढ़ जाती हैं। जो आवश्यकताएँ दिल्ली नगर की हैं वे जयपुर नगर की नहीं हैं। ऐसे समाजों में विशिष्टीकरण भी बढ़ जाता है जिसके परिणामस्वरूप विभेदीकरण बढ़ जाता है। श्रम-विभाजन के कारण विभेदीकरण की मात्रा में वृद्धि होती जाती है।

2. समाज में अन्योन्याश्रितता में वृद्धि: सावयवी समाज में श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण के कारण कार्य का विभाजन कई इकाइयों में हो जाता है, किन्तु ये सभी इकाइयाँ प्रकार्यात्मक रूप से एक दूसरे पर निर्भर होती हैं। कपड़े के कारखाने में धागा बुनने, रंगाई एवं छपाई करने, कपड़ा बुनने एवं कपड़े को पैक करने का कार्य अलग-अलग विभागों द्वारा किया जाता है, किन्तु ये सभी एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। इस निर्भरता के कारण उनमें सम्बद्धता पायी जाती है।

3. विभिन्न व्यवसायों का विकास: सावयवी समाज में सामाजिक विभेदीकरण के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के व्यवसाय जन्म लेते हैं एवं विकसित होते हैं। ऐसे समाज में जनसंख्या की अधिकता आवश्यकताओं की बहुलता एवं विविधता के कारण कई नवीन व्यवसाय जन्म लेते हैं जिससे कि लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

4. सामूहिक प्रतिनिधान: सावयवी समाज में लोगों के विचारों, संवेगों, अनुबंध एवं रीति-रिवाजों की अभिव्यक्ति सामूहिक प्रतिनिधानों में होती है। सामूहिक प्रतिनिधान सावयवी समाज की साझा संस्कृति कही जा सकती है। इसी के द्वारा सामान्य जन का प्रतिनिधित्व होता है जो स्थान यांत्रिक समाज में सामूहिक चेतना का है वही स्थान सावयवी समाज में सामूहिक प्रतिनिधान का है।

5. प्रतिकारी कानून: सावयवी समाज में प्रतिकारी कानून की प्रधानता होती है जिसका उद्देश्य दण्ड देना न होकर नागरिकों का सामान्य जीवन में पुनर्स्थापना होता है।

6. आर्थिक संगठन: जहाँ यांत्रिक समाज में भरण-पोषण वाली अर्थव्यवस्था पायी जाती है वही सावयवी समाज में बचत वाली अर्थव्यवस्था। इस समाज में व्यक्तिवाद का महत्त्व बढ़ने के कारण व्यक्तिगत सम्पत्ति का महत्त्व भी बढ़ जाता है। बंद के स्थान पर खुली अर्थव्यवस्था का विकास होता है। वंशानुगत व्यवसाय के स्थान पर व्यक्ति अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुसार व्यवसायों का चयन करता है।

7. राजनीतिक व्यवस्था: सावयवी समाज में राजनीतिक कार्यों का विशेषीकरण हो जाता है। राज्य के तीनों अंग–व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका अलग-अलग कार्य करते हैं। शासन वंशानुगत आधार पर न होकर चुनी हुई सरकार के द्वारा होता है। राजनीतिक व्यवस्था एक औपचारिक स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

8. धार्मिक संगठन: सावयवी समाज में धर्म के क्षेत्र का विस्तार हो जाता है। इसमें एकेश्वरवाद एवं बहुदेववाद का संक्रमण हो जाता है। ईश्वर का व्यक्तिकरण एवं निजीकरण हो जाता है। धर्म का सार्वभौमिकरण हो जाता है,

नोट

जनजातीय भक्तिवाद का ह्रास हो जाता है। स्थानीय धार्मिक विश्वासों का स्थान विश्ववाद तथा अन्तर्राष्ट्रीयवाद ले लेता है।

यांत्रिक एवं सावयवी एकता (Mechanical and Organic Solidarity)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता सामाजिक जीवन का आधार है। यह एक नैतिक और गतिशील तथ्य है। आदिम समाजों में जहाँ पूर्ण समानता पायी है और 'सामूहिक चेतना' बलवती होती है, सामूहिक भावनाओं के प्रति लोगों में गहरी आस्था होती है। वहाँ यांत्रिक एकता पायी जाती है। दूसरी ओर आधुनिक समाजों में श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्तियों में एक-दूसरे पर निर्भरता पायी जाती है जो शरीर के विभिन्न अंगों के बीच पायी जाने वाली निर्भरता के समान ही है। इसे दुर्खीम सावयवी एकता कहते हैं। विशुद्ध रूप से कोई भी समाज न तो यांत्रिक होता है और न ही सावयवी। दोनों प्रकार के समाजों में सुदृढ़ता तो पायी जाती है, किन्तु सुदृढ़ता की प्रकृति में अन्तर होता है। दोनों ही समाजों में कुछ समानताएँ भी हैं जैसे दोनों प्रकार के समाजों में समूह की भावना को सर्वोपरि माना जाता है, दोनों में कानूनों के प्रकारों का अन्तर होते हुए भी समाज ही शक्तिशाली रहता है, दोनों में सुदृढ़ता समान रूप से पायी जाती है। फिर भी इन दोनों प्रकार के समाजों में कई अन्तर भी हैं।

यांत्रिक एवं सावयवी एकता में अन्तर

(Difference between Mechanical and Organic Solidarity)

1. यांत्रिक एकता व्यक्ति को बिना किसी मध्यस्थ के समाज से सीधे जोड़ देती है जबकि सावयवी एकता में सदस्यों की पारस्परिक निर्भरता उन्हें समाज से प्रत्यक्ष रूप में जोड़ती है।

2. यांत्रिक एकता समाज में सामूहिक रूप को प्रकट करती है अर्थात् समाज में कुछ ऐसी भावनाएँ और विश्वास पाये जाते हैं जिन्हें समाज के सभी सदस्य समान रूप से स्वीकार करते हैं। सावयवी एकता में कार्यों की भिन्नता और विशेषीकरण पाया जाता है जो पारस्परिक सम्बन्धों की एक निश्चित व्यवस्था को जन्म देते हैं।

3. यांत्रिक एकता का आधार समाज में व्याप्त समानता है तो सावयवी एकता का आधार भिन्नता और विशिष्टता है। अन्य शब्दों में, हम यह कहते हैं कि यांत्रिक एकता समानता पर आधारित है तो सावयवी एकता श्रम-विभाजन पर।

4. यांत्रिक एकता की अभिव्यक्ति दमनकारी कानूनों में होती है जबकि सावयवी एकता की प्रतिकारी कानूनों में। प्राचीन समाजों में जहाँ दमनकारी कानून-व्यवस्था देखने को मिलती है, वहाँ यांत्रिक एकता की प्रधानता पायी जाती है। इसके विपरीत जैसे-जैसे समाजों का विकास होता है, वैसे-वैसे दमनकारी कानूनों का स्थान प्रतिकारी कानून लेने लगते हैं। ऐसे समाजों में सावयवी एकता पायी जाती है।

5. यांत्रिक एकता सामूहिकता पर बल देती है तो सावयवी एकता वैयक्तिकता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भिन्नता पर।

6. यांत्रिक एकता की शक्ति सामूहिक चेतना में पायी जाती है जबकि सावयवी एकता की उत्पत्ति कार्यात्मक भिन्नता पर निर्भर है। सामूहिक चेतना की शक्ति का ह्रास होने पर सावयवी एकता में वृद्धि होती है। इस प्रकार सामूहिक चेतना और सावयवी एकता परस्पर विरोधी दिशाओं में गमन करने हैं। सावयवी समाज की सुदृढ़ता सामूहिक प्रतिनिधि द्वारा बनी रहती है।

7. यांत्रिक एकता व्यक्ति और समाज के बीच प्रत्यक्ष एवं सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है, व्यक्ति अपने विचारों एवं कार्यों में समाज को ध्यान में रखता है। सावयवी एकता में व्यक्ति और समाज में सीधा सम्बन्ध नहीं वरन् अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। विशिष्ट कार्यों के लिए वह अन्य व्यक्तियों पर निर्भर होता है।

8. यांत्रिक एकता व्यक्तित्व के विकास में बाधक और उसके प्रतिकूल है। इस प्रकार की एकता वाले समाजों में सामान्य भावनाओं एवं प्रवृत्तियों का प्रभुत्व पाया जाता है, वहाँ व्यक्तिगत विशेषताओं और मौलिकता का विकास नहीं

नोट

हो पाता, व्यक्ति पर समूह छाया रहता है तथा वैयक्तिकता शून्य हो जाती है। दूसरी ओर सावयवी एकता व्यक्ति के विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करती है, वहाँ समूह व्यक्ति के व्यक्तित्व को निगलता नहीं है। दुर्खीम ने बताया है कि सावयवी एकता वाले समाजों में प्रत्येक व्यक्ति का अपना कार्य-क्षेत्र होता है जो उसके लिए विशिष्ट है अर्थात् उसका एक व्यक्तित्व होता है।

9. दुर्खीम **यान्त्रिक एकता की तुलना निर्जीव और अचेतन वस्तुओं से करते हैं।** निर्जीव वस्तु का निर्माण करने वाले तत्व परस्पर एकाकार एवं घुले-मिले होते हैं, उनकी अपनी कोई पृथक् क्रिया नही होती वरन् सभी ही हिलते-डुलते हैं। ऐसी स्थिति यान्त्रिक एकता वाले समाजों में होती है। **सावयवी एकता की तुलना शरीर से की गयी है** जिसमें प्रत्येक अंग की अपनी विशिष्ट रचना और स्वतन्त्र एवं विशिष्ट कार्य होता है। फिर भी वे शरीर के साथ जुड़े होने के कारण एकता को प्रकट करते हैं।

10. **यान्त्रिक एकता** में जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की **सामूहिक भावनाओं का प्रचलन पाया जाता है** जो समूह जीवन का आधार होती हैं। **सावयवी एकता में भावनाओं के स्थान पर नियमों को अधिक महत्त्व दिया जाता है।**

11. यान्त्रिक एकता में **अपराध के स्वरूपों की संख्या अधिक होती है।** परिवार, यौन-जीवन, धर्म, राष्ट्र, सामूहिक जीवन, सामूहिक चेतना, आदि व्यक्ति से एक निश्चित प्रकार का आचरण करने की अपेक्षा करते हैं। व्यक्ति की एक छोटी-सी भूल भी अपराध की श्रेणी में आ जाती हैं। **सावयवी एकता में अपराधों के प्रकारों की संख्या कम हो जाती है।** परिवार एवं विवाह से सम्बन्धित अपराध तो लगभग समाप्त हो ही जाते हैं।

12. यान्त्रिक एकता का **सम्बन्ध खण्डात्मक सामाजिक संरचना से है** जिसमें प्रत्येक अंग समान प्रकार की सामाजिक क्रियाओं को दोहराता है **जबकि सावयवी एकता में संगठित संरचना पायी जाती है।** विशिष्ट कार्यों को करने वाले विशिष्ट समूह होते हैं जो निर्भर होते हैं।

13. **यान्त्रिक एकता में धर्म की प्रधानता पायी जाती है।** समाज और मानव की सभी क्रियाओं का नियंत्रण, निर्देशन और नियमन धर्म के द्वारा होता है। **सावयवी एकता में धर्म का प्रभाव घट जाता है और इसका विशेषीकरण हो जाता है।**

14. **यान्त्रिक एकता प्राचीन, सरल और आदिम समाजों में पायी जाती है** जहाँ समाज में समानता और सामूहिकता का साम्राज्य होता है। **सावयवी एकता आधुनिक समाजों का लक्षण है** जिनमें श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण की बहुलता पायी जाती है।

15. यान्त्रिक समाज में भेद-भाव नही होता जबकि सावयवी समाज में पर्याप्त विभेदीकरण पाया जाता है कार्य की विशिष्टता एवं दक्षता विभेदीकरण को जन्म देती है।

16. यान्त्रिक समाज की सुदृढ़ता नैतिकता पर आधारित होती है, लोग परम्परा के अनुसार अपने दायित्व निर्वाह की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं जबकि सावयवी समाज की सुदृढ़ता समझौते या संविदा पर आधारित होते है। समझौते का पालन करना दायित्व होता है।

17. यान्त्रिक एकता वाले समाजों में श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण का अभाव पाया जाता है जबकि सावयवी समाज में इन दोनों की बहुलता।

दुर्खीम का मत है कि **सावयवी एकता संविदात्मक सम्बन्धों को जन्म** देती है। श्रम-विभाजन में लोग अलग-अलग प्रकार के कार्य करते हैं। समझौते के आधार पर ही वे एक-दूसरे को सहयोग देते हैं एवं सेवाएँ प्राप्त करते हैं।

दुर्खीम ने सामाजिक उद्विकास का सम्बन्ध भी श्रम-विभाजन और सामाजिक एकता से जोड़ा है। प्रारम्भ में समाज यान्त्रिक एकता पर निर्भर था जिसमें श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण नहीं था, दमनकारी कानून प्रचलित थे, सामूहिक

नोट

चेतना प्रबल थी, समूह समानता की प्रधानता थी। धीरे-धीरे समाज में सदस्यों की संख्या और आवश्यकताओं में वृद्धि हुई तो श्रम-विभाजन और विशेषीकरण पनपा, व्यक्तिगत भिन्नताएँ बढ़ीं, प्रतिकारी कानून बने, सामूहिकता का ह्रास हुआ और वैयक्तिकता में वृद्धि हुई, समानता का स्थान विभिन्नता ने ले लिया। ऐसे समाजों में सावयवी एकता पायी जाती है। इस प्रकार समाज के उद्विकास के दौरान यान्त्रिक एकता और धर्म का प्रभाव क्रमशः घटता जाता है और सामाजिक संरचना की जटिलता में वृद्धि होती है।

नोट्स दुर्खीम यह भी स्वीकार नहीं करते कि श्रम-विभाजन के कारण मानव के सुख में वृद्धि होती है या सुख-वृद्धि की इच्छा ही श्रम-विभाजन को जन्म देती है। श्रम-विभाजन एक सामाजिक तथ्य है जिसका विश्लेषण मनोविज्ञान का कार्य है, समाजशास्त्र का नहीं।

श्रम-विभाजन के कारण (Causes of division of Labour)

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'समाज में श्रम-विभाजन' के दूसरे खण्ड में श्रम-विभाजन के कारकों, दशाओं एवं परिणामों की व्याख्या की है। श्रम-विभाजन चूँकि एक सामाजिक तथ्य है, अतः दुर्खीम ने इसके कारणों की खोज भी सामाजिक जीवन की दशाओं एवं उनकी आवश्यकताओं में ही की है। श्रम-विभाजन के दुर्खीम ने दो कारक माने हैं—प्राथमिक और द्वितीयक। प्राथमिक कारकों में वह जनसंख्या वृद्धि एवं उसके परिणमों को मानता है। द्वितीयक कारकों में वह (*i*) सामान्य आत्मा (चेतना) की बदली हुई अवस्था और (*ii*) 'पैतृकता के घटते प्रभाव' को सम्मिलित करता है। **हम यहाँ श्रम-विभाजन के इन सभी कारकों का उल्लेख करेंगे।**

1. जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि: दुर्खीम **जनसंख्या के आकार और घनत्व** में वृद्धि को श्रम-विभाजन का प्राथमिक कारक मानते हैं। वे लिखते हैं, "श्रम-विभाजन समाजों की जटिलता और घनत्व के साथ सीधे अनुपात में विचरण करता है, और यदि सामाजिक विकास के दौरान यह निरन्तर वृद्धि करता है तो इसका कारण यह है कि समाज नियमित रूप से अधिक घने और सामान्यतः अधिक जटिल हो जाते हैं।" **जनसंख्या वृद्धि दो रूपों में होती है**—(*i*) जनसंख्या के आकार में वृद्धि तथा (*ii*) जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि। जनसंख्या में वृद्धि होने पर खण्डात्मक समाज धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं तथा उनके स्थान पर मिश्रित समाज जन्म लेते हैं। विशेष केन्द्रों पर जनसंख्या का जमाव होने लगता है। जनघनत्व भी दो प्रकार का होता है। (*i*) **भौतिक घनत्व**, जिसमें शारीरिक दृष्टि से लोग एक ही स्थान पर केन्द्रित होने लगते हैं। (*ii*) **नैतिक घनत्व**, जो भौतिक घनत्व का ही परिणाम है। इससे लोगों के सम्बन्धों में, उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में वृद्धि होती है। लोगों की अन्तःक्रियाओं में वृद्धि से जटिलता उत्पन्न होती है जिसे गतिशील या नैतिक घनत्व कहते हैं। जनसंख्या के आकार तथा घनत्व मे वृद्धि होने पर लोगों की पारस्परिक जागरूकता में भी वृद्धि होती है जो नैतिक घनत्व का प्रमुख कारण है। यातायात और संचार के साधनों में वृद्धि होने पर जनसंख्या का भौतिक घनत्व भी बढ़ता है। जब जनसंख्या में वृद्धि होती है तो अस्तित्व के लिए संघर्ष (struggle for existence) भी बढ़ता है।

2. सामूहिक आत्मा (चेतना) का उत्तरोत्तर ह्रास: श्रम-विभाजन के द्वितीयक कारकों में से प्रथम कारक सामूहिक आत्मा का क्रमिक ह्रास है। दुर्खीम लिखते हैं, **"यह देखा जा सकता है कि श्रम-विभाजन की प्रगति उतनी ही अधिक कठिन और धीमी होगी, जितनी सामूहिक आत्मा सशक्त और निश्चित है। इसके विपरीत, यह उतनी ही अधिक तीव्र होगी जितनी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत पर्यावरण के साथ सामंजस्य करने में समर्थ है।"** प्राचीन समाजों में जहाँ समानताएँ अधिक होती हैं, वहाँ वैयक्तिकता के स्थान पर सामूहिकता की प्रधानता होती है। व्यक्ति सामूहिक हित और भावनाओं द्वारा मार्ग-दर्शन प्राप्त करता है, किन्तु जब व्यक्तिगत हित एवं दृष्टिकोण सामूहिक हितों

को दबा दे, व्यक्तिगत चेतना सामूहिक चेतना पर छा जाय तो श्रम-विभाजन और विशेषीकरण पनपता है। सामूहिक चेतना के घटने और कमजोर होने पर ही व्यक्तिगत चेतना और श्रम-विभाजन में वृद्धि होती है।

3. पैतृकता का घटता प्रभाव: दुर्खीम का विचार है कि पैतृकता का जितना अधिक प्रभाव होता है, परिवर्तन के अवसर उतने ही कम होते हैं। पैतृकता के आधार पर जब समाज में व्यवसाय अथवा कार्यों का बँटवारा किया जाता है तो श्रम-विभाजन के विकास में बाधाएँ आती हैं। जब समाज में पैतृकता का प्रभाव क्षीण होता है तो श्रम-विभाजन को बढ़ावा मिलता है। प्राचीन समाजों में जहाँ जीवन सरल और सामान्य होता है, पैतृकता का प्रभाव भी अधिक होता है जबकि आधुनिक समाजों में विशेषीकरण के कारण पैतृकता का प्रभाव क्षीण हो जाता है।

इस प्रकार दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के कारणों की खोज आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों में न कर समाजशास्त्रीय कारकों में की है।

श्रम-विभाजन के परिणाम (Consequences of Division of Labour)

दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के विभिन्न परिणामों का भी उल्लेख किया है जो निम्नांकित हैं:

1. **प्रकार्यात्मक स्वतन्त्रता और विशेषीकरण** (Functional Independence and Specialisation)**:** श्रम-विभाजन का एक परिणाम यह होता है कि कार्यों के विभाजन के साथ-साथ कार्य करने की स्वतन्त्रता और गतिशीलता में वृद्धि होती जाती है। इससे कार्यों के परिवर्तन के अवसर भी बढ़ जाते हैं। श्रम-विभाजन में व्यक्ति अपनी क्षमताओं को विशिष्ट कार्य में लगा देता है, इन क्षमताओं का उपयोग होने से वे दिनों-दिन परिष्कृत होती जाती हैं। श्रम-विभाजन का एक परिणम यह भी होता है कि व्यक्तियों के कार्य उनके शारीरिक लक्षणों से स्वतन्त्र हो जाते हैं। फलस्वरूप कार्यों की परिवर्तनशीलता भी बढ़ जाती है। इस प्रकार **प्रकार्य का संरचना से स्वतन्त्र होना, उसका गतिशील होना और विशिष्ट होना प्रगति की निशानी हैं। प्रकार्यात्मक जटिलता में ही प्रगति का रहस्य है।**

2. **सभ्यता का विकास:** दुर्खीम ने सभ्यता को श्रम-विभाजन का परिणाम माना है। जैसे-जैसे श्रम-विभाजन का विकास होता है वैसे-वैसे सभ्यता का भी विकास होता है। जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि से श्रम-विभाजन में वृद्धि होती है जो सभ्यता को भी विकसित करती है। दुर्खीम के अनुसार श्रम-विभाजन का लक्ष्य और कार्य सभ्यता का विकास नहीं है वरन् यह तो उसका आवश्यक परिणाम है।

3. **सामाजिक प्रगति:** परिवर्तन से ही प्रगति होती है और श्रम-विभाजन भी परिवर्तनों को जन्म देता है। परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत नियम है जो सदैव होता रहता है। परिवर्तन के रुकने पर प्रगति भी रुक जाती है और प्रगति के रुकने का तात्पर्य है समाज में स्थिरता आ जाना, उसका जीवन और अस्तित्व खतरे में पड़ जाना। दुर्खीम परिवर्तन की प्राकृतिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या के स्थान पर सामाजिक व्याख्या करते हैं। उनका मत है कि समाज ही प्रगति एवं परिवर्तन का कारण है। समाज गतिशील है, यदि समाज रुक जाता है तो प्रगति भी रुक जाती है। परिवर्तन एवं प्रगति का मुख्य कारण भी श्रम-विभाजन है।

4. **सामाजिक परिवर्तन एवं व्यक्तिगत परिवर्तन:** दुर्खीम व्यक्तिगत एवं सामाजिक परिवर्तन के लिए भी श्रम-विभाजन को उत्तरदायी मानते हैं। समाज में परिवर्तन के लिए जनसंख्या के आकार, वितरण और घनत्व में होने वाला परिवर्तन उत्तरदायी है। इसी के कारण ही समाज में श्रम-विभाजन पैदा होता है। सामाजिक परिवर्तन के कारण ही समस्त व्यक्तिगत परिवर्तन भी होते हैं क्योंकि व्यक्ति समाज का ही अंग है।

5. **नवीन समूहों की उत्पत्ति और अन्तर्निर्भरता:** श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप विशेष प्रकार के कार्यों में लगे व्यक्तियों में विशेष प्रकार के हितों का विकास हो जाता है जिनकी रक्षा के लिए विशेष वर्गों तथा समूहों का निर्माण होता है। ये समूह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परस्पर सहयोग करते हैं उनमें अन्तनिर्भरता पायी जाती

नोट

है। जितना अधिक श्रम-विभाजन होगा, उतनी ही अधिक पारस्परिक निर्भरता बढ़ेगी। इस प्रकार श्रम-विभाजन नवीन समूहों, उनकी अन्तर्निभरता और सहयोग को जन्म देता है।

6. **व्यक्तिवादी विचारधारा:** श्रम-विभाजन के बढ़ने के साथ-साथ सामूहिक चेतना शिथिल होती जाती है और व्यक्तिगत चेतना मे वृद्धि होती है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और स्वार्थ बढ़ते हैं जो व्यक्तिवादी विचारधारा को जन्म देते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्तिवादी भावना का विकास हो जाता है। प्रदत्त के स्थान पर अर्जित पदों का महत्त्व भी बढ़ जाता है।

7. **प्रतिकारी कानून और नैतिक दबाव:** श्रम-विभाजन कानूनी व्यवस्था को भी बदल देता है। यान्त्रिक एकता वाले समाजों में जहाँ सभी प्रकार की समानताएँ पायी जाती हैं, दमनकारी कानून पाये जाते हैं, किन्तु श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण समाज में पारस्परिक सम्बन्धों का विस्तार और जटिलता में वृद्धि होती है, लोगो में संविदात्मक सम्बन्ध पनपते हैं। व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए प्रतिकारी कानून बनाये जाते हैं। श्रम-विभाजन जहाँ एक तरफ व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन देता है, वहीं दूसरी तरफ सामूहिक हितों से सम्बन्धित नैतिकता को भी विकसित करता है जो व्यक्तिगत चेतना, व्यक्तिगत स्वार्थ और स्वतन्त्रता पर नियन्त्रण रखती है।

8. **सावयवी सामाजिक एकता:** श्रम-विभाजन के अभाव में समाज में जो एकता थी, वह यान्त्रिक प्रकार की थी। श्रम-विभाजन के कारण समाज में सावयवी एकता स्थापित होती है जिसमें विभिन्न अंगों में परस्पर प्रकार्यात्मक निर्भरता एवं सहयोग पाया जाता है। इस प्रकार की एकता का हम पूर्व में विस्तार से उल्लेख कर चुके हैं।

श्रम-विभाजन के असमान्य स्वरूप (Abnormal forms of divisions of Labour)

'समाज में श्रम-विभाजन' ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के कुछ असामान्य स्वरूपों का उल्लेख किया है। श्रम-विभाजन के जहाँ कुछ अच्छे परिणाम निकलते हैं, वहीं इसके कुछ व्याधिकीय परिणाम भी उत्पन्न होते हैं। श्रम-विभाजन का एक प्रकार्य समाज में सावयवी एकता उत्पन्न करना है। श्रम-विभाजन के जो स्वरूप समाज में एकता स्थापित नहीं करते, दुर्खीम उन्हें श्रम-विभाजन के असामान्य स्वरूप कहता है। असमान्य स्वरूपों के अध्ययन से ही हम सामान्य स्वरूपों को स्पष्टत: समझ सकते हैं तथा सामाजिक एकता के लिए कौन-कौन सी आवश्यक दशाएँ हैं, यह जान सकते हैं। **दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के तीन असामान्य स्वरूपों का उल्लेख किया है—आदर्शहीन श्रम-विभाजन, बलात् श्रम-विभाजन तथा व्यक्तिगत कार्य की अपर्याप्तता वाला श्रम-विभाजन।**

1. **आदर्शहीन श्रम-विभाजन** (Anomic Division of Labour)**:** श्रम विभाजन की प्रक्रिया में कई बार ऐसा भी होता है कि उनके सामाजिक कार्यों में परस्पर ताल-मेल नहीं रह पाता है। वे परस्पर सहयोग करने के स्थान पर एक दूसरे के विकास में बाधक बन जाते हैं। श्रम-विभाजन का सामान्य आदर्श तो यह है कि विभिन्न इकाइयों के बीच सहयोग एवं सम्बद्धता हो। अत: जब श्रम-विभाजन विभिन्न कार्यों के बीच असामंजस्य पैदा कर दे तो उसे हम आदर्शहीन श्रम-विभाजन कहेंगे। इस प्रकार का श्रम-विभाजन से उत्पादन एवं विज्ञानों की एकता समाप्त हो जाती है।

(*i*) **आर्थिक क्षेत्र में** श्रम-विभाजन के कारण उद्योगों में विशेषीकरण बढ़ता है, इससे एकता की बजाय संघर्ष पनपता है। मालिक एवं मजदूर में संघर्ष पनपता है। हड़ताल, तालाबन्दी, उपद्रव एवं क्रान्ति की घटनाएँ बढ़ती हैं। व्यापारिक संकट और आर्थिक असफलता सावयवी एकता में बाधा उत्पन्न करते हैं। श्रम-विभाजन के कारण जब विभिन्न सामाजिक कार्यों में सामंजस्य नहीं होता तो वे सहयोग के बजाय संघर्ष को जन्म देते हैं जो कि विकास में बाधक है। श्रम एवं पूँजी का संघर्ष भी आदर्शहीन श्रम-विभाजन का स्वरूप है।

(*ii*) **वैज्ञानिक क्षेत्र** में पहले विज्ञानों का विभाजन नहीं था। एक व्यक्ति एक साथ सभी विज्ञानों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता था, सब विज्ञानों पर एक साथ अधिकार प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार उस समय विज्ञानों मे एकता पायी जाती थी, किन्तु अब जबकि विज्ञानों का विभाजन हो गया है तो एक व्यक्ति केवल एक ही विज्ञान

से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक विज्ञान की भी शाखाएँ और उप-शाखाएँ हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अपने को अपने ही क्षेत्र का सिकन्दर मानता है। इससे विज्ञानों की एकता नष्ट हुई है। इस प्रकार आर्थिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्र मे अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को टूटने से आदर्शहीनता उत्पन्न हुई है।

2. **बलात् श्रम-विभाजन** (Forced Division of Labour): दुर्खीम कहते हैं कि श्रम-विभाजन से एकता तभी स्थापित होती है जब लोगों को उनकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार कार्य मिले। वे वर्ग एवं जाति का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि इनका निर्माण श्रम-विभाजन के संगठित रूप को प्रकट करता है, किन्तु कई बार ये एकता के बजाय महत्त्वाकांक्षी पीड़ा और दु:ख को जन्म देते हैं, विशेष रूप से तब जब ये लोगों को उनकी रुचि के अनुरूप कार्य नहीं देते और जबरन उन्हें अपने पूर्व-निश्चित कार्यों से बंधा रहना पड़ता है या उनसे शक्ति के द्वारा काम कराया जाता है। ऐसा श्रम-विभाजन समाज में पूर्ण एकता स्थापित नहीं करता। बाह्य रूप से थोपा गया श्रम-विभाजन बलात् श्रम-विभाजन है।

3. **व्यक्तिगत कार्य की अपर्याप्तता** (Insufficient Individual Activity): श्रम-विभाजन का तीसरा असामान्य स्वरूप वैयक्तिक कार्य की अपर्याप्तता में देखा जा सकता है। कई बार ऐसा भी होता है कि व्यवसायिक एवं औद्योगिक संस्थाओं मे कार्य करने वाले लोगों को पर्याप्त मात्रा में कार्य प्राप्त नहीं होता है अथवा उनके कार्यों में कोई समन्वय नहीं होता। तब अव्यवस्था और असम्बद्धता फैलती है और श्रम-विभाजन एकता पैदा नहीं करता है।

समीक्षात्मक विश्लेषण (Critical Analysis)

दुर्खीम ने श्रम-विभाजन की समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत करके सामाजिक अध्ययन को एक नयी दिशा दी। श्रम-विभाजन को एक नैतिक आवश्यकता के रूप में प्रकट कर आपने इस बात पर बल दिया कि सामाजिक जीवन एक नैतिक आवश्यकता में निहित है। एकता समाज की आत्मा है जिसके अभाव में समाज निष्प्राण एवं निष्क्रिय हो जायेगा। दुर्खीम की 'समाज में श्रम-विभाजन' नामक कृति में उनकी प्रत्यक्षवादी पद्धति का व्यवहारिक उपयोग एवं समूहवादी या समाजशास्त्रीवादी चिन्तन के अंकुर देखे जा सकते हैं। 'सामूहिक चेतना' की अवधारणा का विकास भी इसी ग्रन्थ में हुआ। नैतिकता के समाजशास्त्र की उत्पत्ति भी इसी में हुई। चूँकि यह दुर्खीम का पहला ग्रंथ था इसीलिए **बीरस्टीड** ने इस ग्रंथ को ऐसी रचना कहा जो उसके विचार के निर्माण की अवस्था को प्रकट करती है और जिसमें उसका चिन्तन परिपक्व अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ। **मर्टन, बार्नेस, बोगार्डस, गिन्सबर्ग, बीरस्टीड** आदि अनेक विद्वानों ने दुर्खीम की श्रम-विभाजन की अवधारणा की आलोचना की है। जो अग्र प्रकार है–

1. **मर्टन** ने दुर्खीम की आलोचना इस प्रकार पर की है कि आपने लक्ष्य या उद्देश्य के स्थान पर प्रकार्य शब्द का प्रयोग किया है जो कि उपयुक्त नहीं है।

2. **दुर्खीम** ने सामाजिक एकता की अवधारणा का इस ग्रंथ में विकास किया है, किन्तु एकता एक भावात्मक तथ्य है न कि सामाजिक। एकता का प्रत्यक्ष स्वरूप प्रचलित कानून-व्यवस्था में देखा जा सकता है। दुर्खीम की एकता व सामाजिक एकता की यह अवधारणा भी समाजशास्त्र की बजाय मनोविज्ञान से सम्बन्धित है क्योंकि एकता का मानसिक पहलू है।

3. **रेमण्ड एरन** ने दुर्खीम की इस आधार पर आलोचना की है कि आपने यांत्रिक एकता वाले समाजों को खण्डात्मक समाज भी कहा है जो अपने आप में एक पूर्ण पृथक् समाज होता है। दुर्खीम ने अपने आधुनिक प्रगतिशील समाज द्वारा भी खण्डात्मक समाज रचना बनाये रखने की सम्भावना व्यक्त की है। इस प्रकार आपने सावयवी एकता, श्रम-विभाजन, औद्योगिक विशेषीकरण तथा खण्डात्मक समाज-व्यवस्था का सामंजस्य दिखाकर सामाजिक एकता के सिद्धांत को उलझा दिया है।

नोट

4. **बीरस्टीड** कहते हैं कि दुर्खीम ने प्राचीन एवं आधुनिक समाजों का भेद उनमें व्याप्त समानता एवं विभेद के आधार पर किया है जो कि उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सभी समाजों में कुछ मात्रा में समानता एवं भिन्नता पायी जाती है।

5. दुर्खीम ने एकता के दो स्वरूपों (यांत्रिक एवं सावयवी) का उल्लेख किया है जो क्रमश: प्राचीन एवं आधुनिक समाजों की आंतरिक प्रकृति को प्रकट करती है। आपने यांत्रिक एकता की जिस प्रकृति का उल्लेख किया है, वह केवल प्राचीन समाजों में ही नहीं वरन् विकसित तथा ग्रामीण समाजों में भी देखी जा सकती है।

6. दुर्खीम की सामूहिक चेतना की अवधारणा की भी आलोचना की गयी है। समाज में प्रचलित सामान्य भावनाओं, विश्वासों और समानताओं के कारण सामूहिक चेतना का विकास होता है। सामूहिक चेतना समूह मन का पर्यायवाची कही जा सकती है जो कि एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, किन्तु दुर्खीम इसे सामाजिक मानते हैं क्योंकि इसकी उत्पत्ति का स्रोत समाज है। इस प्रकार दुर्खीम ने मनोवैज्ञानिक तथ्य को समाजशास्त्रीय बनाने की हठधर्मी की है।

7. दुर्खीम ने श्रम-विभाजन के आधार पर सामाजिक उद्‌विकास की व्याख्या की। **मर्टन** ने उनके उद्‌विकासीय सिद्धांत की आलोचना की। दुर्खीम उद्‌विकास के एक छोर पर प्राचीन समाजों को और दूसरे पर आधुनिक समाजों को रखते हैं। इस प्रकार आपने उद्‌विकास की रेखीय व्याख्या की है। केवल श्रम-विभाजन को समस्त सामाजिक उद्‌विकास का कारण बताकर दुर्खीम ने अत्यन्त जटिल समस्या की बहुत सरल व्याख्या कर दी है।

8. **बोगार्डस, गिन्सबर्ग, बार्नेस, सोरोकिन, एरन और मर्टन** आदि ने दुर्खीम द्वारा प्रस्तुत श्रम-विभाजन के कारणों की आलोचना की है। दुर्खीम ने श्रम-विभाजन का प्राथमिक कारण जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि को माना है जो कि एक जीवशास्त्रीय व्याख्या है न कि सामाजिक। **बार्नेस** के शब्दों में, "स्पष्ट रूप से यह (श्रम-विभाजन) समाजशास्त्रीय की अपेक्षा एक जीवशास्त्रीय व्याख्या है। बोगार्डस और गिन्सबर्ग ने भी दुर्खीम की इसी आधार पर आलोचना की है।

9. श्रम-विभाजन के परिणामों की व्याख्या दुर्खीम ने स्पष्ट रूप से की है। उन्होंने सभ्यता और प्रगति को श्रम-विभाजन का परिणाम माना है, किन्तु उन्होंने कारणों और परिणामों को उलझा दिया है। यह निश्चित करना सरल नहीं है कि जिन परिणामों की ओर दुर्खीम ने संकेत किया है, उन सबका आधार श्रम-विभाजन ही है।

10 **मर्टन और बार्नेस ने दुर्खीम की पद्धति की आलोचना की है।** उनका मत है कि दुर्खीम ने श्रम-विभाजन तथा सामाजिक एकता के अध्ययन में भौतिक विज्ञान की पद्धति का मनमाना प्रयोग किया है। दुर्खीम ने कानून और एकता के विभिन्न प्रकारों में विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है।

11. सोरोकिन, बार्नेस तथा मर्टन आदि विद्वानों ने दुर्खीम के समूहवादी दृष्टिकोण की आलोचना की है। दुर्खीम ने अपने इस ग्रंथ में प्रारंभ से लेकर अन्तर तक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि समाज व्यक्ति का निर्माण करता है, वही उसके जीवन का आधार है। व्यक्ति समाज के समक्ष कुछ भी नहीं है। इस प्रकार दुर्खीम व्यक्ति की तुलना में समाज को महत्त्व देने में अतिवादी हो गये हैं।

12. बार्नेस तथा मर्टन आदि विद्वान दुर्खीम द्वारा व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता में किये गये भेद को भी स्पष्ट नहीं मानते। नैतिकता, नैतिकता है; व्यक्तिगत और सामाजिक इसके दो भेद नहीं हो सकते। व्यक्ति के प्रति नैतिकता का आचरण अन्तत: समाज के प्रति ही नैतिकता प्रकट करना है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी हमें इस तथ्य को तो स्वीकार करना ही होगा कि दुर्खीम ने अपने इस ग्रंथ में अनेक समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को जन्म दिया और समाजशास्त्रीय साहित्य में उनकी यह अमूल्य निधि है। अन्त में हम जार्ज सिम्पसन के शब्दों में कह सकते हैं कि "उस व्यक्ति की प्रथम महान कृति जिसने लगभग चौथाई शताब्दी तक फ्रांसीसी विचारधारा पर नियंत्रण किया और जिसका प्रभाव अब भी घटने की अपेक्षा बढ़ रहा है, ऐतिहासिक तथा प्रसंग की दृष्टि से यह आज भी ऐसी पुस्तक है जो उन सभी के द्वारा पढ़ी जानी चाहिए जो सामाजिक विचारधारा के ज्ञान और सामाजिक समस्याओं में रुचि रखते हैं।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. ········· ने सामाजिक एकता की अवधारणा का इस ग्रंथ में विकास किया है, किन्तु एकता एक भावात्मक तथ्य है न कि सामाजिक।
5. दुर्खीम ने श्रम-विभाजन की ········· व्याख्या प्रस्तुत करके सामाजिक अध्ययन को एक नई दिशा दी।
6. ········· ने दुर्खीम की इस आधार पर आलोचना की है कि आपने यांत्रिक एकता वाले समाजों को खण्डात्मक समाज भी कहा है जो अपने आप में एक पूर्ण पृथक् समाज होता है।

15.2 सारांश (Summary)

- श्रम-विभाजन के फलस्वरूप समाज में सावयवी एकता या संगठन पनपा है अर्थात् विभिन्न सामाजिक कार्यों को समाज की विभिन्न इकाइयाँ करती तो अवश्य हैं, पर उनमें सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर अन्त:सम्बन्ध और अन्त:निर्भरता बनी रहती है।
- श्रम-विभाजन के फलस्वरूप श्रम का विशेषीकरण भी हुआ है क्योंकि श्रम-विभाजन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य करता है; और एक ही प्रकार के कार्य को निरन्तर करते रहने से उसे उस कार्य के सम्बन्ध में उत्तरोत्तर ज्ञान प्राप्त होता जाता है और वह उस कार्य में विशेषज्ञ बनता जाता है।
- श्रम-विभाजन ने समाज में व्यक्तिवादी भावनाओं को पनपाया है। श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के फलस्वरूप व्यक्तिगत भिन्नताएँ बढ़ती जाती हैं, व्यक्तियों के अलग-अलग कार्य, अनुभव तथा व्यक्तित्व होते हैं। पर इनका तात्पर्य यह नहीं कि श्रम-विभाजन ने व्यक्ति को अधिकाधिक स्वार्थी बना दिया है बल्कि इसके विपरीत श्रम-विभाजन ने उसे दूसरों के ऊपर निर्भर बनाकर दूसरों के लिए सोचने को मजबूर कर दिया है। श्रम-विभाजन के कारण सामाजिक कल्याण कार्यों में उसका योगदान बढ़ गया है।
- श्रम-विभाजन और विशेषीकरण के कारण व्यक्तिगत गुण तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का महत्त्व भी बढ़ गया है।
- श्रम-विभाजन समाज के विभिन्न सदस्यों और समूहों को एक-दूसरे पर निर्भर कर देता है। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण व्यक्तिवाद की भावना अपने कटु रूप में पनप नहीं पाती है। श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक व्यक्ति पर इस प्रकार का एक नैतिक दबाव होता है कि वह अधिकाधिक विशेषीकरण के द्वारा अपने व्यक्तित्व का अधिकतम विकास करे, ताकि वह समाज के प्रति अपने नैतिक कर्तव्यों का पालन भी कर सके।

15.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **यांत्रिक एकता (Mechanical Solidarity):** किसी समष्टि के निर्णायक भागों द्वारा अपने-अपने पृथक् अस्तित्व को समष्टि में पूर्णत: विलीन कर देने को दुर्खीम ने यांत्रिक एकता की स्थिति कहा है अर्थात् जब व्यक्ति का व्यक्तित्व सामूहिक व्यक्तित्व में समहित हो जाता है।

नोट

2. **सावयवी एकता (Organic Solidarity):** जब किसी समष्टि के निर्णायक भाग समष्टि में मिलकर भी अपनी पृथक् अस्तित्व बनाये रखते हैं, वे अपना अस्तित्व समष्टि में विलीन होने नहीं देते, इस स्थिति में दुर्खीम ने सावयवी एकता कहा है।

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. श्रम-विभाजन के सामाजिक परिणामों का विस्तार से उल्लेख करें।
2. श्रम-विभाजन के आधार पर समाज में व्याप्त एकता का विश्लेषण करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अवलोकन एवं परीक्षण	2. सदस्यों	3. दमनकारी
4. दुर्खीम	5. समाजशास्त्रीय	6. रेमण्ड एरन।

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. सोशियोलॉजी—टी.बी. बोटोमोर।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।

नोट

इकाई–16 : आत्महत्या का सिद्धान्त (Theory of Suicide)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

16.2 सारांश (Summary)

16.3 शब्दकोश (Keywords)

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आत्महत्या विषय की वैज्ञानिक विवेचना।
- आत्महत्या का कारण जानना।
- आत्महत्या के सामाजिक कारक को जानना।
- आत्महत्या के प्रकार को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

दुर्खीम ने अपनी दूसरी पुस्तक के पश्चात् आत्महत्या, उसके प्रकार एवं कारणों का विश्लेषण करने के लिए एक अत्यन्त विद्वतापूर्ण रचना 'ली सुसाइड' लिखी, जो सन् 1897 ई. में प्रकाशित की गई। दुर्खीम की यह रचना उसकी दूसरी रचना के दो वर्ष बाद प्रकाशित हुई। इस रचना में आत्महत्या के प्रकारों के साथ इनका निर्धारण करने वाले सामाजिक कारकों एवं उनके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इस रचना के माध्यम से दुर्खीम ने आत्महत्या का सामाजिक तथ्य प्रमाणित किया है। यह कार्य आत्महत्या का केवल एक सैद्धान्तिक विवेचना ही नहीं बल्कि यह सांख्यिकी तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित है।

नोट

इस प्रकार दुर्खीम ने फ्रांस के बोरडीयुक्स विश्वविद्यालय के अपने प्रवास में तीन प्रमुख कार्य किये। समाजशास्त्र में इन विद्वतापूर्ण कार्यों ने दुर्खीम को ख्यातिप्राप्त समाजशास्त्री एवं प्राध्यापक बनाया। अपने 'आत्महत्या' नामक ग्रन्थ की भूमिका में दुर्खीम ने लिखा है, समाजशास्त्र अब फैशन बन गया था। इन कार्यों के कारण दुर्खीम समाजशास्त्रीय समालोचनाओं का केन्द्र बन गया था। इन कार्यों के बाद दुर्खीम ने समाजशास्त्र को वैज्ञानिक पद्धति प्रदान करने के लिए कार्य किया।

16.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

आत्महत्या विषय का वैज्ञानिक विवेचन दुर्खीम का यह तृतीय महत्त्वपूर्ण योगदान है। दुर्खीम का यह ग्रन्थ 1897 में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का स्पाउल्डिंग व सिम्पसन ने अनुवाद किया जो 'आत्महत्या–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के माध्यम से दुर्खीम ने आत्महत्या के कारकों की दृष्टि से विचार प्रस्तुत किये हैं। ये ही विचार इसके आत्महत्या के सिद्धान्त के रूप में प्रकट हो गये हैं।

दुर्खीम ने अपने इस आत्महत्या सिद्धान्त के माध्यम से विभिन्न नये प्रयोगों और तथ्यों का उद्घाटन किया है। उसने हत्या के सामाजिक कारकों का विश्लेषण किया है। इन कारकों के अनुरूप उसने आत्महत्या के प्रकारों की विवेचना की है।

दुर्खीम के इस आत्महत्या सम्बन्धी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता यह है कि उसने आत्महत्या के वैयक्तिक व मनोवैज्ञानिक कारणों का बहिष्कार किया है और आत्महत्या के सामाजिक कारकों को ही उसने उत्तरदायी ठहराने का प्रयास किया है। दुर्खीम ने इस विचार-सारणी को प्रस्तुत करने के लिए भीषण परिश्रम किया। उसने आत्महत्या सम्बन्धी आंकड़ों की गहन खोज कर उन्हें एकत्रित किया। इस आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या एक सामाजिक घटना है और इसको एक सामाजिक तथ्य मानकर ही इसके अध्ययन पर बल दिया है।

नोट्स

दुर्खीम ने आत्महत्या के सम्बन्ध में प्रचलित सिद्धांतों का खण्डन किया है। उसके अनुसार आत्महत्या को मानसिक व वंशानुसंक्रमण कारण विकसित नहीं करते हैं। आत्महत्या सामूहिक जीवन में अवस्था होने से विकसित होती है। इसी केन्द्रीय विचार पर उसका यह प्रमुख सिद्धान्त विकसित हुआ है।

आत्महत्या की अवधारणा तथा कारण

आत्महत्या के सामान्य अर्थ की भ्रमकता को दूर करने के लिए दुर्खीम ने अपने ग्रन्थ में सर्वप्रथम इसकी अवधारणा सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं। इस दृष्टि से दुर्खीम ने सभी प्रकार के मृत्युओं की समीक्षा करके आत्महत्या से होने वाली मृत्यु के गुणों का निश्चयीकरण किया है और इन्हीं गुणों के आधार पर आत्महत्या को परिभाषित किया गया है। इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने लिखा है, "यद्यपि सामान्य रूप से यह माना जाता है कि आत्महत्या निश्चित रूप से एक हिंसात्मक कार्य है, जिसमें शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह भी हो सकता है कि व्यक्ति की एक नकारात्मक मनोवृत्ति या केवल कार्य-निवृत्ति से भी वही परिणाम निकलते हैं।" इस आधार पर दुर्खीम ने आगे स्पष्ट करते हुए लिखा है, "आत्महत्या शब्द का प्रयोग ऐसी किसी भी मृत्यु के लिए किया जा सकता है जो स्वयं किसी मृतक के द्वारा किये गए किसी सकारात्मक अथवा नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रतिफल है।"

नोट

परन्तु दुर्खीम आत्महत्या की इन परिभाषाओं से संतुष्ट नहीं हुआ है। उसका अपने इस सिद्धांत का प्रथम यही प्रयास रहा कि अन्य मृत्युओं में आत्महत्या द्वारा हुई मृत्यु में अन्तर किया जाए। उसने आत्महत्या की अपनी अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए यह प्रस्तावित किया है कि "आत्महत्या की बाहरी दशाएँ उल्लेखनीय स्थान रखती हैं। ये बाह्य दशाएँ इस दृष्टि से तब ही प्रभावशाली होती हैं जब हम उनमें हस्तक्षेप करते हैं।" क्योंकि हम आत्मघात करने वाले व्यक्ति की भावनाओं व उद्देश्यों की खोज नहीं कर सकते हैं।

आत्महत्या के गैर-सामाजिक कारण

आत्महत्या के प्रचलित कारणों की समीक्षा करने की दृष्टि से दुर्खीम ने व्यापक रूप से विचार किया है। इस दृष्टि से दुर्खीम ने गैर-सामाजिक कारकों को लिया है। इन कारकों के अन्तर्गत सावयवी मनोवैज्ञानिक क्षमताएँ एवं प्राकृतिक पर्यावरण आदि को दुर्खीम ने केन्द्र बनाया है। प्रथम दुर्खीम ने मनोव्याधिकीय अवस्थाओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इस दृष्टि से उसने पागलपन, एकोन्माद, प्रजाति व वंशानुसंक्रमण आदि कारकों पर अपने इस दृष्टि से सिद्धांत में समीक्षाएँ प्रस्तुत की हैं। इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने लिखा है कि ये सभी कारण आत्महत्या की वास्तविक प्रकृति को दर्शाने में असमर्थ हैं और इन्हें आत्महत्या का कारण नहीं माना जा सकता है।

अपने इस महान ग्रन्थ में दुर्खीम ने आगे आत्महत्या और भौगोलिक कारकों पर विचार किया है। इस दृष्टि से उसने जलवायु, तापमान, समय, दिन व रात, आदि कारणों पर विचार किया है। अपने प्रमुख सिद्धांत को पारित करने से पूर्व दुर्खीम ने आत्महत्या और अनुकरण के सम्बन्धों की चर्चा की है। इन सभी कारकों को दुर्खीम ने अप्रभावहीन बनाया है। दुर्खीम के आत्महत्या सिद्धांत का प्रमुख सार हम संक्षेप में निम्नलिखित रूप से कर सकते हैं–

आत्महत्या का सिद्धांत

आत्महत्या विषय पर अपने इस सिद्धांत में भी दुर्खीम ने समाजशास्त्रीयवाद के अपने मूल सिद्धांत का पूर्णतः पालन किया है। इसके अन्तर्गत उसने व्यापक आंकड़ों के आधार पर व्याख्या और विश्लेषण के द्वारा ही अपने इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया है। उसका मत है कि प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं भौगोलिक तथ्यों अथवा कारकों द्वारा इन आत्महत्या का समाजशास्त्रीय विश्लेषण नहीं कर सकते हैं। दुर्खीम ने यह भी स्वीकार किया है कि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत उद्देश्यों के आधार पर उसके इस कार्य की व्याख्या की जा सकती है। इसी प्रकार भौगोलिक कारक या चिन्ता, भय, गरीबी, असफल प्रेम, आदि तत्वों के आधार पर भी हम आत्महत्या का विश्लेषण नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार दुर्खीम ने बताया कि आत्महत्या के लिए तो केवल सामाजिक कारक ही उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। दुर्खीम ने लिखा है कि आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है। इसलिए आत्महत्या की व्याख्या भी सामाजिक तथ्य के रूप में ही की जा सकती है। इस विचार को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है, "सामाजिक पर्यावरण की कुछ अवस्थाओं से आत्महत्या का सम्बन्ध उतना ही प्रत्यक्ष एवं स्थिर है जितना की प्राणीशास्त्रीय एवं भौतिक लक्षणों वाले तथ्यों से इसका सम्बन्ध अनिश्चित एवं अस्पष्ट देखा गया है।"

दुर्खीम ने सांख्यिकीय आंकड़ों के आधार पर आत्महत्या का जो अध्ययन किया है उसके द्वारा दुर्खीम के इस सिद्धांत की विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या सिद्धांत की निम्न विशेषताएँ हैं–

(1) आत्महत्या की दर प्रत्येक साल लगभग समान रहती है।

(2) सर्दी की अपेक्षा गर्मी में आत्महत्या की दर ऊँची होती है।

(3) पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक आत्महत्या पाई गई है।

(4) बड़ों में छोटों की अपेक्षा अधिक आत्महत्याएँ पाई जाती हैं।

नोट

(5) नागरिकों की अपेक्षा सैनिकों में आत्महत्याएँ पाई जाती हैं।

(6) कैथोलिकों की अपेक्षा प्रोटेस्टेंट में अधिक आत्महत्या पाई जाती हैं।

(7) विवाहितों की अपेक्षा अकेले, अविवाहितों, विधवा, विधुरों एवं तलाक दिये हुए व्यक्तियों में अधिक आत्महत्याएँ पाई जाती हैं।

(8) विवाहितों में संतानहीन व्यक्ति संतानयुक्त व्यक्तियों की अपेक्षा आत्महत्या अधिक पाई जाती हैं।

(9) आत्महत्या के प्रमुख कारण सामाजिक प्रकृति के हैं।

इन निष्कर्षों के आधार पर दुर्खीम ने बताया कि इन उच्च स्थितियों के लिए बाह्य रूप से मनोवैज्ञानिक एवं भौगोलिक कारण उत्तरदायी दिखाई देते हैं। लेकिन वास्तव में केवल सामाजिक कारणों को ही इनके लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। अपने आत्महत्या की विभिन्न घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. आत्महत्या के प्रचलित कारणों की ········ करने की दृष्टि से दुर्खीम ने व्यापक रूप से विचार किया है।
2. प्रथम दुर्खीम ने ········ अवस्थाओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं।
3. अपने इस ········ में दुर्खीम ने आगे आत्महत्या और भौगोलिक कारकों पर विचार किया है।

आत्महत्या के प्रकार

दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या के निम्नांकित प्रकार हैं–

(1) **अहम्वादी आत्महत्या–**आहम्वादी आत्महत्या के अन्तर्गत व्यक्ति सामाजिक पृथक्करण एवं उसमें वृद्धि के कारण अपना आत्मविनाश करने के लिए तैयार हो जाता है। सामाजिक पृथक्करण का अभिप्राय यही है कि जब व्यक्ति के लिए सामाजिक सम्पर्क, सामाजिक सहवास एवं मेल-जोल के कम अवसर होते जाते हैं। जब मनुष्यों को एकान्तवासी के रूप में रहने के लिए विवश होना पड़ता है तो वे आत्म-विनाश कर लेते हैं। अर्थात् सामूहिक अस्तित्व के न्यूनतम होने के कारण व्यक्ति आत्महत्या करते हैं। इसका प्रमाण दुर्खीम के निष्कर्षों में मिलता है। इनमें बतलाया गया है कि विवाहित व्यक्तियों की अपेक्षा अकेले व तलाक प्राप्त अथवा अविवाहितों में आत्महत्या अधिक पाई जाती है। क्योंकि उनके सामाजिक सम्पर्क में कमी आ गई है और वे पारिवारिक समूह से पृथक हो गए हैं। दूसरी ओर, विवाहितों को उनकी पत्नियों एवं बच्चों का सान्निध्य प्राप्त होता रहता है। विवाहितों का पारिवारिक बन्धन से पृथक्करण नहीं हो पाता है। इसलिए वे आत्महत्या कम करते हैं। इसी प्रकार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में आत्महत्या अधिक पाई जाती है। क्योंकि वे समूह जीवन पुरुषों की अपेक्षा कम व्यतीत करती हैं और समूह से अधिक पृथक रहना पड़ता है। आत्मवादी आत्महत्या को दुर्खीम ने अहम्वादी आत्महत्या कहा है।

दुर्खीम के अनुसार गर्मी में आत्महत्या की वृद्धि का यही कारण है। इन महीनों में दिन बड़े होते हैं। इसलिए सामाजिक सम्पर्क अधिक नहीं रह पाते। इसके विपरीत सर्दी में दिन छोटे होते हैं। इन दिनों में सम्पर्क अधिक बना रहता है। इसलिए आत्महत्या की दर सर्दी में कम रहती है। रोमन कैथोलिक की अपेक्षा प्रोटेस्टेन्ट धर्म के लोगों में आत्महत्या की दर अधिक ऊँची होती है। इसका भी यही कारण है कि प्रोटेस्टेन्ट धर्म व्यक्तिवादिता एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अधिक जोर देता है। व्यक्तियों में इस कारण धार्मिक समूह का नियन्त्रण एवं संगठन कम होने से पृथक्कता बढ़ती है। दूसरी ओर रोमन कैथोलिक धर्म रूढ़िवादी होने के कारण, इसके सदस्यों को धार्मिक समूह बहुत अधिक संगठित

नोट

एवं नियंत्रित करता है। इसलिए उनमें पृथकता नहीं बढ़ने पाती है। युद्ध और सामाजिक आन्दोलन के समय व्यक्ति घर से बाहर निकलते हैं। परिणामस्वरूप इनमें सामाजिक पृथक्करण विकसित होता है। इसलिए इस समय सामान्य दिनों की अपेक्षा आत्महत्या की दर में वृद्धि हो जाती है।

इस प्रकार दुर्खीम के अनुसार अहम्वादी आत्महत्या के विश्लेषण में प्रधान कारण दुर्खीम ने सामाजिक पृथक्करण में वृद्धि को माना है और इस वृद्धि के उपर्युक्त तथ्यों के सांख्यिकीय आधार पर अध्ययन से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

(2) **प्रतिमानहीनता संबंधी आत्महत्या**—आत्महत्या का दूसरा प्रकार प्रतिमानहीनता या विसंगति संबंधी आत्महत्या है। दुर्खीम के अनुसार ये आत्महत्याएँ आकस्मिक सामाजिक कारकों के उपस्थित हो जाने से की जाती है। विसंगति या प्रतिमानहीनता की परिभाषा करते हुए कोजर एवं रोजनबर्ग लिखते हैं, "प्रतिमानहीनता का अर्थ है सामान्यता के अभाव की अवस्था, नैतिक शून्यता, नियमों का विलम्बन, ऐसी स्थिति जिसमें कभी-कभी अनियमन की एक अवस्था के रूप में व्यक्त किया जाता है।" इसका अभिप्राय यही है कि जब निराशा, व्यापारिक गिरावट, आर्थिक संकट तथा असामान्य सम्पन्नता आदि की स्थिति उत्पन्न होती है तब इस प्रकार की आत्महत्या प्रतिमानहीनता संबंधी आत्महत्याएँ कही जाती है। दुर्खीम ने भी इस संबंध में लिखा है, "प्रतिमानहीनता आदर्श-विहीनता की एक वह स्थिति है, जिसमें स्वाभाविकता का अभाव, नियमों का विलम्बन व नियमविहीनता होती है।"

दुर्खीम अपने प्रमुख ग्रन्थ में लिखता है कि प्रतिमानहीनता संबंध आत्महत्या सामाजिक विघटन के कारण होती है। जब सामाजिक संतुलन अचानक समाप्त हो जाता है तो सारी सामाजिक व्यवस्था असामान्य एवं अव्यवस्थित हो जाती है। ऐसे समय में समूह अपने सदस्यों को संगठित नहीं रख सकता। इसलिए ऐसी सामाजिक शून्यता में आत्महत्याएं अधिक होती है। उदहारण के लिए, भीषण आर्थिक परिवर्तन हो अर्थात् भीषण मन्दी हो या बहुत अधिक समृद्धि हो, उस समय लोगों का अभ्यस्त एवं सामान्य जीवन समाप्त हो जाता है और सामाजिक नियंत्रण शिथिल पड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वतंत्र एवं नियम-रहित हो जाता है। इसमें वह आत्महत्या कर सकता है।

(3) **परार्थवादी आत्महत्या**—दुर्खीम ने एक तीसरे प्रकार की आत्महत्या का और उल्लेख किया है। आत्महत्या के इस स्वरूप को उसने परार्थी या परोपकारी आत्महत्या का नाम दिया है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति आत्म बलिदान की भावना से प्रेरित होकर ऐच्छिक रूप से आत्महत्या करने पर उतारू हो जाता है। अपने आशय को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम लिखता है कि "परार्थवादी आत्महत्या में व्यक्ति अपने आपको इसलिए नहीं मारता है कि उसे ऐसा करने का अधिकार है, बल्कि वह ऐसा इसलिए करता है कि मरना उसका कर्त्तव्य है। सामाजिक अनादर से बचने के लिए वह ऐसा करता है।" इस भांति स्पष्ट है कि परार्थवादी आत्महत्या वह होती है जो सामाजिक दबाव से की जाती है।

दुर्खीम लिखता है कि "परार्थपरक आत्महत्या उस समय सम्भव हो सकती है जब किसी समाज में व्यक्ति एवं समूह के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है। ऐसी दशा में व्यक्ति समाज के हित में पूर्णत: आत्मसात हो जाते हैं। ऐसा होने पर व्यक्ति की वैयक्तिक सत्ता की समाप्ति हो जाती है। वह केवल नाम रूप से समूह का एक सदस्य मात्र समझा जाता है। इस भांति जो व्यक्तित्व का महत्त्व कम हो जाता है तो परार्थवादी आत्महत्याओं की संख्या बढ़ जाती है।"

दुर्खीम के लिए परोपकारी या परार्थी आत्महत्या उस कठोर एवं प्रबल सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है, जिसमें समूह के हितों की तुलना में व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं होता। व्यक्ति के जीवन का मूल्य समूह के जीवन की तुलना में न्यून होता है। इस स्थिति में वह अपने आपको समूह के लिए न्यौछावर कर देता है और समय आने पर समूह के कल्याण के लिए स्वेच्छा से अपने प्राण दे देता है।

नोट

क्या आप जानते हैं पराथर्वादी आत्महत्या परोपकारी आत्महत्या कहलाती है। इसमें व्यक्ति अपने हित के लिए नहीं बल्कि समूह के हित के लिए स्वेच्छा से अपने प्राण दे देता है।

कर्त्तव्य एवं बलिदान की भावना आने पर व्यक्ति का पृथक व्यक्तित्व लोप हो जाता है। वह अपने आपको समाज की सेवा में पूर्णरूप से लगा देता है। उदाहरण के लिए एक सैनिक का युद्ध में अपने आपको देश की सेवा के लिए बलिदान कर देना। माता का अपने पुत्र की रक्षा के लिए बलिदान करना आदि परोपकारी आत्महत्याएं हैं। आदिम समाजों में भी व्यक्ति समूह के हित के लिए मरने को तैयार हो जाता था। ये सभी परोपकारी आत्महत्या के उदाहरण हैं। इस प्रकार की आत्महत्याएं इसलिए होती हैं कि व्यक्ति समूह में पूर्णरूप से संगठित है। वह समूह के नियंत्रण में हैं। ये आत्महत्याएं अत्यधिक सामाजिक एकीकरण के कारण होती हैं। अर्थात् जब स्वेच्छा से विभिन्न व्यक्तियों के स्वार्थों का पूर्णरूपेण एकीकरण हो जाता है।

दुर्खीम ने परार्थवादी आत्महत्या के प्रकारों की भी विवेचना की है। इस दृष्टि से उसने प्रथम, अनिवार्य परार्थवादी आत्महत्या का विवेचन किया है। यह आत्महत्या व्यक्ति पर समाज का अत्यधिक दबाव होने के कारण होती है। दुर्खीम ने इस सम्बन्ध में आदिम समाजों के कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जब समाज गहन रूप से एकात्मक होता है, तब इस प्रकार की अनिवार्य आत्महत्याओं की संख्या अधिक होती है। दूसरी प्रकार की परार्थवादी आत्महत्या ऐन्द्रिक परार्थवादी आत्महत्या है। इस आत्महत्या में व्यक्ति पर समाज के दबाव की अनिवार्यता नहीं होती है। इस आत्महत्या का आधार सामाजिक प्रतिष्ठा है। समाज में ऐसी भी परिस्थितियां होती हैं जब व्यक्ति के समर्पण की औपचारिक मांग नहीं होती। परन्तु उस समर्पण को प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है। भारत में सती-प्रथा का उदाहरण इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। सती होने के पीछे सामाजिक प्रतिष्ठा का भाव स्त्री को अपने पति की ज्वाला में स्वाहा होने की प्रेरणा देता है। इसके अतिरिक्त; एक और प्रकार की आत्महत्या की चर्चा की जाती है, हालांकि दुर्खीम ने इसकी चर्चा अपनी पुस्तक में नहीं की है।

(4) **मरणांतक आत्महत्या** (Fetalistic Suicide)—इस प्रकार की आत्महत्या प्रतिमानों की बहुत अधिक अधिकता या विद्यमानता के कारण होती है, जहाँ व्यक्ति नियमों या प्रतिमानों से इतना उद्वेलित हो जाता है कि वह आत्महत्या की स्थिति तक जा सकता है, जैसे—सैनिकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या या जेलों में होने वाली आत्महत्या आदि।

टास्क आत्महत्या कितने प्रकार की होती है? संक्षिप्त वर्णन करें।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो चुका है कि दुर्खीम ने आत्महत्या के विश्लेषण में सामाजिक कारकों को ही प्रधान माना है। इस प्रकार वह अपने इस सिद्धान्त में भी अपने मूल सिद्धान्त का पूर्णतः पालन करता है। उसका यह दृढ़ मत रहा है कि सामाजिक तथ्यों की व्याख्या सामजिक तथ्यों के द्वारा की जानी चाहिए। अपने इस अध्ययन का निष्कर्ष देते हुए दुर्खीम लिखता है, "इन सभी तथ्यों का यही निष्कर्ष है कि सामाजिक आत्महत्या की दर की व्याख्या केवल समाजशास्त्रीय ढंग से ही की जा सकती है। किसी भी क्षण समाज का नैतिक विधान ऐच्छिक मृत्युओं के लिए अवसर निश्चित कर सकता है। इसलिए मनुष्यों को आत्मविनाश के लिए प्रेरित करने के हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक निश्चित मात्रा में शक्तिशाली सामूहिक शक्ति संयुक्त रूप में पाई जाती है।"

16.2 सारांश (Summary)

नोट

- समाजशास्त्र में आत्महत्या की अवधारणा को महत्त्वपूर्ण बनाने का श्रेय दुर्खीम को ही है। इन्होंने आत्महत्या का व्यवस्थित अध्ययन कर यह प्रतिपादित किया कि आत्महत्याओं के प्रतिमान का विश्लेषण मात्र व्यक्तिगत मनोविज्ञान के आधार पर नहीं किया जा सकता। आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है, अत: इसके कारणों को सामाजिक तथ्यों में ही खोजा जाना चाहिए। दुर्खीम ने चार प्रकार की आत्महत्याएँ बताई हैं–
    1. परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic suicide)
    2. प्रतिमानहीनता संबंधी आत्महत्या (Anomic suicide)
    3. अहम्‌वादी आत्महत्या (Egoistic suicide)
    4. मरणांतक आत्महत्या (Fetalistic suicide)।

16.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **आत्महत्या (Suicide) :** ऐसी मृत्यु जो आत्म विनाश के लिए जानबूझकर की गई किसी क्रिया का परिणाम है अथवा उसकी ऐसी निष्क्रियता का परिणाम है जिसके भयंकर परिणामों के विषय में उसे पहले से ज्ञान हो, आत्महत्या की श्रेणी में आती है।

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दुर्खीम की आत्महत्या संबंधी सिद्धान्त की विवेचना करें।
2. आत्महत्या की विभिन्न घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या को किन तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया है?
3. दुर्खीम की रचना 'ली सुसाइड' में किस पर प्रकाश डाला गया है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. समीक्षा 2. मनोव्याधिकीय 3. महान् ग्रंथ।

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी – अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. द स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट – जे. एच. टर्नर।
3. सामाजिक विचारधारा– रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–17 : धर्म का सिद्धान्त (Theory of Religion)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
17.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)
17.2 सारांश (Summary)
17.3 शब्दकोश (Keywords)
17.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
17.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- धर्म के सामाजिक पक्ष को समझना।
- धर्म का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त स्पष्ट करना।
- टोटमवाद की धारणा स्पष्ट करना।
- समाज के साथ धर्म के गहरे संबंध को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

अपने अध्यापकीय जीवन के अन्तिम वर्षों में दुर्खीम की रुचि धर्म के अध्ययन में विकसित हो गई। इस दृष्टि से उसने रॉबर्टसन स्मिथ व इंग्लैण्ड की मानवशास्त्रीय सम्प्रदाय से सहयोग लिया। उसने आदिम धर्म पर गहनता से कार्य करके उक्त रचना लिखी जो सन् 1912 में प्रकाशित हुई थी। इस कृति में दुर्खीम ने धर्म की उत्पत्ति पर ठोस तथ्यों के आधार पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध में उसने अपने कई शोध-लेख भी प्रकाशित कराये। इसके साथ-साथ इस ग्रन्थ में उसने धर्म की उत्पत्ति के प्रचलित सिद्धांतों की कड़ी आलोचना करते हुए धर्म के स्वरूप एवं प्रकृति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

17.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

श्री दुर्खीम ने अपनी पुस्तक में धर्म की प्रकृति, उत्पत्ति के कारण, प्रभाव आदि के विषय में अत्यधिक विस्तृत तथा सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की है। अपने धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त के द्वारा दुर्खीम ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि धर्म सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक तथ्य या सामाजिक घटना है और वह इस अर्थ में कि नैतिक रूप से सामूहिक चेतना का प्रतीक ही धर्म है। इस संबंध में श्री दुर्खीम ने समाज को 'वास्तविक देवता' की संज्ञा दी है।

धर्म के सामाजिक सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए दुर्खीम ने धर्म संबंधी अब तक के सभी सिद्धान्तों का खंडन किया है। उनका कहना है कि इन सिद्धान्तों में धर्म की उत्पत्ति के संबंध में बताए गए कारण केवल अपर्याप्त ही नहीं, बल्कि अवैज्ञानिक भी हैं। इसे प्रमाणित करने के लिए दुर्खीम ने सर्वश्री आदि विद्वानों के मतों का खण्डन किया है। श्री टायलर ने धर्म की उत्पति समझाने के लिए आत्मवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। जिसके अनुसार आत्मा की धारणा ही "आदिम मनुष्यों से लेकर सभ्य मनुष्यों तक के धर्म के दर्शन का आधार है।" "आत्मा की धारणा रोज के जीवन से सम्बन्धित दो प्रकार के अनुभव के कारण विशेष रूप से उत्पन्न हुई। वे अनुभव (अ) मृत्यु और (ब) स्वप्न थे। प्रथम अनुभव के आधार पर शरीर आत्मा और दूसरे के आधार पर स्वतन्त्र आत्मा की धारणा उत्पन्न हुई। आत्माएँ अमर तथा मनुष्य के नियन्त्रण के बाहर हैं—इस विश्वास के कारण ही पितरों की पूजा आरम्भ हुई जोकि आगे चलकर धर्म के रूप में विकसित हुई। श्री दुर्खीम का कथन है कि इस सिद्धान्त में श्री टायलर ने आदिम मनुष्यों को अत्यधिक तर्कयुक्त दार्शनिक के रूप में मान लिया है जोकि सर्वथा गलत है। इतने क्रमबद्ध रूप से आत्मा की धारणा को विकसित करना आदिम मनुष्यों के लिए सम्भव नहीं था, जैसाकि श्री टायलर ने कल्पना की है। दूसरे, धर्म एक इतनी सरल घटना नहीं है कि इसकी उत्पत्ति परछाई, स्वप्न, प्रतिध्वनि, मृत्यु आदि कुछ सीमित या वैयक्तिक अनुभवों के आधार पर संभव है। उसी प्रकार श्री मैक्समूलर के धर्म संबंधी प्रकृतिवाद के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए श्री दुर्खीम ने लिखा है कि श्री मैक्समूलर का यह विचार गलत है कि प्रकृति के विभिन्न रूपों—तूफान, आँधी, बिजली का कड़कना, भूकम्प, सूर्य, चन्द्रमा आदि को देखकर आदिम मानव के मन में भय, आतंक, आश्चर्य आदि का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था और इन मानसिक भावनाओं के कारण वह प्रकृति से ऐसे डरने लगा जैसे किसी जानदार वस्तु से डरता था और इसलिए उसके प्रति उसके मन में श्रद्धा, शक्ति आदि उत्पन्न हुए, जिसके आधार पर आगे चलकर, धर्म की उत्पत्ति हुई। श्री दुर्खीम के अनुसार, प्रकृति की पूजा से धर्म उत्पत्ति की यह व्याख्या अत्यन्त संकुचित विश्लेषण उत्पन्न करती है, विशेषकर इस अर्थ में कि इस सिद्धान्त ने धर्म के केवल एक गौण पक्ष-प्राकृतिक पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है। श्री दुर्खीम ने लिखा है कि श्री मैक्समूलर इस सत्य को भूल जाते हैं कि धर्म एक सामाजिक संस्था, तथ्य या घटना है और सामाजिक घटना या संस्था की उत्पत्ति में कोई भी सामाजिक कारक न हो यह असम्भव है। अत: धर्म के सामाजिक आधार की अवहेलना श्री मैक्समूलर के सिद्धान्त की एक बहुत बड़ी दुर्बलता है। वास्तव में आत्मा, भूत-प्रेत, स्वप्न, छाया, प्रकृति आदि के आधार पर धर्म की समस्त व्याख्या अपर्याप्त है क्योंकि आदिवासियों के लिए प्राकृतिक और अलौकिक घटनाओं में अन्तर करना सम्भव नहीं; न तो उन्हें प्राकृतिक चीजों और घटनाओं के संबंध में उचित ज्ञान है और न ही वे अलौकिक घटनाओं को ठीक से समझते हैं।

नोट्स प्रत्येक धर्म का कोई तो 'वास्तविक' आधार होता है और वह आधार, श्री दुर्खीम के अनुसार, स्वयं 'समाज' है। "स्वर्ग का साम्राज्य एक महिमान्वित समाज है।"

नोट

श्री दुर्खीम के अनुसार, सामूहिक जीवन की समस्त वस्तुओं या घटनाओं की—चाहे सरल हों या जटिल, वास्तविक हों या आदर्शात्मक—दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है—(अ) पवित्र (Sacred) और (ब) साधारण (Profane)। समस्त धर्मों का सम्बन्ध 'पवित्र' पक्ष से होता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी पवित्र वस्तुएँ ईश्वरीय या ईश्वर होती है, यद्यपि समस्त ईश्वरीय या आध्यात्मिक घटनाएँ तथा वस्तुएँ पवित्र अवश्य ही होती हैं। ये पवित्र वस्तुएँ समाज की प्रतीक या सामूहिक चेतना की प्रतिनिधि होती है। इसी कारण व्यक्ति इनके अधीन और इनसे प्रभावित रहता है।

समाज के सदस्य जिन्हें पवित्र समझते हैं उन्हें पवित्र या साधारण से सदा दूर रखने का प्रयत्न करते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक विश्वासों, आचरणों, संस्कारों और उत्सवों को जन्म देते हैं। धर्म इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है। चूँकि इन प्रयत्नों से संबंधित विश्वासों, आचरणों, संस्कारों आदि के पीछे समस्त समाज की अभिमति और दबाव होता है, इस कारण समाज की उस सामूहिक सत्ता के सामने मनुष्य को नत-मस्तक होना ही पड़ता है। यहीं से धर्म की नींव पड़ती है।

इस सिद्धान्त की पुष्टि में श्री दुर्खीम ने आस्ट्रेलिया की अरुण्टा जनजाति का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि इन जनजातीय लोगों के जीवन का अध्ययन करने पर धार्मिक अनुभव की उत्पत्ति के संबंध में स्पष्ट धारणा हो सकती है और वह धारणा यह है कि धार्मिक अनुभव एक प्रकार की सामूहिक उत्तेजना के कारण है। त्यौहारों तथा उत्सवों पर जब गोत्र के सभी लोग एक साथ एकत्र होते हैं तो प्रत्येक सदस्य को ऐसा अनुभव होता है कि समूह की शक्ति उसकी वैयक्तिक शक्ति से कहीं अधिक उच्च और महान् है। ऐसा अनुभव करने के स्पष्ट कारण भी हैं। इन त्यौहारों तथा उत्सवों का अस्तित्व ही अनेक लोगों की उपस्थिति पर आधारित होता है। समान भावों, विचारों व रुचियों वाले अनेक व्यक्तियों के वैयक्तिक भावों, विचारों व रुचियों के सम्मेलन और संगठन से एक नवीन चेतना या उत्तेजना का निर्माण होता है। यही सामूहिक शक्ति होती है जिसके सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप में झुकना पड़ता है। साथ ही, इन त्यौहारों तथा उत्सवों के अवसरों पर एकत्रित भीड़ में एक प्रकार का मानसिक उल्लास प्रदर्शित होता है। यह उल्लास सम्भवत: मानव की सामाजिक मूल-प्रवृत्ति के कारण है। ऐसे अवसरों में एक ही समय पर अनेक व्यक्ति एकत्रित रहते हैं और व्यक्ति के विचार व संवेग सभी उपस्थित व्यक्तियों के विचारों को प्रफुल्लित व उत्तेजित कर देता है। फलत: व्यक्ति की अपनी शक्ति गौण हो जाती है और समूह की शक्ति को प्रधानता मिलती है। व्यक्ति समूह की इस शक्ति के सामने झुकता है और उसकी शक्ति से प्रभावित होकर उसके मन में समूह की प्रति भय, श्रद्धा और भक्ति की भावना पनपती है। यह समूह को साधारण से श्रेष्ठ या महान् समझने लगता है। वस्तुत: यह समूह या समाज की धार्मिक पूजा का प्रतीक हो जाता है।

फिर भी इस सम्बन्ध में एक शंका रह ही जाती है। और वह यह कि पवित्रता की धारणा के पनपने का 'वास्तविक' आधार क्या है? इसके उत्तर में श्री दुर्खीम का कथन है कि टोटमवाद के आधार पर ही पवित्र और साधारण वस्तुओं में भेद करने की भावना का जन्म हुआ। अत: टोटमवाद ही समस्त धर्मों का प्राथमिक स्तर है। ऐसा टोटमवाद की प्रकृति से ही सम्भव हुआ क्योंकि टोटमवाद नैतिक कर्त्तव्यों और मौलिक विश्वासों की वह समष्टि है जिसके द्वारा समाज और पशु, पौधे या अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के बीच एक पवित्र और अलौकिक संबंध स्थापित हो जाता है। इस टोटमवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(क) टोटम के साथ एक गोत्र के सदस्य अपना कई प्रकार का गूढ़, अलौकिक तथा पवित्र संबंध मानते हैं।

(ख) टोटम के साथ इस अलौकिक तथा पवित्र संबंध के आधार पर ही यह विश्वास किया जाता है कि टोटम उस शक्ति का अधिकारी है जो उस समूह की रक्षा करती है, सदस्यों को चेतावनी देती और भविष्यवाणी करती है।

(ग) टोटम के प्रति विशेष भय, श्रद्धा, भक्ति और आदर की भावना होती है। टोटाम को मारना, खाना या किसी

प्रकार से चोट पहुँचाना निषिद्ध होता है और उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाता है। टोटम, उसकी खाल और उससे संबंधित अन्य वस्तुओं को बहुत पवित्र माना जाता है। टोटम की खाल को विशेष अवसरों पर धारण किया जाता है; टोटम के चित्र बनवाकर रखे जाते हैं और शरीर पर उसके चित्र की गुदाई भी प्रायः सभी लोग करवाते हैं। टोटम संबंधी निषेधों का उल्लंघन करने वालों की समाज द्वारा निन्दा की जाती है और दूसरी ओर इससे संबंधित कुछ विशिष्ट नैतिक कर्तव्यों को प्रोत्साहित किया जाता है।

(घ) टोटम के प्रति भय, भक्ति और आदर की जो भावना होती है वह इस बात पर निर्भर नहीं होती कि कौन-सी वस्तु टोटम है या वह कैसी है, क्योंकि टोटम तो प्रायः अहानिकारक पशु या पौधा होता है। श्री दुर्खीम के मतानुसार टोटम सामुदायिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है और टोटम की उत्पत्ति उसी सामुदायिक रूप में समाज के प्रति अपनी श्रद्धाभाव के कारण हुई है। यही श्रद्धाभाव पवित्रता की भावना को जन्म देता है और टोटम-समूह के समस्त सदस्यों को एक नैतिक बन्धन में बाँधता है। यही कारण है कि टोटम-समूह के सभी सदस्य अपने को एक-दूसरे का भाई-बहन मानते हैं और वे आपस में कभी विवाह नहीं करते।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इस सिद्धांत की पुष्टि में श्री दुर्खीम ने ········ की अरुण्टा जनजाति का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है।
2. त्यौहारों तथा उत्सवों का ········ ही अनेक लोगों की उपस्थिति पर आधारित होता है।
3. अतः टोटमवाद ही समस्त धर्मों का ········ स्तर है।

टोटमवाद की उपरोक्त विशेषताओं का उल्लेख करते हुए श्री दुर्खीम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी भी धर्म की उत्पत्ति में उक्त सभी तत्वों का होना परमावश्यक है। इस कारण यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि टोटमवाद सब धर्मों का प्राथमिक रूप है क्योंकि टोटम एक समूह के नैतिक जीवन के सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। इस प्रकार धर्म का मूल स्रोत तो स्वयं समाज है। और भी स्पष्ट शब्दों में, ईश्वर समाज की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

अतः स्पष्ट है कि धर्म का संबंध किसी व्यक्ति से नहीं, बल्कि उसके सामूहिक जीवन से है। यहीं पर धर्म और जादू में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जादू में भी धर्म की भाँति अनेक विश्वास, संस्कार आदि होते हैं; फिर भी मूल रूप में जादू वैयक्तिक होता है। जादू का संबंध व्यक्ति-विशेष से होता है। इसी कारण जादू उस पर विश्वास करने वालों को एक समूह में संयुक्त नहीं कर पाता है। इसके विपरीत, धर्म का संबंध किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं होता है; इसका आधार तो स्वयं समाज है। इसी कारण धर्म उस पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करता है। श्री दुर्खीम का मत है कि धर्म की कोई भी परिभाषा धर्म की इस विशेषता के आधार पर होनी चाहिए और इसी कारण आपके अनुसार धर्म की परिभाषा इस प्रकार है–"धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की वह समग्र व्यवस्था है जो इन पर विश्वास करने वालों को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करती है।"

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि श्री दुर्खीम के धर्म-सम्बन्धी सामाजिक सिद्धान्त पवित्र और साधारण के बीच अन्तर पर आधारित हैं और इन दोनों में भेद करने की भावना का जन्म टोटमवाद के आधार पर हुआ। इस प्रकार धर्म की उत्पत्ति का प्रमुख स्रोत टोटम, या अन्तिम रूप में, समाज है क्योंकि टोटम समाज का ही सामूहिक प्रतिनिधि या प्रतीक है। टोटम के प्रति जो भय या आदर का रहस्यमय मनोभाव है और टोटम के साथ एक गोत्र के सदस्यों का जो गूढ़ और आलौकिक संबंध माना जाता है, उसी के आधार पर पवित्रता की भावना पनपती है। जिसके फलस्वरूप उस समूह के सभी सदस्यों में एक भाई-चारे की भावना जागृत होती है और वे एक नैतिक समुदाय में संयुक्त हो जाते

नोट

हैं। यहीं से धर्म की नींव पड़ती है क्योंकि टोटम के आधार पर संयुक्त नैतिक-समूह जिस शक्ति का अधिकारी होता है उसी के सामने नतमस्तक हो जाता है।

श्री दुर्खीम के अनुसार धर्म के अनेक सामाजिक कार्य हैं। और सर्वप्रथम तो यह कि धर्म मानव-जीवन को दो स्पष्ट भागों-साधारण तथा पवित्र में बाँट देता है। धर्म अपने सदस्यों को इन दोनों में एक स्पष्ट भेद मानने तथा साधारण या अपवित्र कार्यों से दूर रहने की शिक्षा देता है क्योंकि पवित्र जीवन से दूर हो जाना धार्मिक भ्रष्टाचार है। इस प्रकार धर्म लोगों को पवित्र क्रियाओं को करने की दीक्षा देता है, ताकि वे पापात्मक परिणामों से मुक्त रह सकें। यह उन्हें अपवित्र कार्यों के करने पर धार्मिक शुद्धि करने का आदेश देता है। धर्म लोगों को यह भी शिक्षा देता है कि धार्मिक सेवाओं के स्थानों को उन स्थानों से दूर रखा जाए जहाँ साधारण कार्य किए जाते हैं। आराधना या पूजा का स्थान पवित्र स्थान है, इस कारण ऐसे स्थानों को साधारण कार्यों के करने के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहिए। इसी प्रकार पवित्र और साधारण कार्यों को करने के लिए अलग-अलग समय भी निश्चित दिनों को निर्धारित करता है। जैसे, ईसाईयों में रविवार प्रार्थना का दिन है।

क्या आप जानते हैं धार्मिक उत्सवों तथा कृत्यों का उद्देश्य पापियों को पवित्र करना, या एक साधारण व्यक्ति को एक धर्मपरायण व्यक्ति में बदलना या एक धार्मिक व्यक्ति को पवित्रता के उच्चतर स्तर पर उठाना है। संक्षेप में धर्म, श्री दुर्खीम के अनुसार, एक सामूहिक आदर्श को व्यक्त करता है।

श्री सोरोकिन ने श्री दुर्खीम के उपर्युक्त सिद्धान्त का संक्षिप्त सार इस प्रकार दिया है—(क) धर्म का मूल कारण समाज स्वयं है; (ख) धार्मिक अवधारणाएँ समाज की विशेषताओं की प्रतीक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; (ग) पवित्र या ईश्वर समाज का ही मूर्त रूप है; और (घ) धर्म का प्रमुख कार्य सामाजिक एकता को उत्पन्न करना तथा स्थिर रखना है।

श्री **अलेक्जेण्डर गोल्डेनविजर तथा अन्य** विद्वानों ने श्री दुर्खीम के उक्त सिद्धान्त की आलोचना करते हुए लिखा है कि प्रथमत: श्री दुर्खीम का यह कथन कि टोटमवाद धर्म का सर्वप्रमुख तथा सर्वप्रथम आधार है, गलत है। विभिन्न जनजातीय समाजों का अध्ययन इस बात की पुष्टि नहीं करता है। आदिवासी समाजों में धर्म और टोटम अपना-अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं। टोटमवाद में एक गोत्र टोटम को अपना मूल-पुरुष या सामान्य पूर्वज मानते हैं और उसे मानने वाले सभी व्यक्ति आपस में शादी-विवाह नहीं करते हैं। ये दोनों ही विशेषताएँ टोटमवाद में अनिवार्य हैं, परन्तु धर्म में इन दोनों का ही अभाव होता है। अगर धर्म का आधार टोटमवाद ही होता तो अब तक ये दोनों घुल-मिलकर एक हो गए होते। द्वितीयत:, केवल पवित्र और साधारण इन दो धारणाओं के आधार पर धर्म को समझा या समझाया नहीं जा सकता। इस प्रकार का भेदभाव आदिम समाजों में स्पष्ट हो सकता है, परन्तु आधुनिक समाज में इन दोनों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कठिन है। तृतीयत:, धर्म की उत्पत्ति में सामाजिक कारक महत्त्वपूर्ण हैं, इस सत्य को कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा; परन्तु यह कहना उचित व वैज्ञानिक न होगा कि धर्म की उत्पत्ति में समाज ही एकमात्र कारण है। श्री दुर्खीम ने यह कहकर, कि "समाज ही वास्तविक देवता है," समाज को आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्रदान करने की त्रुटि की है।

टास्क दुर्खीम ने अपने धर्म संबंधी सिद्धांत के द्वारा समाज को किसकी संज्ञा दी है।

17.2 सारांश (Summary)

- दुर्खीम ने अपने 'धार्मिक जीवन के प्रारम्भिक स्वरूप' नामक पुस्तक में सामाजिक जीवन में धर्म की विशिष्ट भूमिका को रेखांकित किया है। दुर्खीम ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट किया है कि धर्म के कुछ सामाजिक प्रकार्य हैं, साथ ही यह सामाजिक कारकों की उपज है।
- टोटम के प्रति विशेष भय, श्रद्धा, भक्ति और आदर की भावना होती है। टोटम को मारना, खाना या किसी प्रकार से चोट पहुँचाना निषिद्ध होता है और उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाता है।
- श्री दुर्खीम के अनुसार धर्म के अनेक सामाजिक कार्य हैं। और सर्वप्रथम तो यह कि धर्म मानव-जीवन को दो स्पष्ट भागों-साधारण तथा पवित्र में बाँट देता है।

17.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **धर्म का समाजशास्त्र (Sociology of religion):** धर्म का समाशास्त्र उन तरीकों का वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें समाज, संस्कृति, व्यक्तित्व द्वारा धर्म को प्रभावित किया जाता है। साथ ही इसमें उन विधियों का भी अध्ययन किया जाता है जिसमें धर्म के द्वारा समाज, संस्कृति और व्यक्तित्व प्रभावित होते हैं।

17.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दुर्खीम के धर्म संबंधी सिद्धान्त को स्पष्ट करें।
2. टोटमवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
3. टोटमवाद की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए दुर्खीम किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आस्ट्रेलिया 2. अस्तित्व 3. प्राथमिक।

17.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।
2. समकालीन उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
3. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त—एस.एस. दोषी एवं एम.एस. त्रिवेदी।

नोट

इकाई–18 : मैक्स वेबर: बौद्धिक पृष्ठभूमि (Max Weber: Intellectual Background)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

18.2 वेबर के विचारों पर प्रभाव (Influence on Weber's Thinking)

18.3 सारांश (Summary)

18.4 शब्दकोश (Keywords)

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मैक्स वेबर के जीवन के बारे में जानकारी।
- मैक्स वेबर के विचारों पर समकालीन विचारकों का प्रभाव।
- वेबर की विचारधारा के निर्णय की पृष्ठभूमि।

प्रस्तावना (Introduction)

मैक्स वेबर समाजशास्त्री ही नहीं था, अपितु वह अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता, इतिहासकार तथा दार्शनिक भी था। उसने सामाजिक घटनाओं और जीवन के गहन अवलोकन चिन्तन और मनन पर बल दिया था। उसने सामाजिक घटनाओं को समझने में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया था। संक्षेप में मैक्स वेबर की मौलिक विशेषता सामाजिक घटनाओं और परिस्थितियों की व्याख्या के आधार पर समझना है। वेबर का विचार है कि हम सामाजिक घटनाओं और परिस्थितियों को तब तक नहीं समझ सकते जब तक उनकी तर्क पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत न की जाए। इसीलिए मैक्स वेबर को व्याख्यात्मक समाजशास्त्र का पिता (Father of Interpretive Sociology) कहा जाता है।

नोट

समाजशास्त्र की परिभाषा में ही वेबर के विचारों को समझा जा सकता है। उसके अनुसार "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो कि सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण (व्याख्यात्मक) बोध करने का प्रयत्न करता है जिससे कि इसकी (सामाजिक क्रिया की) गतिविधि तथा परिणामों की कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके।" यह स्पष्ट है कि वेबर ने जो महान कार्य किया वह एक विशिष्ट प्रकार के सफल विद्वान के बिना संभव नहीं था। अनेक विरोधी तत्वों के तनाव में भी वेबर ने जीवन और विचारों का निर्माण किया। उसने स्वयं लिखा है कि "यदि मनुष्य खुली हुई पुस्तक के समान नहीं है तो हमें उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की आशा नहीं करनी चाहिए।"

18.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

मैक्स वेबर का जन्म एरफर्ट, थरन्जिया में 21 अप्रैल 1864 को हुआ था। उसके पिता सेन्ट मैक्स वेबर एक प्रशिक्षित कानून-ज्ञाता एवं पालिका सलाहकार थे। ये पश्चिमी जर्मनी के एक रेशम व्यापारी एवं वस्त्र निर्माता परिवार से संबंधित थे। सन् 1869 में वेबर परिवार बर्लिन चला गया, जहाँ शीघ्र ही बिस्मार्क की समृद्धिशाली राजधानी बनने को थी। वहाँ जाकर सेन्ट वेबर एक संपन्न राजनीतिक बन गये तथा उन्होंने बर्लिन की पालिका संसद तथा प्रशासकीय संसद में सक्रिय भाग लिया। वेबर परिवार चार्लटनवर्ग में रहता था, जो कि तत्कालीन बर्लिन के पश्चिमी भाग की सीमा पर था और जहाँ पर शिक्षा एवं राजनीति के गणमान्य व्यक्ति पड़ोस में रहते थे। इस प्रकार वेबर परिवार अच्छे वातावरण में रहने लगा।

मैक्स वेबर की माँ, हेलेन फैलेन्सटीन वेबर एक सुशिक्षित एवं उदार वृत्ति वाली और प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बी महिला थी। उनके परिवार के अनेक व्यक्ति शिक्षक एवं छोटे अधिकारी थे जो कि 1848 के आंदोलन के समय हीडलवर्ग के एक शहर में रहने लगे थे। बर्लिन में हेलेन वेबर एक अत्यन्त व्यस्त महिला थीं। वेबर की मां को अपने व्यस्त राजनीतिज्ञ पति, छः बच्चों एवं निरंतर आने वाली मित्र-मंडली की देखरेख करनी पड़ती है।

मैक्स वेबर एक दुर्बल बालक था जिसे चार वर्ष की अवस्था में मेनिनजाइटिस की बीमारी हो गई थी। वह खेलों की अपेक्षा पुस्तकें पढ़ना अधिक पसंद करता था और उसने अपनी शिशु अवस्था में अपने गहन अध्ययन द्वारा विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। तेरह वर्ष की अवस्था में उसने दो ऐतिहासिक निबंध लिखे, जिनके नाम निम्नलिखित हैं–

(1) "Concerning the course of general History with special regard to the positions of Kairer and Pope"

(2) "Dedicated to my own insignificant ego as well as to parents and siblings"

पंद्रह वर्ष की अवस्था में वह एक विद्यार्थी के रूप में अध्ययन कर रहा था। शुरू से ही वह संतुलित एवं योग्य वाक्यों को बोलने का अभ्यस्त था। वह अपनी कक्षा में सबसे कम उम्र का विद्यार्थी था। अध्यापकों के प्रति भी उसमें श्रद्धाभाव था। चूंकि वह परीक्षा काल (Examination Period) में अपने साथियों को ज्ञान बांटने को तैयार रहता था तथा वे उसे प्रकृति की एक विशिष्ट कृति समझते थे।

> *नोट्स* वेबर की मां अपने पुत्र के पत्रों को उसके अनजाने में पढ़ लेती थी और इस बात से बहुत क्षुब्ध थी कि वे और उनका पुत्र बौद्धिक रूप से एक-दूसरे से अलग होते जा रहे हैं।

नोट

मैक्स वेबर की हाईस्कूल की शिक्षा सन् 1882 में ही समाप्त हो गई थी। अलौकिक प्रतिभा संपन्न होने के कारण उसे और परिश्रम की आवश्यकता नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश विचारकों की भांति उसने अपने शिक्षकों के मन में प्रतिकूल प्रभाव पैदा किया। सत्रह वर्षीय दुर्बल बालक अब भी सत्ता के प्रति उपयुक्त आदर-भाव नहीं रखता था।

मैक्स वेबर अपने पिता के पद चिन्हों का अनुसरण करता हुआ कानून के एक विद्यार्थी के रूप में हीगलवर्ग जाकर भर्ती हो गया तथा अध्ययन करने लगा। उसने अनेक सांस्कृतिक विषयों का भी अध्ययन किया जिनमें इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि सम्मिलित थे।

20 वर्ष की आयु में वेबर ने बर्लिन तथा गोटिंगन में विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त की। जहाँ पर दो वर्ष पश्चात् उसने कानून की प्रथम परीक्षा दी। सन् 1885 के ग्रीष्मकाल और पुनः 1887 में वह सैनिक अभ्यास के लिए स्ट्रासवर्ग लौट गया। वेबर ने अपना अध्ययन समाप्त करके बर्लिन की कचहरी में नौकरी प्रारंभ की। 1889 में उसने मध्ययुगीन व्यापारिक कम्पनियों के इतिहास पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और 1891 में उसने 'History of Agrerian Institution' नामक विषय पर निबंध लिखा जिसे मार्क्स ने एक बार रोमन लोगों का गुप्त इतिहास कहा है।

सन् 1893 में मेरियाने सिंगर (Marianne Schniger) से विवाह के उपरान्त वेबर बर्लिन में एक सफल विद्वान की भांति जीवन व्यतीत करने लगा। सन् 1894 के अंत में उसने फ्रेवर्म विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के पद को स्वीकार किया। यहाँ उसका परिचय ह्यूगो मन्सटरवर्ग (Hugo Musterberg) पास्टर नामन (Paster Naumann) और विलियम रिकर्ट (William Rickert) से हुआ।

जीवन के आरंभिक दिनों की भांति शेष दिनों में वह दुर्बलता से ग्रसित था। उसने अमेरिका की भी यात्रा की। वह अमेरिका में सितंबर 1904 में आ गया था और क्रिसमस के थोड़े दिन पहले जर्मनी चला गया। वह अमेरिका को आदर्श समाज मानता था। अमेरिका के बारे में वेबर की मान्यताओं और अनुभवों का मुख्य केंद्र बिन्दु 'प्रजातंत्र' और 'नौकरशाही' था। वेबर ने प्रजातंत्र और नौकरशाही के सिद्धांतों का वैज्ञानिक विवेचन भी प्रस्तुत किया है।

मैक्स वेबर जब जर्मनी से लौटकर हीडलबर्ग आया तो अपना लेखन कार्य प्रारंभ किया। उन्नीस सौ आठ में पितामह की वेस्टफोलिया की पटसन फैक्ट्री के व्यावसायिक मनोविज्ञान की जाँच की। उन्नीस सौ अट्ठाईस में मैक्स वेबर एक समाजशास्त्री समाज की स्थापना में कार्यरत था। प्रथम विश्व युद्ध (First World War) में 50 वर्ष की आयु में मैक्स वेबर ने अपनी सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व किया वह 1916 तक हीडलवर्ग वापस लौट आया और 1917 की गर्मियों की छुट्टियाँ उसने अपनी पत्नी के घर वेस्टफेलिया में बितायीं।

मैक्स वेबर 1918 में वियना के विश्वविद्यालय में ग्रीष्म सत्र के लिए गया। इसी वर्ष में उसके राजतंत्रिक विचार गणतंत्र में परिवर्तित हो गये। गर्मियों के मध्य वह बीमार पड़ा। बीमारी की अंतिम स्थिति में डॉक्टर ने उसे कठिन निमोनिया बताया। जून 1920 में उसका स्वर्गवास हो गया। मैक्स वेबर के जीवन में जितनी व्यस्तता थी उतनी अन्य समाजशास्त्रियों में नहीं थी। उसने विषम परिस्थितियों को झेलते हुए भी समाजशास्त्रीय साहित्य में नवीन विचारों का प्रतिपादन किया, जिसे समाजशास्त्र के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ········ जब जर्मनी से लौटकर हीडलवर्ग आया तो अपना लेखन कार्य प्रारंभ किया।
2. मैक्स वेबर 1918 में वियना के ········ में ग्रीष्म सत्र के लिए गया।
3. मैक्स वेबर विषम ········ को झेलते हुए भी समाजशास्त्रीय साहित्य में नवीन विचारों का प्रतिपादन किया।

नोट

मैक्स वेबर के महत्त्वपूर्ण कार्य

प्रत्येक देश में जो सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण होता है। वह वहां के निवास करने वाले प्राणियों को प्रभावित करता है। वेबर का अधिकांश जीवन फ्रान्स में ही व्यतीत हुआ। वहीं फ्रांसीसी भाषा ने उसके जीवन को स्पर्श किया। उसने अपने ग्रंथों को जर्मन में ही लिखा है, किन्तु उसकी समस्त पुस्तकों का अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया है। उसके द्वारा लिखित प्रमुख समाजशास्त्रीय ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

1. ऐसे ऑन सोशालॉजी
2. द प्रोटेस्टेन्ट इथिक्स एन्ड स्प्रिट ऑफ केपिटलिज्म
3. द थियोरी ऑफ इकोनामिक्स एंड सोशल ऑरगनाइजेशन
4. जनरल इकोनामिक्स थ्योरी
5. द सिटी
6. द हिन्दू सोशल सिस्टम
7. द रिलीजन ऑफ चाइना
8. एनशियन्ट इण्डियन्स
9. मेथडोलॉजी ऑफ सोशल साइंस।

18.2 वेबर के विचारों पर प्रभाव (Influence on Weber's Thinking)

व्यक्ति परिस्थितियों से अपने को अलग नहीं कर पाता है। यही परिस्थितियाँ व्यक्ति को समय-समय पर उपयोगी एवं अनुपयोगी रूप से प्रभावित करती रहती हैं। जिन प्रमुख व्यक्तियों और परिस्थितियों ने वेबर के विचारों को प्रभावित किया है, उनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. **पारिवारिक दशाएँ (Familie's Conditions)–**सर्व प्रमुख प्रभाव एवं संस्कार बच्चे को अपने माता-पिता से प्राप्त होते हैं। वेबर के विचारों पर सबसे अधिक प्रभाव उसके परिवार के सदस्यों का पड़ा था। वेबर का पिता एक कुशल राजनीतिज्ञ, कानून ज्ञाता एवं पालिका सलाहकार थे। इसके साथ ही वे समृद्धिशाली व्यक्ति भी थे। वेबर की माँ एक उदार एवं सुशिक्षित महिला थीं एवं प्रोटेस्टेन्ट धर्म को मानने वाली थीं। माता-पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य भाई-बहनों तथा पारिवारिक सदस्यों का भी उसके जीवन पर प्रभाव पड़ा था। इसी प्रभाव के कारण उसने निम्न शीर्षक से अपना निबन्ध प्रकाशित किया था। 'Dedicated to my own insignificant ego as well as to parents and siblings.' वेबर का यह निबंध काफी चर्चित हुआ था।

2. **जर्मनी का आदर्शवादी दर्शन (Idealistic philosophy of German)–**मैक्स वेबर के विचारों में वैज्ञानिकता एवं यथार्थता के दर्शन के साथ ही साथ मौलिकता का भी समावेश है। उसकी रचनाओं पर तत्कालीन जर्मनी के बौद्धिक वातावरण का प्रभाव पड़ा था। तत्कालीन जर्मन विचारधारा में यह विवाद जोरों से चल रहा था कि सामाजिक विज्ञानों और प्राकृतिक विज्ञानों में मौलिक भेद है। सामाजिक विज्ञानों में कार्य-करण का संबंध नहीं पाया जाता है। जबकि भौतिक विज्ञान कार्य-कारण के संबंधों पर आधारित होते हैं। इसीलिए विद्वानों ने सामाजिक विज्ञानों पर यह आरोप लगाया था कि सामाजिक विज्ञान सत्यता का अध्ययन नहीं कर सकते हैं क्योंकि इनमें कार्य-कारण संबंध नहीं पाये जाते हैं।

वेबर ने उपरोक्त विचारों का विरोध किया और यह बताने का प्रयास किया कि सामाजिक विज्ञानों में भी कार्य-कारण संबंधों का पता लगाया जा सकता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने आदर्श प्रारूप (Ideal Type) के

नोट

सिद्धान्त को प्रस्तुत किया और यह बताने का प्रयास किया कि सामाजिक विज्ञानों (Social Sciences) में भी अवलोकन, परीक्षण और सामान्यीकरण द्वारा व्यवस्थित नियमों का निर्माण किया जा सकता है। इसी विचार को प्रस्तुत करने हेतु वेबर ने जर्मनी के आदर्शवादी दर्शन का गहन अध्ययन किया था।

3. **कार्ल मार्क्स (Karl Marx)–**मैक्स वेबर के विचारों को साम्यवादी विचारक कार्ल-मार्क्स ने अत्यधिक प्रभावित किया। मार्क्स ने अपने सिद्धान्त में आर्थिक निर्धारणवाद (Economic Determinism) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था और यह बताने का प्रयास किया था कि समाज में जो भी बदलाव या परिवर्तन होते हैं उनके लिए आर्थिक परिस्थितियाँ ही जिम्मेवार होती हैं। जब आर्थिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं तो समाज अपने आप परिवर्तित हो जाता है। मार्क्स ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया था कि आर्थिक परिस्थितियों के अलावा अन्य कारक गौण होते हैं, केवल आर्थिक कारक या तत्व ही प्रमुख होते हैं।

4. कार्लमार्क्स की उपरोक्त विचारधारा का मैक्स वेबर ने विरोध किया तथा परिवर्तन के लिए उसे प्रमुख घटक नहीं माना है। वेबर ने यह स्वीकार किया है कि अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त अन्य अनेकों कारक हैं जो सामाजिक जीवन एवं समाज व्यवस्था को परिवर्तित कर देते हैं। उसने जोरदार शब्दों में यह बताने का प्रयास किया था कि धर्म सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारण है। यह विश्व के छः प्रमुख धर्मों का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि धर्म और केवल मात्र धर्म ही सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण है। अपने इन विचारों का प्रतिपादन उसने (Protestant ethics and spirit of capitalism) नामक ग्रंथ में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक में वेबर ने धर्म के संबंध में अपना व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

5. **स्ट्रास (Strauss)–**स्ट्रास ने भी वेबर के जीवन को कम प्रभावित नहीं किया है। वेबर स्ट्रास की पुस्तक 'The Old and the New belief' को नियमित रूप से अपनी दिनचर्या के रूप में पढ़ता था। अतः स्ट्रास के विचारों का उसके जीवन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

टास्क मैक्स वेबर के विचारों पर क्या प्रभाव पड़ा? संक्षिप्त वर्णन करें।

उपरोक्त परिस्थितियाँ और व्यक्तियों के अलावा भी मैक्स वेबर के विचारों पर संस्थात्मक अर्थशास्त्रीय सम्प्रदाय (Institutional Economic School) कानून आदि का प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त जैसा की पहले लिखा जा चुका है कि वेबर का दुर्बल स्वास्थ्य भी उसकी विचारधारा को प्रभावित करने में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

क्या आप जानते हैं वेबर ने अपने जीवन में विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की तथा विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों से बराबर जुड़े रहे। अतः इनका भी प्रभाव उसके जीवन में पड़ा था।

18.3 सारांश (Summary)

- मैक्स वेबर का सम्पूर्ण योगदान समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मैक्स वेबर ने यद्यपि अपनी सभी रचनाएँ जर्मन भाषा में लिखी हैं, पर अधिकांश का अंग्रेजी में अनुवाद हो गया है। मैक्स वेबर एक यथार्थवादी विचारक थे लेकिन उन्होंने प्रत्यक्षवादी विचारों की आलोचना की। वे मानव समाज के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के समर्थक थे।

नोट

- मैक्स वेबर के विचारों में वैज्ञानिकता एवं यथार्थता के दर्शन के साथ ही साथ मौलिकता का भी समावेश है।
- मैक्स वेबर के विचारों को साम्यवादी विचारक कार्ल-मार्क्स ने अत्यधिक प्रभावित किया।

18.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **मूल्य निर्णय (Value Judgement):** क्या वांछनीय एवं मूल्यवान है, इसके संबंध में किया गया निर्णय ही मूल्य निर्णय कहलाता है। लगभग सभी मानवीय क्रियाओं के लिए मूल्य-निर्णयों का होना आवश्यक है।

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वेबर के विचारों पर समकालीन विचारकों का क्या प्रभाव पड़ा?
2. मैक्स वेबर के प्रमुख समाजशास्त्रीय ग्रंथ कौन-से हैं?
3. जिन व्यक्तियों और परिस्थितियों ने वेबर के विचारों को प्रभावित किया है, उनका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. मैक्स वेबर 2. विश्वविद्यालय 3. परिस्थितियों।

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
3. सोशियोलॉजी—टी.बी. बोटोमोर।

नोट

इकाई–19 : एक व्याख्यात्मक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र, वर्स्टेहन की अवधारणा तथा आदर्श प्रारूप (Sociology as a Interpretative Science, Concept of Verstehen and Ideal Type)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

19.2 आदर्श-प्रारूप की धारणा (Concept of Ideal Type)

19.3 सारांश (Summary)

19.4 शब्दकोश (Keywords)

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समाजशास्त्र एक अंत:क्रियात्मक विज्ञान के रूप में।
- वर्स्टेहन पद्धति के बारे में जानकारी।
- आदर्श प्रारूप के बारे में समझ विकसित करना।

प्रस्तावना (Introduction)

बोगार्डस ने लिखा है, "पद्धतिशास्त्र को मैक्स वेबर की देन यह थी कि उन्होंने सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्यांकनात्मक-निर्णय पद्धति में अन्तर किया था। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मानवीय संबंधों का अध्ययन करते समय इन दोनों पद्धतियों को कदापि मिलने न देना चाहिए। उन्होंने अपने तरीके से समाजशास्त्र के एक विज्ञान के विकास के लिए नींव डाली।" यह वेबर की पद्धतिशास्त्रीय गहन अन्तर्दृष्टि के कारण ही संभव हुआ।

नोट

मैक्स वेबर के समय तक जर्मनी में यह परम्परा बहुत कुछ दृढ़ हो गई थी कि जिन पद्धतियों से प्राकृतिक विज्ञानों में घटनाओं का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है, उन्हीं पद्धतियों को सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में काम में नहीं लाया जा सकता। इसका तात्पर्य यही हुआ कि जो यथार्थता प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन तथा निष्कर्षों में होती है, उस यथार्थता की समाजशास्त्रीय अध्ययन व विश्लेषणों में आशा नहीं की जा सकती। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि उनका उसी भाँति विवरण मात्र प्रस्तुत किया जा सकता है जैसा कि हमें इतिहास में देखने को मिलता है, क्योंकि सामाजिक विज्ञानों का क्षेत्र विभिन्न रूपों में स्वाधीन इच्छा, प्रातीतिक भावनाओं और विचारों तथा बौद्धिक संवेदनशीलता (geist) का क्षेत्र समझा जाता था। इस संबंध में सबसे बड़ी बात यह थी कि उपरोक्त ऐतिहासिक सम्प्रदाय का यह विश्वास था कि केवल प्राकृतिक विज्ञानों में ही सामान्यीकृत सैद्धान्तिक श्रेणियों का प्रयोग हो सकता है, सामाजिक विज्ञानों में नहीं। सामाजिक विज्ञानों में तो केवल ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा ही सामाजिक घटनाओं की व्याख्या और उनमें अन्तर्निहित प्रेरक शक्ति एवं सांस्कृतिक प्रभावों का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

19.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

मैक्स वेबर के अनुसार, "समाजशास्त्र यह विज्ञान है जोकि सामाजिक क्रिया का निर्वचनात्मक बोध करने का प्रयत्न करता है, जिससे कि इसकी (सामाजिक क्रिया की) गतिविधि तथा परिणामों की कारण-सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके।"

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि मैक्स वेबर के समाजशास्त्र की अध्ययन-वस्तु 'सामाजिक क्रिया' है। लेकिन इस संबंध में, मेक्स वेबर के शब्दों में, "यह स्मरणीय है कि समाजशास्त्र किसी भी अर्थ में केवल 'सामाजिक क्रिया' के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है; हाँ, इतना अवश्य है कि सामाजिक क्रिया समाजशास्त्र का (कम-से-कम उस समाजशास्त्र का जिसे कि **वेबर** ने यहाँ विकसित किया है) केन्द्रीय अध्ययन-विषय है, और समाजशास्त्र को एक विज्ञान की स्थिति प्रदान करने में निर्णायक कहा जा सकता है।"

नोट्स समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम केवल सामाजिक क्रियाओं का ही अध्ययन करते हैं, ऐसा समझना गलत होगा; हाँ इतना अवश्य है कि सामाजिक क्रियाएँ समाजशास्त्र का केन्द्रीय अध्ययन-विषय हैं, जोकि समाजशास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान के स्तर तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होंगी।

यदि मैक्स वेबर की परिभाषा को फिर से दोहराया जाए तो हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक क्रिया का निर्वचनात्मक बोध करने का प्रयत्न करता है, अर्थात् मैक्स वेबर के, समाजशास्त्र में सामाजिक क्रिया और अर्थपूर्ण बोध, ये दो पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं। ऊपर हम सामाजिक क्रिया के विषय में लिख आए हैं; अब हमें 'निर्वचनात्मक बोध' के विषय में भी समझ लेना चाहिए। मैक्स वेबर इस बात पर बल देते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक क्रिया के साधारण बोध से सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि यह अर्थपूर्ण बोध करने का प्रयत्न करता है। किसी भी घटना या परिस्थिति का 'अर्थ' दो प्रकार का हो सकता है—(1) औसत वर्ग—यह वह अर्थ होता है जोकि साधारणत: समाज के अधिकांश सदस्य लगाते हैं, और (2) यथार्थ अर्थ—यह वह अर्थ होता है जोकि एक व्यक्ति परिस्थिति के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् तर्कसंगत आधार पर लगता है। इन दो प्रकार के अर्थ के भेद को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि कोई विद्यार्थी किसी परीक्षा में बैठने जा रहा है। यह अपनी परीक्षा

नोट

की तैयारी इस प्रकार करता है कि उसे अधिकतम अंक प्राप्त हो सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसकी क्रियाएँ परीक्षा में आने वाले सम्भावित प्रश्न-पत्र उनको बनाने वाले परीक्षक, पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्नों आदि से सम्बन्ति उन सामान्य अनुमानों पर आधारित होंगी जैसाकि अधिकांश विद्यार्थी लगाते हैं या जैसाकि अधिकांश व्यक्ति करते हैं। यह उक्त परीक्षा से संबंधित परिस्थिति का सामान्य या औसत अर्थ है। इसके विपरीत, उसी परिस्थिति का यथार्थ अर्थ लगाना तब संभव होगा जब किसी विद्यार्थी को उस परीक्षा की प्रणाली, वास्तविक परीक्षक, संभावित पुस्तकें आदि के संबंध में पूर्ण जानकारी हो। परीक्षा में सफल अथवा असफल हो जाने पर विद्यार्थी अपने इस यथार्थ अर्थ का वास्तविक मूल्यांकन कर सकता है। इस यथार्थ अर्थ के आधार पर परीक्षार्थी और परीक्षक दोनों की ही क्रियाओं की ठीक-ठीक उचित विवेचना की जा सकती है।

मैक्स वेबर के अनुसार, समाजशास्त्रियों को प्रत्येक सामाजिक घटना या क्रिया का इसी प्रकार यथार्थ अर्थ खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। अत: स्पष्ट है कि **मैक्स वेबर** का समाजशास्त्र '**अर्थपूर्ण**' इसलिए है कि (1) इसका संबंध अर्थपूर्ण सामाजिक क्रियाओं से है; और (2) इसकी पद्धति का उद्‌देश्य सामाजिक क्रिया की व्याख्या पूर्णतया तार्किक आधार पर करना है। इन दो आधारभूत विशेषताओं के कारण ही समाजशास्त्रीय नियम वैज्ञानिक कहे जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक सामाजिक क्रिया का एक उद्देश्य और एक अर्थ होता है। यह दूसरे व्यक्तियों की क्रिया तथा उद्देश्यों द्वारा प्रभावित होता है। समाजशास्त्र सामाजिक क्रियाओं को उनके अर्थ के आधार पर उस रूप में अध्ययन करता है जिस रूप में वे सामाजिक क्रियाएँ दूसरों की क्रियाओं द्वारा प्रभावित हों। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र को अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से पृथक् किया जा सकता है। प्राकृतिक विज्ञानों में घटनाओं के उद्‌देश्य अथवा अर्थ पर विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि प्राकृतिक घटनाएँ तो प्राकृतिक नियम के अनुसार आप-से-आप घटित होती हैं। परन्तु सामाजिक घटनाएँ तो व्यक्तियों की अन्त: क्रियाओं का परिणाम होती हैं। इसलिए समाजशास्त्र घटनाओं के उद्देश्य और अर्थ दोनों पर अपना अखंड ध्यान केन्द्रित करता है।

मैक्स वेबर के अनुसार समाजशास्त्रीय पद्धति कारण-सहित व्याख्या तथा अर्थपूर्ण बोध के बीच एक सन्तुलन स्थापित करने में सफल हुई है। इसके बिना सम्पूर्ण का ज्ञान क्रियाओं के अर्थों को ठीक-ठीक जाने बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसके कुछ भी विपरीत होने पर समाजशास्त्र केवल तथ्यों का अर्थहीन वर्णन मात्र रह जाएगा। दूसरे शब्दों में, समाजशास्त्रीय पद्धति का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक घटनाओं के कारण को ढूँढ़ निकालना है। परन्तु इन कारणों का पता हम तब तक नहीं लगा सकते जब तक हमें व्यक्ति की सामाजिक क्रियाओं का अर्थपूर्ण बोध न हो जाएगा। यह भी सच है कि सामाजिक क्रिया कोई आप-से-आप घटित होने वाली या प्राकृतिक घटना नहीं है; सामाजिक क्रिया तो व्यक्तियों की क्रियाओं या व्यवहारों द्वारा प्रभावित तथा निर्धारित होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **मैक्स वेबर** के अनुसार व्यक्ति के द्वारा की गई उस क्रिया का, जोकि अन्य **व्यक्तियों** की क्रियाओं द्वारा प्रभावित व निर्धारित होती है, अर्थपूर्ण बोध करना और उस बोध के आधार पर सामाजिक कारणों की खोज निकालना समाजशास्त्रीय पद्धति का मुख्य लक्ष्य है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि **मैक्स वेबर** का समाजशास्त्र दूसरे सामाजिक विज्ञानों से इस अर्थ में भिन्न है कि आपके समाजशास्त्र में व्यक्ति का (जोकि सामाजिक क्रिया को उत्पन्न करने वाला होता है) स्थान सर्वप्रमुख है। मैक्स वेबर के ही शब्दों में, "अर्थ-निरूपण करने वाला समाजशास्त्र व्यक्ति और उसकी क्रिया को आधारभूत इकाई या '**अणु**' के रूप में विचार करता है। इस विज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण आचरण का एकमात्र वाहक है।" मैक्स वेबर का कथन है कि वैसे तो सामान्य रूप से समाजशास्त्र के लिए 'राज्य', 'समिति', 'सामन्तवाद' और इसी प्रकार की अन्य अवधारणाएँ कुछ विशेष प्रकार की मानवीय अन्त: क्रिया को व्यक्त करती

हैं, फिर भी समाजशास्त्र का यह कार्य है कि वह इन अवधारणाओं को समझी जा सकने वाली क्रियाओं में बदल दें।

उपर्युक्त आधार पर मैक्स वेबर ने समाजशास्त्रीय नियम तथा प्राकृतिक विज्ञान के नियमों (laws) की व्याख्या की है। आपके अनुसार समाजशास्त्रीय नियमों और प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों में भेद है। प्राकृतिक विज्ञान के अर्न्तगत नियमों की खोज करना स्वयं एक साध्य है, लेकिन समाजशास्त्र में ऐसा नहीं है। समाजशास्त्र नियमों का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार को स्पष्टत: समझना और उसी आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं के अन्त: संबंधों की कारण-सहित खोज करना है, जहाँ तक कि इन घटनाओं की गतिविधि और परिणाम या प्रकृति तथा कार्य के सम्पर्क हैं।

अपने समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए मैक्स वेबर सदैव प्रयत्नशील तथा जागरूक रहे। इस उद्देश्य से आपने कठोरतापूर्वक 'क्या है' को 'क्या होना चाहिए' से, प्रयोगसिद्ध ज्ञान को भविष्य-कथन से तथा सर्वत्र-सत्य वैज्ञानिक विश्लेषण को मूल्यांकनात्मक-निर्णय से बिल्कुल अलग रखा है। मैक्स वेबर का दृढ़ विश्वास है कि यदि समाजशास्त्र या अन्य किसी भी सामाजिक विज्ञान को विज्ञान बनाना है, तो उसे दृढ़तापूर्वक केवल (1) अपने अध्ययन को 'क्या है' तक ही सीमित रखना चाहिए; (2) गैर-आदर्शात्मक या प्रामाणिक आधार पर मानवीय संबंधों के ऐतिहासिक उद्विकास के विशिष्ट तथा विभेदक पक्षों का अध्ययन करना चाहिए; (3) सामाजिक जीवन की बुनियादी गतिविधियों में पाई जाने वाली घटनाओं के क्रम तथा उसकी क्रियाशीलता एवं परिणामों को कारण-सहित जानने का प्रयत्न करना चाहिए; (4) विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की अन्त: क्रिया की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करनी चाहिए; और (5) सर्वत्र सत्य वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए मूल्यांकन-निर्णयों से बचना चाहिए।

उपर्युक्त यथार्थता तथा सुतथ्यता के आधार पर मैक्स वेबर अपने वैज्ञानिक समाजशास्त्र को यह प्रदर्शित करने का कार्य सौंपते हैं कि किस प्रकार एक सामाजिक घटना केवल एक परिणाम को ही जन्म देती है, दूसरे को नहीं; और किस प्रकार एक प्रकार की अवस्थाओं में एक घटना सदैव ही कुछ निश्चित परिणामों को उत्पन्न करेगी, दूसरे किसी प्रकार का परिणाम नहीं।

क्या आप जानते हैं विश्लेषणात्मक तथा अर्थपूर्ण अध्ययन तभी सम्भव हो सकते हैं, यदि वे मानवीय संस्कृति की विकासात्मक प्रक्रिया में व्यक्त होने वाली सामाजिक शक्तियों के सम्पूर्ण ज्ञान पर आधारित हों।

19.2 आदर्श प्रारूप की धारणा (Concept of Ideal Type)

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि मैक्स वेबर के समय तक जर्मनी में इस प्रकार के विद्वानों का एक कट्टर संप्रदाय विकसित हो गया था जो इस बात पर विश्वास करता था कि सामाजिक घटनाओं पर प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति के अनुसार विचार नहीं किया जा सकता। वे विद्वान् सामाजिक क्षेत्र में व्याख्या और स्पष्टीकरण को मूलत: ऐतिहासिक मानते थे। इस सम्बन्ध में मैक्स वेबर का मत है कि तर्कसंगत रीति से सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण संबंधों को तब तक स्पष्ट नहीं किया जा सकता है, जब तक उन घटनाओं को पहले समानताओं के आधार पर कुछ सैद्धान्तिक श्रेणियों में बाँट न लिया जाए। ऐसा करने पर हमें अपने अध्ययन के लिए कुछ 'आदर्श-टाइप' घटनाएँ मिल जाएँगी। इस दृष्टिकोण में सामाजिक घटनाओं की तार्किक-संरचना में बुनियादी पुनर्निर्माण की आवश्यकता है।

नोट

पुनर्निर्माण के इस कार्य में ही मैक्स वेबर ने अपने 'आदर्श प्रारूप' के प्रसिद्ध सिद्धान्त को विकसित किया। मैक्स वेबर ने इस बात पर बल दिया है कि समाजशास्त्रियों को अपनी उपकल्पना का निर्माण करने के लिए 'आदर्श' अवधारणाओं को चुनना चाहिए। 'आदर्श प्रारूप' न तो 'औसत प्रारूप' है, न ही आदर्शात्मक, बल्कि 'वास्तविकता' के कुछ विशिष्ट तत्वों के विचारपूर्वक चुनाव तथा सम्मिलन द्वारा निर्मित आदर्शात्मक मान है दूसरे शब्दों में, 'आदर्श प्रारूप' का तात्पर्य है कुछ वास्तविक तथ्यों के तर्कसंगत आधार पर यथार्थ अवधारणाओं का निर्माण करना। 'आदर्श' शब्द का कोई भी संबंध किसी प्रकार के मूल्यांकन से नहीं है। विश्लेषणात्मक प्रयोजन के लिए कोई भी वैज्ञानिक किसी भी तथ्य या घटना के आदर्श-प्रारूप का निर्माण कर सकता है, चाहे वह वेश्याओं से संबंधित हो या धार्मिक नेताओं से। इस वाक्य का यह अर्थ नहीं है कि, "केवल पैगम्बर या दुराचारी ही आदर्श हैं या उन्हें जीवन के आदर्श तरीकों का प्रतिनिधि मानकर अनुकरण करना ही चाहिए।" वास्तव में सामाजिक घटनाओं का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत और जटिल है। इस कारण अध्ययन-कार्य तथा घटनाओं के विश्लेषण में सुविधा और यथार्थता के लिए यह आवश्यक है कि समानताओं के आधार पर विचारपूर्वक तथा तर्कसंगत ढंग से कुछ वास्तविक घटनाओं या व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर सकें। इस प्रकार के चुनाव और सम्मिलन द्वारा जिस 'टाइप' का निर्माण होता है, उसे 'आदर्श टाइप' या प्रारूप कहा गया है। यह 'आदर्श' इस अर्थ में नहीं है कि इसके चुनाव या निर्माण में किसी आदर्शात्मक विचार, अनुमान या पद्धति का अनुसरण किया गया है; यह आदर्श इस अर्थ में है कि यह एक विशिष्ट श्रेणी या टाइप है जोकि उस प्रकार की सम्पूर्ण घटना या समस्त व्यवहार या क्रिया की वास्तविकता को व्यक्त करता है। अध्ययन-पद्धति की दृष्टि से चूँकि इस प्रकार के 'टाइप' से एक वैज्ञानिक को काफी सुविधा होती है और साथ ही अध्ययन-कार्य में अधिकाधिक यथार्थता तथा सुतथ्यता आती है, इस कारण वैज्ञानिक के लिए यह 'टाइप' आदर्श है। 'आदर्श' शब्द का प्रयोग केवल इसी अर्थ में किया गया है, अन्य किसी भी अर्थ में नहीं।

'आदर्श-प्रारूप' की धारणा को विकसित करने में मैक्स वेबर ने कोई नवीन वस्तु प्रस्तुत करने का दावा नहीं किया है, उन्होंने केवल अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा उसे अधिक स्पष्ट तथा यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया, जिससे कि तार्किक आधारों पर मानव-क्रियाओं के कारण-सहित संबंधों का अधिक यथार्थ तथा व्यवस्थित ढंग से अध्ययन एवं विश्लेषण संभव हो सके। मैक्स वेबर इस बात पर अधिक बल देते हैं कि सामाजिक वैज्ञानिकों को केवल उन्हीं अवधारणाओं को अध्ययन-कार्य में प्रयोग करना चाहिए जोकि तर्कसंगत ढंग से नियन्त्रित, सन्देशरहित तथा प्रयोगसिद्ध हों। वैज्ञानिक पद्धति की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसके बिना सामाजिक क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा निरूपण संभव नहीं है।

टास्क आदर्श प्रारूप की धारणाएँ क्या हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

प्राकृतिक विज्ञानों में प्रचलित अवधारणाओं से पृथक् मैक्स वेबर की दृष्टि में आदर्श-प्रारूप की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं–

(1) इस आदर्श-प्रारूप का निर्माण, कर्ता की क्रिया के इच्छित अर्थ के अनुसार किया जाता है। दूसरे शब्दों में, आदर्श-प्रारूप में वैज्ञानिक के दृष्टिकोण से जो अर्थ एक क्रिया का है, वह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि उस क्रिया का वह अर्थ जोकि उसे करने वाला लगता है। जर्मन भाषा में इसे Verstehen कहा जाता है। इस विशेषता ने सामाजिक विज्ञानों तथा प्राकृतिक विज्ञानों में अन्तर को और भी स्पष्ट कर दिया है। यह सच है कि इस अवधारणा को **मैक्स वेबर** ने **डिल्थे** और **सिम्मल** से लिया है, फिर भी आपने इसको उन लेखों से सर्वथा भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है।

नोट

(2) आदर्श-प्ररूप 'सब-कुछ' का वर्णन या विश्लेषण नहीं है, यह तो एक सामाजिक घटना या क्रिया के अति महत्त्वपूर्ण पक्षों का निरूपण है और इसीलिए आदर्श-प्रारूप में कुछ तत्त्वों को उनके विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है और कुछ को जानबूझकर छोड़ दिया जाता है। इससे आदर्श-प्रारूप में कुछ अनिश्चितता या अस्पष्टता नहीं आ पाती और यह अधिकाधिक यथार्थ बन जाता है। यद्यपि अपने अध्ययनों में इस सिद्धान्त पर मैक्स वेबर स्वयं ही दृढ़ न रह सके, फिर भी आपने इस बात पर अधिक बल दिया है कि आदर्श-प्रारूप को केवल सामाजिक क्रिया के प्रतिमान के तर्कसंगत तत्वों की व्याख्या करनी चाहिए और जो कुछ भी तर्कसिद्ध नहीं है या जिन्हें तर्क की कसौटी पर कसा नहीं जा सकता है, उन्हें या तो छोड़ देना चाहिए या भ्रान्त-तर्क आदि के रूप में विचार किया जाना चाहिए। यह आदर्श-प्रारूप के उस विशिष्ट गुण या विशेषता की ओर संकेत करता है जोकि समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) मैक्स वेबर ने इस ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि आदर्श-प्रारूपों को केवल मात्र ठोस ऐतिहासिक समस्याओं के हेतु साधन या उपकरण के रूप में प्रयोग करना चाहिए; आदर्श-प्रारूप को ढूँढ़ निकालना ही सामाजिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार के स्थिर सिद्धान्त की प्रणाली संभव नहीं है। चूंकि सामाजिक समस्याएँ परिस्थिति के अनुसार भिन्न होती हैं और चूंकि उन समस्याओं का प्रारूप अनुसन्धानकर्त्ता के विशिष्ट दृष्टिकोण से संबंधित होता है इसलिए उनके समाधान के लिए अवधारणाओं अर्थात् आदर्श प्रारूपों को अंतिम मान लेना उचित न होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. विद्वान सामाजिक क्षेत्र में व्याख्या और स्पष्टीकरण को मूलत: ········ मानते थे।
2. इस दृष्टिकोण में सामाजिक घटनाओं की ········ में बुनियादी पुनर्निर्माण की आवश्यकता है।
3. वास्तव में सामाजिक घटनाओं का क्षेत्र ········ विस्तृत और जटिल है।

19.3 सारांश (Summary)

- मैक्स वेबर के समाजशास्त्र के विषय में विवेचना करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि आप अपने समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में सुप्रतिष्ठित करने के लिए एक ऐसे पद्धतिशास्त्र का विकास करना चाहते हैं जिसके द्वारा (क) सामाजिक संबंधों के ऐतिहासिक उद्विकास के विशिष्ट तथा विभेदक पक्षों का अध्ययन, (ख) सामाजिक जीवन की बुनियादी गतिविधियों तथा कार्यों के अन्तर्निहित कारणों का निर्धारण, तथा (ग) विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की व्याख्या प्रस्तुत की जा सके।
- 'आदर्श-प्रारूप' की धारणा को विकसित करने में मैक्स वेबर ने कोई नवीन वस्तु प्रस्तुत करने का दावा नहीं किया है, उन्होंने केवल अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा उसे अधिक स्पष्ट तथा यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया।

19.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **वर्स्टेहन (Verstehen):** 'वर्स्टेहन' जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अभिप्राय अंतर्दृष्टि अथवा व्यक्तिगत बोध से है जो एक व्यक्ति सामाजिक अंत:क्रिया तथा दूसरों की भूमिकाओं के निर्वाह द्वारा प्राप्त करता है। किसी तथ्य अथवा घटना को अंतर्दृष्टि द्वारा समझने के प्रयास को कुछ सीमा तक वर्स्टेहन कहा जा सकता है।

नोट

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मैक्सवेबर के अंत:क्रियात्मक बोध (वर्स्टेहन) की अवधारणा को स्पष्ट करें।
2. आदर्श प्रारूप से क्या समझते हैं? विवेचना करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. ऐतिहासिक 2. तार्किक-संरचना 3. अत्यधिक।

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मार्गन।
2. द सोसायटी—मैकाइव एवं पेज।

नोट

इकाई–20 : सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त एवं सामाजिक क्रिया के प्रकार (Theory of Social Action and Types of Social Action)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

20.2 सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त (Theory of Social Action)

20.3 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ (Characteristics of Social Action)

20.4 सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

20.5 सामाजिक क्रिया को समझने की विधियाँ (Methods of Understanding Social Action)

20.6 सारांश (Summary)

20.7 शब्दकोश (Keywords)

20.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के रूप में सामाजिक क्रिया।
- सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ।
- सामाजिक क्रिया के प्रकार।

प्रस्तावना (Introduction)

मैक्स वेबर की विचारधारा में क्रिया के सिद्धान्त का अपना एक अलग महत्त्व है क्योंकि आपके मतानुसार सामाजिक क्रिया ही समाजशास्त्र की केन्द्रीय अध्ययन वस्तु है। इसी तथ्य पर बल देने के लिए आपने समाजशास्त्र को जैसाकि

नोट

पहले ही लिखा जा चुका है, एक ऐसे विज्ञान के रूप में परिभाषित किया, "जोकि सामाजिक क्रिया का व्याख्यात्मक बोध करने का प्रयत्न करता है, जिससे कि इसकी (सामाजिक क्रिया की) गतिविधि और परिणामों के कारण सहित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जा सके।" सामाजिक क्रिया साधारण क्रिया या वैयक्तिक क्रिया से भिन्न है। इस बात को समझाने के लिए वेबर ने सामाजिक क्रिया की विशेषताओं व प्रकारों पर प्रकाश डाला है; पर उससे भी पहले आपने सामाजिक क्रिया के विशेष अर्थ को स्पष्ट किया है।

20.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

वेबर का उद्देश्य समाजशास्त्र को विज्ञान बनाना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने आदर्श प्रारूप (Ideal Type) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धान्त में उसने यह बताने का प्रयास किया था कि सामाजिक विज्ञानों में भी कार्य-कारण संबंध होते हैं। कार्य-करण संबंधों का ज्ञान सामाजिक घटनाओं की व्याख्या के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए मैक्स वेबर को व्याख्यात्मक समाजशास्त्र का पिता भी कहा जा सकता है।

मैक्स वेबर ने अपनी पुस्तक 'Theory of Social and Economic Organisation' में समाजशास्त्र की जो परिभाषा दी है वह निम्नलिखित है–

"समाजशास्त्र एक विज्ञान है जो सामाजिक क्रियाओं के व्याख्यात्मक बोध का प्रयास करता है ताकि इनके घटनाक्रम एवं कार्य-करण संबंधों का विश्लेषण किया जा सके।"

मैक्स वेबर की उपरोक्त परिभाषा में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है–

(1) सामाजिक क्रिया,

(2) सामाजिक क्रियाओं की व्याख्या,

(3) सामाजिक क्रियाओं की व्याख्या का उद्देश्य, सामाजिक घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना, और

(4) सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण संबंधों का ज्ञान प्राप्त करना।

इस प्रकार व्याख्यात्मक समाजशास्त्र के अंतर्गत वेबर ने यह बताने का प्रयास किया है कि समस्त सामाजिक जीवन सामाजिक प्रक्रिया का प्रतिबिंब है। सामाजिक जीवन को समझने के लिए इन क्रियाओं की व्याख्या करना अनिवार्य है। व्याख्यात्मक समाजशास्त्र में सामाजिक क्रियाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। उसके सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना आगे की जा रही है।

20.2 सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त (Theory of Social Action)

सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त का प्रतिपादन मैक्स वेबर ने अपनी महान कृति 'Theory of Social and Economic Organisation' में प्रवाहित किया है। मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा को अपने चिन्तन का मूल आधार बनाया है। मैक्स वेबर के अनुसार मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में निरन्तर किसी न किसी प्रकार की क्रिया करता रहता है। मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के सम्पादन में कर्ता (Actors) को महत्त्वपूर्ण इकाई माना है। कर्ता जब किसी भी प्रकार का कार्य करता है तो वह क्रिया है। इसके लिए आवश्यक है कि क्रिया करते समय उसमें कर्ता का वैयक्तिक हित निहित हो। सामाजिक क्रिया का तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके द्वारा अन्य व्यक्ति प्रभावित होते हैं तथा उसका कुछ अर्थ निकलता हो।

नोट

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया को समाजशास्त्र के अध्ययन-विषय के रूप में अधिक महत्त्व प्रदान किया है। समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य सामाजिक क्रियाओं का यथार्थ शोध करना है जिससे कि इन क्रियाओं के प्रभावों या परिणामों की कारण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जा सके। मैक्स वेबर के अनुसार किसी भी क्रिया को हमें तभी सामाजिक क्रिया कहनी चाहिए जब वह क्रिया दूसरे सामाजिक प्राणियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।

समाजशास्त्र को एक निश्चित दिशा प्रदान करने वाले समाजशास्त्रियों में वेबर का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वेबर का मुख्य उद्देश्य समाजशास्त्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त को जन्म दिया। उसने समाजशास्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया के व्याख्यात्मक बोध का प्रयास करता है, ताकि उसकी दिशा और परिणामों के कार्य-कारण संबंधों को स्पष्ट किया जा सके।"

नोट्स वेबर के अनुसार "व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की क्रिया सामाजिक तभी है जब कर्ता उसका कोई प्रतीतिक अर्थ लगाए और दूसरों के व्यवहार से प्रभावित हो तथा उसके अनुसार उसकी गति निर्धारित हो।

यदि हम मैक्स वेबर द्वारा दी गई समाजशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषा की विवेचना करें तो इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं।

(अ) सामाजिक क्रिया (Social Action)

(ब) सामाजिक क्रिया की व्याख्या (Interpretation of Social Action)

(स) सामाजिक क्रिया के स्वरूप व परिणाम का कार्य-करण का संबंध (Causal relationship of course and results social action)

उपर्युक्त व्याख्या को स्पष्ट करते हुए वेबर ने लिखा है उस क्रिया को सामाजिक क्रिया कहा जा सकता है जिसमें क्रिया करने वाला दूसरे की क्रिया को अपने मन में सोचकर अपनी क्रिया को बदलता है। संक्षेप में यही वेबर की सामाजिक क्रिया कही जाती है।

20.3 सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ (Characteristics of Social Action)

मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया की जो विशेषताएँ बतलाई हैं उन्हें अत्यन्त ही संक्षेप में निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) सामाजिक क्रिया केवल क्रिया को नहीं कहा जा सकता है। वेबर के अनुसार हम उसी क्रिया को सामाजिक क्रिया कह सकते हैं जिसमें समाज के अन्य व्यक्तियों का हमारी क्रिया पर प्रभाव पड़ रहा हो। यह प्रभाव निम्न तीन प्रकार का हो सकता है–

(अ) सामाजिक क्रिया भूतकाल की क्रिया से प्रभावित हो सकती है। दूसरे शब्दों में आज की घटित होने वाली क्रिया के बीज भूतकाल में छिपे हुए होते हैं।

(ब) सामाजिक क्रिया वर्तमान के व्यवहारों का परिणाम भी हो सकती है।

नोट

(स) सामाजिक क्रिया के भविष्यगामी परिणाम भी होते हैं अर्थात् व्यक्ति आज जो क्रिया करता है उसका प्रभाव भविष्य के जीवन में भी हो सकता है।

(2) जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि अकेले व्यक्ति की क्रिया को सामाजिक क्रिया नहीं कहा जा सकता है। सिर्फ उस व्यक्ति की क्रिया को सामाजिक क्रिया कहा जा सकता है जो दूसरों से प्रभावित हो। इस प्रकार संक्षेप में सामाजिक क्रिया के लिए दूसरे व्यक्ति का होना अनिवार्य है। दूसरे व्यक्ति के संदर्भ में ही सामाजिक क्रिया सम्पादित होती है।

(3) सामाजिक क्रिया की तीसरी विशेषता यह है कि यह दूसरे व्यक्ति से प्रभावित होकर होती है। जब व्यक्ति दूसरे के व्यवहारों से प्रभावित होकर क्रिया करता है तो इससे आत्माभिप्रायक हो जाता है।

(4) सामाजिक क्रियाएँ अन्त: संबंधित होती हैं। वेबर सिर्फ ऐसी क्रियाओं को सामाजिक क्रिया कहता है। जिन क्रियाओं का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़े।

आधुनिक जटिल समाजों में सामाजिक क्रिया को मुख्य आधार मानकर सामाजिक जीवन और घटनाओं को समझने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक युग में इसलिए सामाजिक क्रिया को समाजशास्त्र के साथ जोड़कर इसे समझने का प्रयास किया जाता है।

सामाजिक क्रियाओं के संबंध में मैक्स वेबर के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने भी विचार व्यक्त किये हैं। प्रसिद्ध यूनानी विचारक अफलातून (Plato) का विचार है कि व्यक्ति के ऊपर की जाने वाली क्रियाएँ उस समाज का परिणाम है जिसमें व्यक्ति स्वयं रहता है। अर्थात् समाज जिस प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा करेगा व्यक्ति उसी प्रकार की सामाजिक क्रिया करेगा। समाज व्यक्ति को सामाजिक क्रियाओं के सम्पादन की शिक्षा देता है। अफलातून ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि जब सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है तो व्यक्ति की क्रियाएँ अपने आप परिवर्तित हो जाती हैं।

सामाजिक क्रियाओं की व्याख्या के सन्दर्भ में सुखदायी मनोविज्ञान (Hedonistic Psychology) का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सुखदायी विचारधारा के विद्वानों के अनुसार व्यक्ति की क्रियाएँ सुख और दुख दो प्रकार के तत्वों से संचालित होती हैं। व्यक्ति ऐसी क्रियाएँ सम्पादित करता है जिन क्रियाओं के माध्यम से वह अधिकाधिक सुख की अनुभूति करता है। इस प्रकार सुख सामाजिक क्रियाओं का मूल आधार है।

> *टास्क* सामाजिक क्रिया की क्या विशेषताएँ हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

20.4 सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

वेबर की समाजशास्त्रीय विचारधारा में सामाजिक क्रिया का अत्यधिक महत्त्व है। सामाजिक क्रिया समाजशास्त्र की विषयवस्तु है। मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया की इन श्रेणियों का उल्लेख किया है। सामाजिक क्रिया के ये विभिन्न श्रेणियों या प्रकार व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों का स्पष्ट करती है। मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया के प्रमुख प्रकारों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया है–

(1) परम्परात्मक प्रकार (Traditional Type)–इस प्रकार की क्रियाएँ सामाजिक विरासत (Social Heritage) के फलस्वरूप होती है। वेबर ने कहा है कि मनुष्य की सामाजिक क्रियाएँ समाज में प्रचलित प्रथाओं और परम्पराओं से संबंधित होती हैं। इन क्रियाओं को व्यक्ति इसलिए सम्पादित करता है कि ये अत्यन्त प्राचीनकाल

नोट

से चली आती हैं और व्यक्ति की सामाजिक विरासत का अंग होती है। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ प्रथाएँ एवं परम्पराएँ पायी जाती हैं। प्रत्येक समाज का नियंत्रण इतना कठोर होता है कि हम न चाहते हुए भी इन क्रियाओं का पालन करते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दुओं की दाह-संस्कार की परम्परा विभिन्न कर्मकाण्डों से युक्त है। इन कर्मकाण्डों को न चाहते हुए भी व्यक्ति सम्पादित करता है।

(2) भावात्मक प्रकार (Affective Type or Emotional Type)–अरस्तु ने जो कहा है कि 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यह तो ठीक है, परन्तु साथ ही साथ मनुष्य भावना प्रधान प्राणी भी है। मनुष्य हमेशा तर्क और विवेक से कार्य नहीं करता। वह भावनाओं के भवसागर में डुबकी लगाता रहता है तथा अनेक प्रकार की भावनाओं से संचलित होता है। उसमें काम, क्रोध, मोह, भय, ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विता आदि अनेक भावनाएं पायी जाती हैं। जब सामाजिक क्रियाएँ व्यक्ति की इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर की जाती हैं तो इन्हें सामाजिक क्रियाओं के भावात्मक प्रकार के रूप में जाना जाता है। ऐसी क्रियाएँ न तो मूल्य और परम्परा के द्वारा समझी जाती है और न ही तर्क और बुद्धि के द्वारा, अपितु इन क्रियाओं को भावना तथा संवेगों के आधार पर ही समझा जा सकता है। एक निर्दयी व्यक्ति भी एक भूखे बालक को देखकर भावनाओं में डूब जाता है तथा अपनी क्रिया को उदारता भरा मोड़ देता है। यह भावना ही है कि रोते-बिलखते व्यक्ति को देखकर कई लोग रोने लगते हैं। और न चाहते हुए भी उन्हें रोना पड़ता है।

(3) मूल्यात्मक प्रकार (Evaluation Type)–मैक्स वेबर की सामाजिक क्रिया का तीसरा प्रकार मूल्यात्मक है। इस प्रकार की सामाजिक क्रियाएँ मूल्यों से संबंधित होती हैं। प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मूल्य और मापदण्ड होते हैं। इन्हीं मूल्यों और मापदण्डों के आधार पर उस समूह को समझा जाता है। प्रत्येक समाज अपने मूल्य और मापदण्डों की रक्षा करता है तथा व्यक्तियों के व्यवहारों को इस प्रकार निर्देशित करता है कि वह मूल्यों और मापदण्डों के अनुसार हों। ये मूल्यात्मक क्रियाएँ समाज में आदिकाल से होती आयी हैं और भविष्य में होती रहेंगी। इन क्रियाओं का समाज में अपना मूल्य होता है जो तर्क और बुद्धि के द्वारा समझ में नहीं आता है। मांग में सिन्दूर भरना विवाहित महिला का मूल्य है। अपने से बड़ों का चरण स्पर्श करना आदि सामाजिक मूल्य ही है जिनसे व्यक्ति निर्देशित होता रहता है।

(4) बौद्धिक प्रकार (Rationalistic Type)–मैक्स वेबर के सामाजिक क्रिया का चौथा और अन्तिम प्रकार बौद्धिक प्रकार है। जब कोई कार्य योजनाबद्ध तरीके से तर्क, बुद्धि और विवेक द्वारा किया जाता है तथा उसमें साधन और साध्य को सम्मिलित किया जाता है तो ऐसी क्रिया को बौद्धिक सामाजिक क्रिया के नाम से जाना जाता है। बौद्धिक क्रियाएँ अन्य क्रियाओं की तुलना में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। व्यक्ति की उन क्रियाओं को बौद्धिक क्रिया कहा जाता है जो साधन और साध्य के आधार पर संचालित होती है। जब हम किसी प्रकार का कार्य करते हैं तो उस कार्य के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साधनों की स्पष्ट व्याख्या करते हैं। ऐसा करने का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक क्रिया का व्यवस्थित सम्पादन है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार की सामाजिक क्रिया अधिक तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक कही जाती है। किसी कार्य को करने से पहले व्यक्ति उस कार्य को करने के उचित साधनों का प्रयोग करता है, और तब वह अपने लक्ष्य तक पहुँचता है तो ऐसी क्रियाएँ बौद्धिक कही जायेंगी। उदाहरणार्थ 2 और 2 को जोड़ने से 4 होता है। यह भी बौद्धिक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मैक्स वेबर की समाजशास्त्रीय विचारधारा में सामाजिक क्रिया का ········· महत्त्व है।
2. प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ ········· पायी जाती हैं।
3. मनुष्य हमेशा तर्क और विवेक से ········· नहीं करता।

नोट

20.5 सामाजिक क्रिया को समझने की विधियाँ (Methods of Understanding Social Action)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि मनुष्य उद्देश्यशील प्राणी है। यही विचार मैक्स वेबर का भी है। वेबर ने स्वीकार किया है कि व्यक्ति जो भी क्रियाएँ करता है, उनके पीछे कोई न कोई उद्देश्य छिपा रहता है। व्यक्ति की अनेक सामाजिक क्रियाओं की प्रकृति ऐसी होती है। कि उन्हें समझने की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि वे बिल्कुल ही स्पष्ट होती हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसी क्रियाएँ भी होती हैं कि जिनका बाह्य व्यवहार स्पष्ट नहीं होता है। क्योंकि मानव आचरण और व्यक्तित्व स्वयं में ही अत्यन्त सूक्ष्म, गहन और जटिल है। इसका कारण यह है कि अनेक सामाजिक क्रियाएँ अत्यधिक आश्रित होती हैं। इन क्रियाओं में व्यक्तित्व का उद्देश्य या प्रयोजन मालूम करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है।

क्या आप जानते हैं जब तक हम मानवीय क्रियाओं के प्रयोजन और अर्थ को नहीं समझ लेते हैं। तब तक सामाजिक स्थिति को समझना कठिन होता है।

मैक्स वेबर ने कठिनतम सामजिक क्रियाओं को व्यावहारिक रूप देने तथा उन्हें समझने के लिए कुछ विधियाँ बतलाई हैं। इन विधियों के माध्यम से अनेक प्रकार के व्यक्तियों के क्रिया-कलापों को, जिसे सामाजिक क्रिया कहा जाता है, को आसानी से समझने का प्रयास वेबर ने किया है। सामाजिक क्रिया को समझने के लिए प्रमुख विधियों के रूपों को निम्न तालिका में दिखाया गया है।

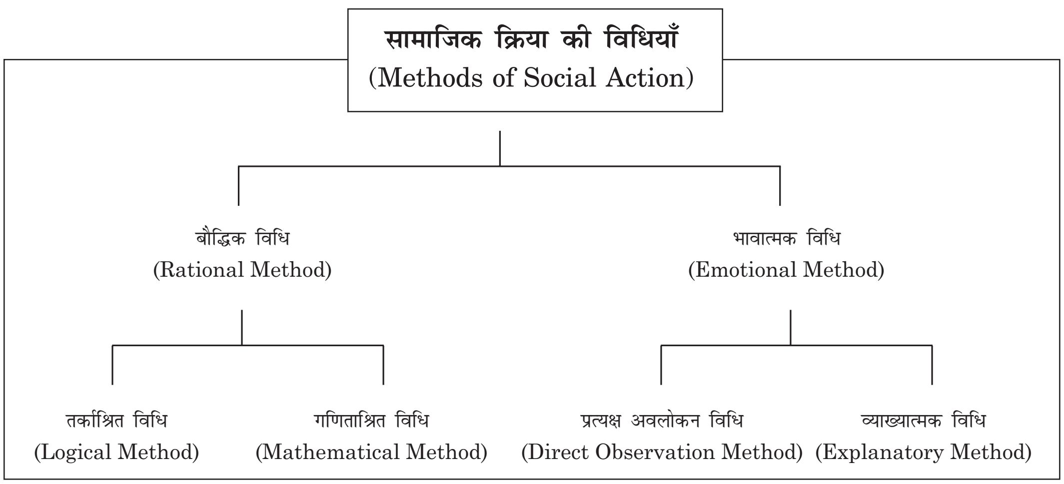

उपरोक्त तालिका में सामजिक क्रिया को समझने की जिन विधियों का उल्लेख मैक्स वेबर ने किया है उनकी संक्षिप्त विवेचना निम्नलिखित है–

(1) बौद्धिक विधि (Rational Method)–मैक्स वेबर की सामाजिक क्रिया को समझने की पहली विधि बौद्धिक है। इस विधि में बुद्धि और विवेक को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। अनेक ऐसी सामाजिक क्रियाएँ होती हैं जिन्हें बिना बुद्धि के नहीं समझा जा सकता है। बुद्धि के माध्यम से समझी जाने वाली क्रियाओं को मैक्स वेबर ने निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है जिनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है–

(अ) तर्काश्रित विधि (Logical Method)–तर्क पर आधारित क्रियाओं को तार्किक क्रियाओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वेबर ने सामाजिक क्रिया को समझने में बौद्धिक विधि के प्रथम भाग को तर्क पर आधारित

बतलाया है। उसने स्वीकार किया है कि अनेक ऐसी क्रियाएँ मानव जीवन में घटित होती हैं जिन्हें मात्र हम तर्क और विवेक के द्वारा ही समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए जीवशास्त्र का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी का चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश तर्क और बुद्धि पर आधारित है। इस कार्य को हम तर्क और विवेक के द्वारा ही समझ सकते हैं। इसके विपरीत यदि किसी विद्यार्थी को अभियांत्रिकी महाविद्यालय में प्रवेश दिया जाय तो ऐसी क्रिया तर्क द्वारा नहीं समझी जा सकती है।

(ब) गणिताश्रित विधि (Mathematical Method)—बौद्धिक विधि का दूसरा प्रकार गणित पर आधारित है। गणिताश्रित क्रियाएँ वे हैं जिन्हें गणित के माध्यम से समझा जा सकता है। जैसे $2 + 2 = 4$ होते हैं इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है। दो और दो मिलकर चार होने की जो क्रिया है इसे हम अन्य किसी माध्यम से नहीं समझ सकते हैं।

(2) भावात्मक विधि (Emotional Method)—मैक्स वेबर के अनुसार सामाजिक क्रियाओं को समझने की दूसरी विधि भावनाओं पर आधारित होती है जिसे मात्र व्यक्ति की भावनाएँ ही निर्धारित कर सकती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इसके साथ ही वह भावना प्रधान भी होता है। वह हमेशा तर्क और बुद्धि के द्वारा ही संचालित नहीं होता है। वह अनेक ऐसे कार्यों को संपादित करता है जो भावनाओं पर आश्रित होता है। अधिकांश सामाजिक क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें बौद्धिक रूप से न समझाकर भावनाओं के माध्यम से समझा जाता है। व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली क्रिया इस भावात्मक पहलू से संबंधित है, इस बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सामाजिक क्रियाओं को हम प्रयोग के माध्यम से नहीं समझ सकते हैं। इन सामाजिक क्रियाओं से अपने को अलग करके इन्हें नहीं समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में हम व्यक्ति की भावनाओं की सहायता से उसके उद्देश्य और प्रयोजन को जानने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए एक बालक डबल रोटी या बिस्कुट की चोरी करता है। बालक के द्वारा की जाने वाली यह क्रिया बुद्धि, तर्क और गणित के द्वारा नहीं समझी जा सकती है। इस क्रिया को समझने के लिए हमें बालक की भावनाओं में प्रवेश करना होगा। हमें यह जानना होगा कि बालक ने चोरी क्यों की है। और ऐसा करते समय हम तर्कों की अपेक्षा भावनाओं का सहारा लेंगे। भावनाओं द्वारा समझी जाने वाली सामाजिक क्रियाओं को समझने की विधियों को मैक्स वेबर ने निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है—

(अ) प्रत्यक्ष अवलोकन विधि (Direct Observation Method)—मैक्स वेबर ने भावनाओं के आधार पर सामाजिक क्रिया को समझने की पहली विधि को प्रत्यक्ष अवलोकन विधि के नाम से सम्बोधित किया है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि इस प्रकार की क्रियाओं को हम मात्र देखकर आसानी से समझ सकते हैं। अनेक ऐसी क्रियाएँ समाज में घटित होती हैं जिन्हें तर्क और विवेक के माध्यम से व्यक्ति नहीं समझ सकता है। बल्कि इन्हें देखकर उस क्रिया के उद्देश्य को बतलाया जा सकता है। पति-पत्नी में यदि मनमुटाव है, और आये-दिन पारस्परिक झगड़ा तथा मार-पीट होती रहती है तो इस परिस्थिति को देखकर यह निष्कर्ष या अनुमान लगाया जा सकता है कि उस परिवार में पति-पत्नी में अलगाव या तलाक की स्थिति कभी भी आ सकती है। इस क्रिया का परिणाम जो भी होगा वह पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन के लिए घातक ही होगा। इसी प्रकार की अनेक ऐसी क्रियाएँ हैं जिनके प्रयोजनों को हम मात्र अवलोकन के माध्यम से आसानी से समझ सकते हैं।

(ब) व्याख्यात्मक विधि (Explanatory Method)—समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। इन संबंधों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति क्रियाएँ तथा अन्तःक्रियाओं (Interaction) के दौर से गुजरता है। व्यक्ति की अनेक ऐसी सामाजिक क्रियाएँ हैं जिन्हें हम अवलोकन के द्वारा नहीं समझ सकते हैं या ऐसी क्रियाओं के उद्देश्य को जानने के लिए 'देखना' या मात्र अवलोकन करना ही पर्याप्त नहीं है। प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा ही इन क्रियाओं का उद्देश्य स्पष्ट हो जाय, यह विचार पर्याप्त नहीं होता है। मैक्स वेबर ने इन सामाजिक क्रियाओं को स्पष्ट रूप से समझने के लिए व्याख्यात्मक विधि को प्रतिपादित किया है। उसका विचार है कि इन क्रियाओं को हम व्याख्या के आधार पर

नोट

समझ सकते हैं। व्यक्ति क्रिया क्यों करता है, व्यक्ति के विशिष्ट व्यवहारों के पीछे कौन से उद्देश्य होते हैं, उदाहरण के लिए जब हम किसी विद्यार्थी को कठोर परिश्रम करते हुए देखते हैं तो इस प्रश्न का उत्तर अपने आप मिल जाता है। जब हम उस विद्यार्थी द्वारा किए जाने वाले कठोर परिश्रम की विवेचना करते हैं, तो पाते हैं कि विद्यार्थी की ऐसी क्रिया का उद्देश्य जीवन साथी का चुनाव (Selection of Mate) करना भी हो सकता है अथवा प्रतियोगिता की दृष्टि से वह अन्य विद्यार्थियों से अधिक सम्मान भी प्राप्त करना चाहता है। इस विधि में क्रिया की व्याख्या तथा उसके विश्लेषण पर अधिक जोर दिया जाता है।

नोट्स क्रिया के कारणों की विवेचना या विश्लेषण करके ही इसका उद्देश्य, दिशा तथा परिणामों की विवेचना की जाती है तथा सामाजिक क्रियाओं को समझने का प्रयास किया जाता है। इसी सन्दर्भ में ही मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र की परिभाषा तथा उसकी विषय-वस्तु (Subject Matter) का निर्धारण किया है।

20.6 सारांश (Summary)

- सामाजिक क्रिया दूसरे व्यक्तियों के भूतकाल, वर्तमान या भावी व्यवहार द्वारा प्रभावित हो सकती है।
- सभी प्रकार की क्रिया को सामाजिक क्रिया नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह अपनी शर्तों को पूरी न करती हो।
- सामाजिक क्रिया न तो अनेक व्यक्तियों द्वारा की जानेवाली एक सी क्रिया को कहते हैं और न ही उस क्रिया को जो दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित है।
- मैक्सवेबर ने सामाजिक क्रियाओं को चार भागों में बांटा–

  (*a*) तार्किक (*b*) मूल्यांकनात्मक

  (*c*) प्रभावात्मक (*d*) परंपरागत

20.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक क्रिया (Social Action)**–किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया तब कहा जाता है जब उस क्रिया के कर्त्ता द्वारा लगाए गए व्यक्तिपरक अर्थ के अनुसार उसकी क्रिया में दूसरे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों तथा क्रियाओं का समावेश हो और इस दौरान वह उनसे प्रभावित भी हो।

20.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वेबर के सामाजिक क्रिया सिद्धांत को स्पष्ट करें।
2. मैक्स वेबर को 'व्याख्यात्मक समाजशास्त्र का पिता' कहा जाता है। संक्षेप में लिखिए।
3. सामाजिक क्रिया का प्रतिपादन मैक्स वेबर ने अपनी कौन-सी महान् कृति में किया है?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अत्यधिक 2. प्रथाएँ एवं परम्पराएँ 3. कार्य।

20.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत–दोषी एवं त्रिवेदी।
3. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।

नोट

इकाई–21: आधुनिक पूँजीवाद का विश्लेषण, प्रोटेस्टेंट नैतिकता एवं पूँजीवाद का उद्भव (Analysis of Modern Capitalism, Protestant Ethics and Origin of Capitalism)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

21.2 प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद का विकास (Protestant Ethics and Rise of Capitalism)

21.3 सारांश (Summary)

21.4 शब्दकोश (Keywords)

21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या।
- प्रोटेस्टेंट नैतिकता एवं पूँजीवाद की प्रवृत्ति के बीच के संबंध को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

वेबर ने अपने इस अध्ययन में धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व माना है और उसका आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर जो कार्य-कारण का प्रभाव पड़ता है उसका विश्लेषण तथा निरूपण करने का प्रयत्न किया है। **वेबर** का विश्वास है कि केवल कुछ अर्थों में समान और अन्यों में भिन्न उदाहरणों का अध्ययन करके ही किसी

नोट

कारक के कार्य-कारण के प्रभाव का निर्णय सम्भव है। इसी कारण आपने किसी एक धर्म को नहीं, बल्कि कुछ अर्थों में महान विश्व-धर्मों को अपने अध्ययन में स्थान दिया। ऐसा करने का एक कारण यह भी है कि **मैक्स वेबर** ने यह अनुभव किया कि **मार्क्स** की भाँति केवल ऐतिहासिक प्रक्रिया को और अधिक स्पष्ट कर देने से ही उसकी समस्या का समाधान नहीं हो सकता; उसके लिए कोई अन्य ठोस आधार ढूँढ़ना पड़ेगा और वह आधार धार्मिक आधार है।

21.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

नि:संदेह कानूनी, आर्थिक और सामाजिक इतिहास के अध्ययन में **मैक्स वेबर** की देन महत्त्वपूर्ण है, परन्तु आपकी सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक विदित देन 'धर्म का समाजशास्त्र' है। **वेबर** ने विश्व के प्रमुख धर्मों का व्यापक अध्ययन किया और इस अध्ययन के आधार पर धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का प्रयत्न किया। उनका यह विशद् अध्ययन तीन बड़े-बड़े ग्रंथों में है, आर्थिक व सामाजिक घटनाओं में क्या सम्बन्ध है। **पारसन्स** ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "नि:संदेह वेबर समस्त सम्बन्धित क्षेत्रों में एक असाधारण रूप से योग्य सामाजिक और आर्थिक इतिहासकार थे और इस कारण आप सरलता से अपने बाकी शैक्षणिक जीवन को एक महान ऐतिहासिक अध्ययन की पूर्ति में लगा सकते थे, परन्तु ऐसा करने के बजाय आप सर्वथा भिन्न अध्ययन-क्षेत्र की ओर मुड़े और समस्त महान विश्व-धर्मों के धार्मिक आचारों तथा उनसे सम्बन्धित सामाजिक तथा आर्थिक संगठन के बीच पाए जाने वाले विद्यमान सम्बन्धों के विशुद्ध तुलनात्मक अध्ययन-कार्य में लग गए।" इस तुलनात्मक अध्ययन का सर्वप्रमुख उद्देश्य यह प्रमाणित करना था कि सामाजिक संरचना में समग्र रूप में कौन-से तत्व समाज के लिए विशेष रूप से विशिष्ट और केन्द्रीय महत्त्व के हैं।

ऐतिहासिक उद्‌गमों की समस्या को प्रस्तुत करने में **वेबर** नि:संदेह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। फिर भी आपने अनुभव किया कि इस व्याख्या की प्रणाली को विकास की प्रक्रिया पर लागू नहीं किया जा सकता है। **वेबर** का विश्वास है कि ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया केवल आर्थिक कारक या जीवित रहने के साधन पर ही निर्भर नहीं है। अधिक अच्छा यह हो कि उस आधार को आचार और धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित प्रत्यक्ष और व्यावहारिक मूल्य के आधार को आचार और धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित प्रत्यक्ष और व्यावहारिक मूल्य के अनुसार ढूँढ़ा जाए। **मार्क्स** की भाँति **वेबर** ने यह तो स्वीकार किया कि सामाजिक संरचना में आर्थिक कारक भी महत्त्वपूर्ण है, परन्तु **वेबर** ने यह मानने से इनकार किया कि आर्थिक कारक ही महत्त्वपूर्ण है।

नोट्स

वेबर ने यह मानने से इनकार किया कि आर्थिक कारक ही एकमात्र कारक हैं और कला साहित्य, सामाजिक व राजनीतिक संरचना, विज्ञान, दर्शन और धर्म सब-कुछ आर्थिक कारक के द्वारा ही निश्चित होते हैं। आपके मतानुसार धार्मिक आचार और आर्थिक व्यवस्था एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, और कभी-कभी नैतिक या आचारशास्त्रीय सिद्धांत या धारणाएँ आर्थिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार (Main Basis of Sociology of Religion)

वेबर अपने अध्ययन में एक उचित वैज्ञानिक मान बनाए रखने के सम्बन्ध में सदैव सचेत रहे, और इस कारण आपने समस्त एक कारक वाले सिद्धांतों को बड़ी सावधानी से अपने अध्ययन से दूर रखा। **वेबर** के धर्म के समाजशास्त्र के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

नोट

1. धार्मिक तथा आर्थिक घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित और एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इनमें से किसी को भी दूसरे का स्थान लेना उचित न होगा। वास्तव में, ये दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं।

2. कोई भी एकतरफा दृष्टिकोण, पद्धति या व्याख्या अवैज्ञानिक और इस कारण, गलत है। किसी भी प्रकार की एकतरफा विवेचना से हमें सदैव बचना चाहिए। न तो केवल इतिहास की आर्थिक व्याख्या और न ही समस्त सामाजिक घटनाओं की धार्मिक आधार पर की गई कोई विवेचना सत्य और यथार्थ है। ये दोनों कारक एक-दूसरे से सम्बन्धित व एक-दूसरे पर आधारित होते हैं। साथ ही, इन दो कारकों के अतिरिक्त अन्य अनेक दूसरे कारक भी हैं जो मानव-समाज के अस्तित्व तथा निरन्तरता के लिए उत्तरदायी हैं।

3. परन्तु अध्ययन-पद्धति के आधार के रूप में इनमें से किसी एक कारण को एक परिवर्तनीय तत्व माना जा सकता है। **वेबर** धार्मिक कारक को इस प्रकार का एक परिवर्तनीय तत्व मानकर उसका आर्थिक तथा अन्य सामाजिक घटनाओं पर प्रभाव मालूम करने का प्रयत्न करते हैं।

4. **वेबर** ने अपने अध्ययन में सभी धर्मों से सम्बन्धित समस्त तत्वों का स्पष्टीकरण न करके केवल 'आदर्श-प्रारूपों' को निश्चित रूप से पृथक् करते हुए उनके कार्य-कारण का प्रभाव तथा महत्त्व की व्याख्या की है। उसी प्रकार आर्थिक कारक में भी आपने 'आदर्श प्रारूपों' को तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना है।

धार्मिक कारक को एक परिवर्तनीय तत्व मानकर **वेबर** 'धर्म के आर्थिक आचारों' को अपने अध्ययन का आधार मान लेते हैं और इसी आधार पर धर्म के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। 'धर्म के आर्थिक आचारों' के अन्तर्गत **वेबर** धर्म से सम्बन्धित विभिन्न आध्यात्मिक सिद्धांतों और विचारों को नहीं, वरन् आचरण के उन समस्त व्यावहारिक तरीकों को सम्मिलित करते हैं जोकि एक धर्म अपने सदस्यों के लिए निश्चित करता है। आपके अनुसार, धार्मिक आचारों और धार्मिक विश्वासों में एक सम्बन्ध है। साथ ही, आचरण के प्रभावपूर्ण स्वरूपों के निर्माण में धार्मिक कारक के अतिरिक्त अन्य अनेक कारकों का योग होता है, फिर भी उनमें धर्म एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

21.2 प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद का विकास (Protestant Ethics and Rise of Capitalism)

उपर्युक्त बातों को प्रमाणित करने के लिए **मैक्स वेबर** ने विश्व के छह महान धर्मों को चुन लिया है। वे धर्म हैं—कन्फ्यूशियन, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम तथा यहूदी धर्म। **वेबर** ने इसमें से प्रत्येक धर्म के आर्थिक आचारों का विश्लेषण किया, और फिर उन आचारों के, उस धर्म-विशेष को मानने वाले लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक संगठन पर पड़ने वाले प्रभावों को सिद्ध किया। इस विषय में **मैक्स वेबर** का अधिक महत्त्वपूर्ण तथा परिपक्व सामान्य निष्कर्ष उनकी सर्वाधिक प्रख्यात रचना **दी प्रोटेस्टेण्ट इथिक एण्ड दी स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म** (*The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism*) में मिलता है। इसमें आपने प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद के सम्बन्ध को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। आपके मतानुसार प्रोटेस्टेण्ट धर्म में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जबकि उन आर्थिक नियमों की व्यवस्था को उत्पन्न करने में सहायक हुईं जिसे कि हम पूँजीवाद कहते हैं; और यह प्रोटेस्टेण्ट ही था जिसने एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में प्रत्यक्ष प्रेरणा प्रदान की। परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म एकमात्र कारक है। **वेबर** ने सदा एक बात का बल दिया कि आधुनिक पूँजीवाद के विकास के लिए अनेक परस्पर स्वतंत्र अवस्थाएँ आवश्यक थीं। फिर भी आपने उतनी ही निश्चितता और दृढ़ता से यह भी कहा कि प्रोटेस्टेण्ट आचार एक आवश्यक कारक था और इसके बिना पूँजीवाद का विकास सर्वथा भिन्न होता।

प्रोटेस्टेण्ट धर्म और पूँजीवाद के उक्त सम्बन्ध को प्रमाणित करने के लिए **वेबर** ने इन दोनों के 'आदर्श-प्रारूपों' को चुना है। आधुनिक पूँजीवाद के विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं—इस अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उद्योग, व्यापार और वाणिज्य बड़े पैमाने में बिल्कुल वैज्ञानिक आधारों पर विवेकपूर्ण ढंग से संगठित तथा संचालित होता है; निजी सम्पत्ति सम्पूर्ण व्यवस्था का सर्वप्रथम अंग होता है; उत्पादन का कार्य बड़ी-बड़ी मिल तथा फैक्ट्री में अधिक लोगों की सहायता से मशीनों द्वारा होता है; और इस प्रकार से उत्पादित वस्तुओं की संगठित विक्रय-व्यवस्था की जाती है; अधिकतम कार्यकुशलता के लिए श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण पर अधिक बल दिया जाता है; और सर्वप्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। पूँजीवाद व्यवस्था में कार्य ही जीवन तथा कुशलता ही धन है। प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम उत्साह तथा प्रधिकतम कुशलता के साथ कार्य करना पड़ता है। इस व्यवस्था में जोखिम अधिक होता है, इस कारण इसमें व्यक्ति में आत्मविश्वास, कर्त्तव्यपरायणता तथा अपने व्यवसाय के प्रति पूरी निष्ठा होनी चाहिए। इसे ही 'व्यावसायिक आचार' कहा जाता है। जो व्यक्ति अपने कार्य या व्यवसाय में कुशल हैं, वे धन और मान दोनों को ही पाते हैं; और जिनमें कार्यकुशलता कम होती है, वे धन और मान दोनों से ही वंचित रहते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में जो कुछ अकुशल और पुराना है, उसका पतन अनिवार्य है। संक्षेप में, यही पूँजीवाद का प्रमुख तत्व है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ········· ने सदा एक बात पर बल दिया कि आधुनिक पूँजीवाद के विकास के लिए अनेक परस्पर स्वतंत्र अवस्थाएँ आवश्यक थीं।
2. प्रोटेस्टेंट धर्म और पूँजीवाद के उक्त संबंध को ········· करने के लिए वेबर ने इन दोनों के 'आदर्श-प्रारूपों' को चुना है।
3. अधिकतम ········· के लिए श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण पर अधिक बल दिया जाता है।

परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि वह कौन-सी शक्ति है जोकि इस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था को सम्भव बनाती है तथा उसे स्थिर रखती है? यह शक्ति, **वेबर** के अनुसार, प्रोटेस्टेण्ट धर्म का आर्थिक आचार है। पूँजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए व्यक्ति के द्वारा जिन आचरणों को किया जाना आवश्यक है उनके सम्बन्ध में लोगों को अनेक उपदेश प्रोटेस्टेण्ट धर्म से प्रभावित सामाजिक नेताओं से प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, **बेंजामिन फ्रेंकलिन** ने, जोकि आधुनिक पूँजीवाद के मूल सिद्धांतों के प्रारम्भिक प्रतिपादक माने जाते हैं, अपनी आत्मकथा में आपने अनेक उपदेश उन लोगों को दिए हैं जोकि व्यवसाय में सफल होना या धनी होना चाहते हैं। ये उपदेश प्रोटेस्टेण्ट आचारों द्वारा प्रभावित और बहुत-कुछ उनके अनुरूप हैं। इन उपदेशों में कुछ उपदेश इस प्रकार हैं–'समय ही धन है', 'धन से धन कमाया जाता है', 'एक पैसा बचाना एक पैसा कमाना', 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है', 'जल्दी सोना और जल्दी उठना व्यक्ति को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनाता है।' यदि हम इन समस्त उपदेशों के पीछे छिपे मनोभावों पर ध्यान दें तो हम स्पष्टतया यह पाएँगे कि ये सभी निर्देश एक विशेष बात पर विशेष बल देते हैं और वह यह है कि 'कार्य करना ही सबसे बड़ा गुण है' और इस कारण हमें कम-से-कम इतना बुद्धिमान होना चाहिए कि हम कठोर परिश्रम करें और धन को कमाएँ और बचाएँ, ताकि हम स्वस्थ और धनी हो सकें। इस प्रकार के मूल सिद्धांतों या मनोभावों के बिना आधुनिक पूँजीवाद कदापि सम्भव न होता। यह मूल सिद्धांत, जैसाकि निम्नलिखित विवेचना से स्पष्ट होगा, प्रोटेस्टेण्ट धर्म से लोगों को प्राप्त होता है। पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आचारों का प्रभाव निम्नवत् है–

नोट

1. **पहला,** 'काम करना ही सबसे बड़ा गुण है', यह एक प्रोटेस्टेण्ट आचार है। कैथोलिक आचार में इस प्रकार का कोई विचार नहीं पाया जाता है। कैथोलिक धर्म में प्रचलित एक गाथा से यह बात स्पष्टतया प्रमाणित होती है। गाथा इस प्रकार है कि आदम तथा ईव ने स्वर्ग में अच्छे और बुरे ज्ञान के वृक्ष के फलों को खा लिया था; इस अपराध के दंडस्वरूप ईश्वर ने उन दोनों का स्वर्ग से बहिष्कार कर दिया और उन्हें यह दंड दिया कि अब से ईव और उसकी कन्याएँ कष्ट से बच्चे को जन्म देंगी और आदम और उनके पुत्रों को एड़ी-चोटी का पसीना एक करके रोटी कमानी होगी। अत: स्पष्ट है कि कैथोलिक आचार में श्रम एक गुण नहीं, बल्कि एक दंड है। इसके विपरीत प्रोटेस्टेण्ट आचार में कार्य ऐसी क्रिया या आचरण है जिसे कि करना उचित है, और स्वयं कार्य के लिए ही कार्य करना चाहिए। 'कर्म ही पूजा है' या 'परिश्रम से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है',–ये आचार प्रोटेस्टेण्ट धर्म के ही हैं, और इनकी बहुत बड़ी देन पूँजीवाद के विकास में है।

2. **प्रोटेस्टेण्ट** धर्म की **दूसरी,** देन, जोकि पूँजीवाद के विकास में सहायक सिद्ध हुई है, 'व्यावसायिक आचार' है। इसका सम्बन्ध उस विश्वास से है जिसे कैलविनवाद कहा जाता है और जिसके अनुसार प्रत्येक आत्मा व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् या तो स्वर्ग या नरक में चली जाती है, और व्यक्ति के जीवन-काल में कोई भी कार्य उसके भाग्य को बदल नहीं सकता। परन्तु उसके जीवन-काल में कुछ इस प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं जोकि उसे पहले से ही यह संकेत कर सकते हैं कि उसकी आत्मा स्वर्ग में जाएगी या नरक में? यदि एक व्यक्ति अपने कार्य या व्यवसाय में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करता है, तो वह इस बात का संकेत है कि उनकी आत्मा स्वर्ग को जाएगी। इन विश्वास के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति पर एक नैतिक दबाव इस रूप में डाला जाता है कि वह अपने पेशे व व्यवसाय में कठोर परिश्रम करे और उसके प्रति पूर्ण निष्ठा बरते ताकि उसे अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो सके। अपने कार्य को भली प्रकार तथा सफलतापूर्वक करना ईश्वरीय इच्छा का ही गुण-कीर्तन करना है। केवल गिरजाघर जाने या तीर्थ-यात्रा करने से ही मुक्ति नहीं मिलती; मुक्ति तो अपने कर्मों या व्यवसायों को उचित ढंग से करने से ही मिल सकती है। एक व्यक्ति अपने धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन केवल गिरजाघर में ही नहीं, बाजारों में भी कर सकता है। यह प्रोटेस्टेण्ट आचार पूँजीवाद के विकास में अत्यधिक सहायक अवश्य ही सिद्ध हुआ है क्योंकि पूँजीवाद की सफलता और विकास इसी बात पर निर्भर है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय के क्षेत्र में अधिकतम उत्साह और निष्ठा के साथ काम करे।

3. पूँजीवाद को प्रोटेस्टेण्ट धर्म की **तीसरी** देन यह है कि इस धर्म के अन्तर्गत ऋण पर सूद वसूल करने की मान्यता या स्वीकृति है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, **बेंजामिन फ्रेंकलिन** के अनुसार, 'धन से धन कमाया जाता है।' इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि अपने धन का विनियोग धन, जिसमें कि सूद के रूप में प्राप्त धन भी सम्मिलित है, कमाने के लिए किया जा सकता है। कैथोलिक धर्म में सूद लेना बुरा समझा जाता है; इसके विपरीत, प्रोटेस्टेण्ट धर्म में इस प्रकार सूद लेने की स्वीकृति है। अत: धन को खुलेआम बिना किसी ईश्वरीय दंड या कोप के भय से धन कमाने या सूद एकत्रित करने के लिए लगाया जा सकता है। ये सभी बातें पूँजीवाद के विकास में सहायक सिद्ध हुई हैं।

4. प्रोटेस्टेण्ट धर्म की पूँजीवाद के विकास में **चौथी** देन यह है कि इस धर्म ने शराबखोरी को बुरा बताया और ईमानदारी को ऊँचा पद प्रदान किया। इस धार्मिक आचार के परिणामस्वरूप लोगों में शराब पीकर आलसीपन करने की प्रवृत्ति घटती गई और उनकी कुशलता बढ़ी। शराबखोरी पर प्रतिबंध पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्व इस कारण है कि इसके अन्तर्गत लोगों को मशीन पर काम करना पड़ता है। शराब पीकर हल चलाया जा सकता है, पशुओं को चराया जा सकता है, पर मशीन चलाना कठिन होता, और ऐसा करना सम्भव होने पर भी जान-माल का खतरा होगा।

5. प्रोटेस्टेण्ट आचार का पूँजीवाद के विकास में अन्तिम प्रभाव इस रूप में है कि वह कैथोलिक आचार की भाँति अधिक छुट्टी के पक्ष में नहीं है।

नोट

> *क्या आप जानते हैं* प्रोटेस्टेण्टवादियों के लिए कर्म ही आराधना है। पूँजीवाद व्यवस्था की सफलता के लिए भी अधिक कार्य और कम छुट्टियाँ आवश्यक हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म और उसका आर्थिक आचार वह प्रभावशाली शक्ति है जोकि पूँजीवाद के विकास में प्रमुख कारक रही है, परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्रोटेस्टेण्ट आचार पूँजीवाद के विकास में एकमात्र कारक है। अन्य अनेक कारकों का भी योग इस दिशा में अवश्य रहा होगा। इस अर्थ में **मैक्स वेबर** को एक-कारकवादी नहीं, बल्कि बहु-कारकवादी माना जा सकता है।

वेबर ने पूँजीवाद तथा प्रोटेस्टेण्ट आचारों के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों को प्रस्तुत किया है। आपने यह दर्शाया है कि पूँजीवाद का सर्वोत्तम विकास, इंग्लैण्ड, अमेरिका, हालैंड आदि उन देशों में हुआ है जहाँ कि लोग प्रोटेस्टेण्ट धर्म के अनुयायी हैं। इसके विपरीत, इटली, स्पेन आदि देशों के लोग कैथालिक धर्म के अनुयायी होने के कारण पूँजीवाद को अधिक विकसित नहीं कर पाए हैं। इसी प्रकार **मैक्स वेबर** ने और भी अनेक प्रमाण ऐसे दिए हैं जिनसे इस सिद्धांत की पुष्टि हो सके कि आधुनिक पूँजीवाद प्रोटेस्टेण्ट धर्म से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। यद्यपि यह धर्म पूँजीवाद की उत्पत्ति और विकास में एकमात्र कारक नहीं है, फिर भी सबसे अधिक प्रभावशाली कारक या शक्ति अवश्य ही रहा है।

इसी तरह **मैक्स वेबर** ने कन्फ्यूशियन-धर्म, बौद्ध-धर्म, हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म और यहूदी धर्म का विश्लेषण किया और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इन सभी धर्मों के आर्थिक आचारों के अनुरूप ही समाज का आर्थिक तथा सामाजिक संगठन निश्चित हुआ है। उदाहरणार्थ, हिन्दू धर्म को ही लीजिए। **मैक्स वेबर** ने हिन्दू धर्म को जिस रूप में देखा और प्रस्तुत किया है उसके अनुसार मूल अर्थों में हिन्दू धर्म में मुक्ति का अर्थ केवल 'कर्म के चक्र से मुक्ति' है; किन्तु इस लक्ष्य को दूसरे लोगों से अधिक सांसारिक सफलता पाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दूसरों शब्दों में, यदि आप दूसरे व्यक्तियों से कहीं अधिक सांसारिक सफलताएँ प्राप्त करते हैं, तो वे सफलताएँ आपके मुक्ति-प्राप्ति में सहायक कदापि सिद्ध न होंगी। मुक्ति तो समस्त सांसारिक 'मायाओं', इच्छाओं और अभिरुचियों से अपने को पूर्णतया अलग या दूर रखकर और ब्रह्मा से साक्षात्कार करके उसमें अपने को विलीन कर देने पर ही प्राप्त की जा सकती है। संक्षेप में, हिन्दू धर्म ने इसके मानने वालों को भौतिक उन्नति करने में, या सांसारिक सफलताएँ, अथवा लौकिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में किसी प्रत्यक्ष अभिरुचि की प्रेरणा नहीं दी। इसी कारण हिन्दू धर्म को मानने वाले भौतिक उन्नति में नहीं, आध्यात्मिक उन्नति में संसार में सबसे आगे रहे। साथ ही इस धर्म का हिन्दू सामाजिक संगठन के स्वरूप को निश्चित करने में भी पर्याप्त योग रहा। आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि धार्मिक नियमों को कठोरता से लागू किया जाए। इसी कारण सामाजिक व्यवस्था और कार्य करने की रीति में हमें इतनी कट्टरता दिखाई पड़ती है। धर्म के इस कट्टरपन की एक सामाजिक अभिव्यक्ति हिन्दू जाति-प्रथा है। जाति-प्रथा को स्थिर रखने में 'कर्म के सिद्धांत' का अत्यधिक योग रहा है। जाति-प्रथा में परम्परागत कर्त्तव्यों, विशेषकर धार्मिक संस्कारों या कर्त्तव्यों को सच्चाई से पूरा करना ही अच्छे व्यवहार का एकमात्र मापदण्ड है। सबको यह विश्वास दिलाया जाता है कि जाति-प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक जाति को जो कर्म या कार्य सौंपा गया है, उसके प्रति निष्ठा रखते हुए अपने कर्मों अथवा कर्तव्यों को करते रहने से ही व्यक्ति एक उच्चतर जाति में पुनर्जन्म लेकर अपनी आधारभूत धार्मिक स्थिति में सुधार की कोई आशा कर सकता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म में इस समाज के आर्थिक तथा सामाजिक संगठन को निश्चित करने में पर्याप्त योगदान दिया है।

नोट

नोट्स **मैक्स वेबर** के धर्म के समाजशास्त्र की मूल विशेषता धर्म तथा आर्थिक व सामाजिक संगठन के बीच सम्बन्ध का सिद्धांत है। जैसाकि **वेबर** ने बार-बार कहा है कि विचार नहीं, बल्कि धार्मिक स्वार्थ कर्म को प्रेरित करते हैं और ये कर्म आर्थिक व सामाजिक संगठन को निश्चित करते हैं। धर्म के समाजशास्त्र का यही मूल तत्व है।

टास्क प्रोटेस्टेंट आचार और पूँजीवाद के विकास के बारे में क्या जानते हो? संक्षिप्त वर्णन करें।

21.3 सारांश (Summary)

- **वेबर** का निष्कर्ष यह है कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म में ऐसे अनेक आर्थिक आचारों का समावेश है जिनका कि पर्याप्त प्रभाव पूँजीवाद के विकास पर पड़ा है। इनमें से पाँच प्रमुख प्रभावों की विवेचना हम ऊपर कर चुके हैं। **वेबर** का कथन है कि यद्यपि पूँजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेण्ट धर्म के आधार ही एकमात्र कारण नहीं हैं, फिर भी इनके बिना आधुनिक पूँजीवाद का विकास उस सीमा तक सम्भव न था जैसाकि आज हम देख रहे हैं। पूँजीवाद का सर्वोत्तम विकास प्रोटेस्टेण्ट देशों में ही हुआ है।
- इस रूप में, **वेबर** के अनुसार सामाजिक जीवन तथा आर्थिक, संगठन में धर्म का अपना महत्त्व है जिसे कि अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके विपरीत **मार्क्स** का विश्वास है कि धर्म 'जनता के लिए अफीम' के समान है। धर्म केवल निरर्थक ही नहीं, अपितु प्रगति के पथ पर रोड़ा भी है। धर्म गरीबों को ईश्वर, कर्म-फल, स्वर्ग-नरक, भाग्य आदि में विश्वास करने की प्रेरणा देकर उन्हें अपने सांसारिक कष्टों के प्रति उदासीन बना देता है और इस प्रकार उसकी प्रगति में बाधक सिद्ध होता है।

21.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **धर्म का समाजशास्त्र (Sociology of Religion):** धर्म का समाजशास्त्र उन तरीकों का वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें समाज, संस्कृति, व्यक्तित्व द्वारा धर्म को प्रमाणित किया जाता है साथ ही इसमें उन विधियों का भी अध्ययन किया जाता है जिसमें धर्म के द्वारा समाज, संस्कृति और व्यक्तित्व प्रभावित होते हैं।

21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वेबर के प्रोटेस्टेण्ट नैतिकता और पूँजीवाद की प्रवृत्ति संबंधी सिद्धांत की विवेचना करें।
2. पूँजीवाद का प्रमुख तत्व क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।
3. मैक्स वेबर के अनुसार, हिन्दू धर्म में मुक्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment) **नोट**

1. वेबर 2. प्रमाणित 3. कार्यकुशलता।

21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।
2. सोशियोलॉजी–टी.वी. बोटोमोर।

नोट

इकाई–22 : प्रस्थिति, वर्ग एवं शक्ति की अवधारणाएँ (Concept of Status, Class and Power)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

22.2 जीवन के अवसर और वर्ग परिस्थिति (Life Chances and Class Situation)

22.3 सारांश (Summary)

22.4 शब्दकोश (Keywords)

22.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक वर्ग की अवधारणा को समझना।
- सामाजिक वर्ग के निर्माण में वेबर का त्रिस्तरीय संपत्ति, सत्ता एवं प्रस्थिति की भूमिका पर जोर।

प्रस्तावना (Introduction)

कार्ल मार्क्स ने वर्ग के निर्धारण में केवल आर्थिक कारक पर जोर दिया था। मार्क्स के एकपक्षीय विचार की अपेक्षा वेबर ने वर्ग के निर्धारण में अनेक आधारों को महत्त्वपूर्ण माना जिसमें मुख्यत: आर्थिक के अतिरिक्त सामाजिक एवं राजनीतिक हैं।

22.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

यद्यपि **मैक्स वेबर** की सामाजिक वर्ग की अवधारणा मुख्यत: आर्थिक आधारों पर आधारित है। फिर भी आप आर्थिक तथा सामाजिक कारकों में अधिकाधिक अन्त:क्रिया को स्वीकार करते हैं और इसी कारण अपने सामाजिक वर्ग के अध्ययन में इन दोनों कारकों को उचित स्थान या महत्त्व प्रदान करते हैं। **मैक्स वेबर** के अनुसार सामाजिक

नोट

वर्ग सामाजिक व्यवस्था का एक अंग है। आपकी इस विचारधारा को समझने के लिए हमें उनके द्वारा प्रस्तुत 'सामाजिक व्यवस्था' की व्याख्या को कुछ विस्तारपूर्वक समझना होगा।

सामाजिक व्यवस्था क्या है? (What is Social Order?)

मैक्स वेबर की-सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या 'शक्ति' की अवधारणा से प्रारम्भ होती है। सामाजिक व्यवस्था शक्ति पर आधारित होती है। 'शक्ति' से **मैक्स वेबर** का तात्पर्य "उस अवसर से है, जिसको कि एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति किसी सामूहिक क्रिया में अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए, उस क्रिया में भाग लेने वाले दूसरे व्यक्तियों द्वारा विरोध करने पर भी प्राप्त कर लेते हैं।" दूसरे शब्दों में, जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के पास शक्ति है, वे अपने उद्देश्य की पूर्ति या लक्ष्यों की प्राप्ति उस व्यक्ति या व्यक्तियों की तुलना में, जिनके पास शक्ति नहीं है, अधिक सरलता से कर लेते हैं। परन्तु **मैक्स वेबर** के अनुसार, आर्थिक आधारों पर प्राप्त शक्ति और साधारण शक्ति में अन्तर है। आर्थिक शक्ति न केवल आर्थिक क्षेत्र में ही इसे प्रतिष्ठित करती है, वरन् सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्रदान करती है। मनुष्य केवल इसलिए ही शक्ति प्राप्त करना नही चाहता है कि वह धनी बन जाए; वह शक्ति प्राप्त करना इसलिए भी चाहता है कि उससे उसका समाज में सम्मान होगा।

नोट्स यह भी सच है कि केवल धन या शक्ति ही सदैव सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं प्रदान कर पाती केवल धन के बल पर या शक्ति के आधार पर ही कोई व्यक्ति समाज में सम्मान नहीं पा सकता उसके लिए अन्य अनेक गुणों की आवश्यकता होती है। किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा राजनीतिक या आर्थिक शक्ति का आधार हो सकती है।

यह सामाजिक प्रतिष्ठा, चाहे वह किसी कारण से क्यों न हो, सामाजिक व्यवस्था को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण है। **मैक्स वेबर** के शब्दों में, "जिस ढंग से सामाजिक प्रतिष्ठा किसी समुदाय के विशिष्ट समूहों में बँटी होती है, उसी को हम सामाजिक व्यवस्था कह सकते हैं।"

टास्क सामाजिक व्यवस्था क्या है? संक्षेप में वर्णन करें।

लेकिन **मैक्स वेबर** सामाजिक, आर्थिक तथा वैधानिक व्यवस्थाओं में अन्तर मानते हैं। सामाजिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था दोनों ही प्राय: समान रूप से वैधानिक व्यवस्था से सम्बन्धित होती हैं। परन्तु सामाजिक व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था एक नहीं है। आर्थिक व्यवस्था केवल मात्र वह तरीका है जिसके द्वारा आर्थिक वस्तुओं और सेवाओं का वितरण एवं उपभोग किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि सामाजिक व्यवस्था बहुत हद तक आर्थिक व्यवस्था द्वारा प्रभावित होती है और स्वयं भी आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती है, लेकिन ये दोनों ही एक हैं, यह सोचना गलत होगा। सामाजिक वर्ग इसी व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करता है।

सामाजिक वर्ग की अवधारणा व विशेषताएँ (Concept of Social Class and its Characteristics)

जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि **वेबर** की सामाजिक वर्ग की अवधारणा मुख्यत: आर्थिक आधारों पर आधारित है, क्योंकि सामाजिक वर्ग से **मैक्स वेबर** का अभिप्राय उस समूह से है जिसे कि आर्थिक कारणों से निर्धारित समान सामाजिक अवसर या जीवन सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त हैं। **मैक्स वेबर** के अनुसार, "हम एक समूह को तब वर्ग कह सकते हैं जबकि उस समूह के लोगों को जीवन के कुछ विशिष्ट अवसर समान रूप से प्राप्त हो;

नोट

यहाँ तक कि यह समूह वस्तुओं पर अधिकार या आमदनी की सुविधाओं से सम्बन्धित आर्थिक हितों द्वारा पूर्णतया निर्धारित तथा वस्तुओं या श्रमिक-बजारों की अवस्थाओं के अनुरूप हो।" दूसरे शब्दों में, **मैक्स वेबर** के अनुसार वर्ग की तीन विशेषताएँ है–(1) एक वर्ग के प्रायः सभी सदस्यों को बहुत-कुछ एक-सी आर्थिक सुविधाएँ या अवसर प्राप्त होते है; (2) वर्ग पूर्णतया आर्थिक हितों पर आधारित होता है और उसके सदस्यों को वस्तुओं पर अधिकार तथा आमदनी के सम्बन्ध में कुछ निश्चित अवसर प्राप्त होते है; (3) ये अवसर या सुविधाएँ वस्तुओं तथा श्रमिकों के बाजार भाव के अनुसार बदलती रहती हैं।

22.2 जीवन के अवसर और वर्ग परिस्थिति (Life Chances and Class Situation)

वस्तुओं पर अधिकार और आमदनी की सुविधाएँ (या संक्षेप में वह तरीका जिसके अनुसार भौतिक सम्पत्ति का वितरण विभिन्न समूहों में हुआ है) विभिन्न वर्गों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसी के अनुसार उस समूह के सदस्यों को जीवन के कुछ विशिष्ट अवसर प्राप्त हो पाते हैं। जिसके पास अधिक धन है, वह अधिक वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त कर सकता है; साथ ही, वह उत्पादन के साधनों को भी नियन्त्रित कर सकता है। इसके विपरीत, जिनके पास सम्पत्ति या धन नहीं है, वे केवल अपनी सेवाओं या श्रम को बेच सकते हैं; यही उनके जीवित रहने का एकमात्र साधन है। इस प्रकार 'सम्पत्ति का होना' और 'सम्पत्ति का ना होना' समस्त प्रकार के वर्गो का आधार है। इस दृष्टि से प्रत्येक समाज को मोटे तौर पर दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-**प्रथम,** सम्पत्ति पर अधिकार रखने वाला वर्ग, और **द्वितीय,** सम्पत्ति पर अधिकार न रखने वाला वर्ग।

एक वर्ग के अधिकार में सम्पत्ति का होना या न होना एक विशिष्ट परिस्थिति को उत्पन्न करता है। जिसमें कि वह वर्ग निवास करता है। इसे **मैक्स वेबर** ने 'वर्ग परिस्थिति' कहा है। उदाहरणार्थ, वह वर्ग जिसके सदस्यों के पास सम्पत्ति है उसे अधिक धन कमाने, अधिक वस्तुओं को खरीदने, एक उच्च जीवन-स्तर को बनाए रखने आदि के अवसर प्राप्त होगें, ये अवसर सम्मिलित रूप से एक विशिष्ट परिस्थिति को उत्पन्न करेंगे, जिसमें कि उस वर्ग को निवास करना होगा। यही वर्ग-परिस्थिति है। एक वर्ग बहुत-कुछ या प्रायः एक-सी वर्ग-परिस्थिति में निवास करता है।

वर्गो का वर्गीकरण (Classification of Classes)

मैक्स वेबर के अनुसार, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, प्रत्येक समाज को मोटे तौर पर दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-एक तो वह वर्ग जो सम्पत्ति का अधिकारी है, और दूसरा सम्पत्तिविहीन वर्गो। इन मुख्य वर्गो का आगे और विभाजन (1) सम्पत्ति के प्रकार और (2) सेवाओं के प्रकार के आधार पर किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, एक समूह का किस प्रकार कि सम्पत्ति पर अधिकार है या वह श्रम-बाजार में किस प्रकार की सेवाओं को बेचता है, इन आधारों पर भी वर्गों का विभाजन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक वर्ग का मिलों पर अधिकार है; सम्पत्ति के इस प्रकार के आधार पर इस वर्ग को हम मिल-मालिक वर्ग कहते हैं। इसी प्रकार एक वर्ग, जोकि दफ्तर में लिखने-पढ़ने से सम्बन्धित सेवाओं को करता है, क्लर्क-वर्ग कहा जाता है। इसी प्रकार अनेक उपवर्गों का उल्लेख सम्पत्ति के प्रकार तथा सेवाओं के प्रकार के आधार पर किया जा सकता है। इसी कारण **मैक्स वेबर** के मतानुसार, जिनके पास सम्पत्ति नहीं है, लेकिन जो अपनी सेवाएँ देते हैं, वे आपस में ही अनेक उपवर्गो में न केवल उनके द्वारा की जाने वाली ओं के अनुसार बँटे रहते हैं, बल्कि उन सेवाओं को जिस ढंग से उपभोग में लाया जाता है उसके अनुसार भी उनमें अनेक प्रकार के भेद होते हैं। उदाहरण के लिए, क्लर्कों को ही ले लीजिए। ये लोग एक विशेष प्रकार की सेवा करते हैं, इस कारण उन्हें एक वर्ग, जिसे कि क्लर्क-वर्ग कहते हैं, के अन्तर्गत माना जाता है; परन्तु इन्हीं क्लर्कों की सेवाओं को विभिन्न प्रकार से उपभोग में लाया जाता है, और उसी के अनुसार यह वर्ग अनेक उपवर्गों में बँटा हुआ है, जैसे एकाउंट्स क्लर्क, कॉमर्शियल क्लर्क, लेजर क्लर्क, चुंगी क्लर्क आदि।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. श्रम-बाजार में किस प्रकार की .... को बेचता है, इन आधारों पर भी वर्गों का विभाजन किया जा सकता है।
2. इसी प्रकार एक वर्ग दफ्तर में लिखने-पढ़ने से संबंधित सेवाओं को करता है, ... कहा जाता है।
3. मोटे तौर पर समाज को दो वर्गों में बाँटा गया है, एक वर्ग वह जो सम्पत्ति का अधिकारी है, और दूसरा .... वर्गों।

इस सम्बन्ध में **मैक्स वेबर** का कथन है कि वर्ग की अवधारणा को यथार्थ रूप से समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि हम बाजार की अवस्था का उचित ज्ञान कर लें, क्योंकि यह बाजार ही है जोकि व्यक्तियों के लिए सामान्य अवस्था को उत्पन्न करता है। इस प्रकार पशुपालन युग के बाजार में सबके लिए सामान्य अवस्था इस कारण थी क्योंकि उस समय सबके लिए पशु ही आर्थिक जीवन के केन्द्र थे, कृषि युग के बाजार में यह महत्त्व पशु से हटकर भूमि पर चला गया और आज हमारे युग में यह महत्त्व निजी सम्पत्ति पर आ गया है। बाजार में ही प्रत्येक व्यक्ति या वर्ग की सेवा में यह महत्त्व निजी सम्पत्ति पर आ गया है।

क्या आप जानते हैं बाजार में ही प्रत्येक व्यक्ति या वर्ग की सेवा या सम्पत्ति का मूल्यांकन होता है, और उसी के अनुसार वर्ग का निर्धारण। परन्तु जिनके पास न कोई अपनी सम्पत्ति है और न ही जिन्हें अपने लिए किसी प्रकार की वस्तु या सेवाओं का उपभोग करने का अवसर प्राप्त है, जैसे गुलाम लोग, उन्हें एक वर्ग नहीं मानना चाहिए। **मैक्स वेबर** उन्हें 'स्थिति समूह' कहते हैं।

वर्ग हित (Class Interest)

यद्यपि किसी विशेष वर्ग के सदस्य एक-सी प्रक्रिया प्रदर्शित कर सकते हैं, तथापि यह कहना गलत होगा कि वे किसी वर्ग-हित के द्वारा निर्देशित होते हैं। **वेबर** का कथन है कि वर्ग-हित की अवधारणा अत्यधिक अस्पष्ट है। 'वर्ग-हित' का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि एक वर्ग-परिस्थिति में उस वर्ग के औसत सदस्यों द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों की एक निश्चित दिशा होती है। 'वर्ग-हित' का और कोई अर्थ लगाना इसे एक प्रयोगसिद्ध अवधारणा के रूप में और भी अधिक अस्पष्ट बना देना है। वर्ग-हित की अवधारणा दो कारणों से अस्पष्ट है-**प्रथम** तो इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने हितों की पूर्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार एक विशेष प्रकार से करने की प्रवृत्ति रखता है। **दूसरे** इसलिए कि हितों की दिशा उस व्यक्ति द्वारा उसके उस समूह या समिति से की जाने वाली आशाओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती है जिस वर्ग, समूह या समिति का वह सदस्य है। यह हो सकता है कि एक औद्योगिक श्रमिक अपने श्रमिक-संघ से अधिक आशा न करे और इस कारण वह अपने हितों की पूर्ति स्वयं अपने तरीके से करने का प्रयत्न करे। ऐसी दशा में वर्ग-हित का प्रश्न शायद ही उठता हो। अत: स्पष्ट है कि वर्ग-हित अपने शुद्ध रूप में शायद ही मिल सके और यदि मिलेगा भी तो केवल अस्पष्ट रूप में।

22.3 सारांश (Summary)

- सामाजिक वर्ग के निर्माण में आर्थिक आधार के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक आधार भी महत्त्वपूर्ण हैं।

नोट

- आर्थिक आधार के अन्तर्गत जीवन अवसर की धारणा महत्त्वपूर्ण है।
- वेबर ने वर्ग की त्रिस्तरीय व्याख्या प्रस्तुत की
  1. सम्पत्ति आधारित
  2. सम्मान आधारित, एवं
  3. सत्ता आधारित।

22.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक वर्ग (Social Class)**—वेबर के अनुसार एक वर्ग व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिनकी वर्ग प्रस्थिति समान होती है। ऐसे समूह को जीवन के समान अवसर प्राप्त होते हैं अर्थात् बाजार में उनकी कुछ क्षमता समान होती है।

22.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वेबर की वर्ग संबंधी त्रिस्तरीय व्याख्या प्रस्तुत करें।
2. मैक्स वेबर ने 'स्थिति समूह' किसे कहा है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सेवाओं 2. क्लर्क-वर्ग 3. सम्पत्तिविहीन।

22.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक विचारधारा-रबिन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश-हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–23 : सत्ता एवं सत्ता के प्रकार (Authority and Types of Authority)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

23.2 सारांश (Summary)

23.3 शब्दकोश (Keywords)

23.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सत्ता की समझ विकसित करना।
- सत्ता के तीन रूपों-पारंपरिक, तार्किक-कानूनी एवं करिश्माई की चर्चा करना।

प्रस्तावना (Introduction)

मैक्स वेबर ने प्रभुत्व और शक्ति दोनों को पृथक अवधारणा के रूप में देखा। उन्होंने प्रभुत्व के लिए डोमिनेशन (Domination) शब्द का प्रयोग किया जबकि शक्ति शब्द के लिए मेच्ट (Macht) शब्द का प्रयोग किया। वेबर ने विस्तार के साथ शक्ति के स्रोतों का उल्लेख करते हुए कहा कि सामाजिक संबंधों में जब कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में हो कि दूसरों के प्रतिरोध करने पर भी अपनी इच्छा को पूरी कर पाए तो यह शक्ति है।

23.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

मैक्स वेबर के अनुसार समाज में सत्ता विशेष रूप से आर्थिक आधारों पर आधारित होती, यद्यपि आर्थिक कारक सत्ता के निर्धारण में एकमात्र कारक नहीं कहा जा सकता। आर्थिक जीवन में यह सहज ही स्पष्ट है कि एक ओर मालिक वर्ग उत्पादन के साधनों तथा मजदूरों की सेवाओं पर अपने अधिकार को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं और दूसरी ओर मजदूर अपनी सेवाओं के बदले में प्राप्त मजूदरी पर अधिकाधिक अधिकार पाने की चेष्टा करते रहते हैं।

नोट

सत्ता उन्हीं के हाथों में रहती है जिनके पास सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन केंद्रित हों। इसी सत्ता के आधार पर मजदूर की स्वाधीनता खरीदी जाती है और मालिक को मजदूर के ऊपर एक विशेष प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। यद्यपि इस प्रकार की सत्ता अब दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है और बहुत-कुछ घट भी गई है, फिर भी आर्थिक क्षेत्र में निजी सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधन किसी वर्ग के लिए सत्ता के निर्धारण में एक महत्त्वपूर्ण कारक आज भी हैं।

क्या आप जानते हैं आर्थिक जीवन में एक स्थिर या संस्थागत अर्थव्यवस्था समाज के कुछ विशिष्ट वर्ग को अधिकार या सत्ता प्रदान करती है। यह वर्ग अपनी सत्ता के बल पर दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व रखता है या उनसे ऊँची स्थिति पर विराजमान होता है।

सत्ता के स्वरूप या प्रकार (Types of Authority)

सत्ता के संस्थागत होने के क्षेत्र में **वेबर** का विश्लेषण बहुत-कुछ इसी दिशा में है। फिर भी **मैक्स वेबर** ने सत्ता के तीन बुनियादी प्रारूपों में भेद किया। ये **तीन** प्रकार की सत्ताएँ निम्न हैं–

1. वैधानिक सत्ता (Legal Authority)–राज्य द्वारा प्रतिपादित कुछ सामान्य नियमों के अनुसार उत्पन्न अनेक पद ऐसे होते हैं जिनके साथ एक विशिष्ट प्रकार की सत्ता जुड़ी रहती है। इस कारण जो भी व्यक्ति उन पदों पर आसीन होते हैं, उनके हाथों में उन पदों से सम्बन्धित सत्ता भी चली जाती है। उदाहरणार्थ, मिस्टर तिवारी जज के पद पर आसीन होने के नाते उस पद से सम्बन्धित सत्ता (जोकि उन्हें वैधानिक रूप में प्राप्त हुई है) को प्रयोग में लाने के अधिकारी हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार की सत्ता का स्त्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में निहित नहीं होता, बल्कि जिन नियमों के अन्तर्गत वह एक विशिष्ट पद पर आसीन है, उन नियमों की सत्ता में निहित है। इसलिए इसका क्षेत्र वहीं तक सीमित है जहाँ तक कि वैधानिक नियम एक व्यक्ति को विशिष्ट अधिकार प्रदान करते हैं। एक व्यक्ति को वैधानिक नियम के अन्तर्गत जितना अधिकार प्राप्त हुआ है, उसके बाहर या उससे अधिक सत्ता का प्रयोग वह व्यक्ति नहीं कर सकता। इस प्रकार व्यक्ति की वैधानिक सत्ता के क्षेत्र और उसके बाहर के क्षेत्र में (अर्थात् उस क्षेत्र में जिसमें कि वह एक व्यक्तिगत या निजी हैसियत से रहता है) बुनियादी भेद है। उदाहरणार्थ, मिस्टर तिवारी एक जज की हैसियत से जिन अधिकारों के अधिकारी हैं वे अधिकार एक व्यक्ति के रूप में (जैसे, अपने परिवार के एक सदस्य के रूप में) मिस्टर तिवारी के अधिकारों या सत्ता से बिल्कुल भिन्न हैं। घर पर मिस्टर तिवारी जज नहीं, बल्कि पुत्र, पिता या पति हैं। पिता या पति की सत्ता जज की सत्ता से बिल्कुल भिन्न है।

नोट्स एक जटिल समाज में वैधानिक सत्ता प्रत्येक व्यक्ति के हाथों में समान नहीं होती है, बल्कि इसमें भी एक ऊँच-नीच का संस्तरण होता है; अर्थात् वैधानिक आधार पर समाज में उच्च और निम्न सत्ताएँ होती हैं।

2. परम्परात्मक सत्ता (Traditional Authority)–वह सत्ता एक व्यक्ति को वैज्ञानिक नियमों के अन्तर्गत एक पद पर आसीन होने के कारण नहीं बल्कि परम्परा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण प्राप्त होती है। चूँकि इस पद को परम्परागत व्यवस्था के अनुसार परिभाषित किया जाता है, इस कारण ऐसे पद पर आसीन होने के नाते व्यक्ति को कुछ विशिष्ट सत्ता मिल जाती है। इस प्रकार की सत्ता परम्परात्मक विश्वासों पर टिकी होने के कारण परम्परात्मक सत्ता कहलाती है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में भारतीय गाँवों में पाई जाने वाली पंचायत में 'पंचों' की सत्ता को ही लीजिए-इन पंचों की सत्ता वैधानिक नियमों के अन्तर्गत नहीं आती थी; बल्कि परम्परागत रूप में उन्हें सत्ता प्राप्त हो जाती थी। यहाँ तक कि पंच की सत्ता की तुलना ईश्वरीय सत्ता से की जाती थी, जैसाकि

नोट

'पंच-परमेश्वर' की धारणा में व्यक्त होता है। उसी प्रकार पितृसत्तात्मक परिवार में पिता को परिवार से सम्बन्धित समस्त विषयों में जो अधिकार या सत्ता प्राप्त होती है, उसका भी आधार वैधानिक नियम नहीं, परम्परा होता है पिता की आज्ञा का पालन हम इसलिए नहीं करते कि उनको कोई वैधानिक सत्ता प्राप्त है, बल्कि इसलिए करते हैं कि परम्परागत रूप में ऐसा ही होता आ रहा है। वैधानिक सत्ता वैधानिक नियमों के अनुसार निश्चित तथा सीमित होती है क्योंकि वैधानिक नियम निश्चित और स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं। परन्तु परंपरा या सामाजिक नियमों में इतनी और निश्चितता नहीं होती है। जज की हैसियत में मिस्टर तिवारी की सत्ता की भाँति कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। जज की हैसियत में मिस्टर तिवारी की सत्ता कहाँ पर आरम्भ और कहाँ पर समाप्त होती है, यह बहुत-कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है; परन्तु पिता की हैसियत में मिस्टर तिवारी की सत्ता की कोई निश्चित सीमा निर्धारित करना कठिन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. राज्य द्वारा ········ कुछ सामान्य नियमों के अनुसार उत्पन्न अनेक पद ऐसे होते हैं जिनके साथ एक विशिष्ट प्रकार की सत्ता जुड़ी रहती है।
2. इस कारण जो भी व्यक्ति उन पदों पर ········ होते हैं, उनके हाथों में उन पदों से संबंधित सत्ता भी चली जाती है।
3. स्पष्ट है कि इस प्रकार के सत्ता का ········ व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में निहित नहीं होता।

3. करिश्माई सत्ता (Charismatic Authority)-यह सत्ता न तो वैधानिक नियमों पर और न ही परम्परा पर, बल्कि कुछ करिश्मा या चमत्कार पर आधारित होती है। जिन व्यक्तियों में कोई विलक्षणता, करामात या चमत्कार दिखाने की वास्तविक या अनुमानित शक्ति होती है, वे इस प्रकार की सत्ता के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार की सत्ता को प्राप्त करने में एक व्यक्ति को काफी समय लग जाता है और पर्याप्त साधन, प्रयत्न और कभी-कभी प्रचार के पश्चात् ही उसकी वह सत्ता लोगों द्वारा स्वीकृत होती है। दूसरे शब्दों में, एक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार विकसित करता है (या लोग यह समझने या विश्वास करने लगते हैं कि उसने अपने व्यक्तित्व को इतना विकसित कर लिया है) कि उसमें कुछ विलक्षण शक्ति अथवा चमत्कार दिखाने वाली शक्ति या गुण (चाहे वह वास्तविक हो या अनुमानित)पनप जाता है, जिसके बल पर वह दूसरों को अपने आगे झुका देता है और लोग उसकी व्यक्तिगत सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार करिश्माई नेता अपने प्रति या अपने लक्ष्य या आदर्श के प्रति निष्ठा के नाम पर दूसरों से आज्ञापालन करने की माँग करता है। जादूगर, पीर, पैगम्बर, अवतार, धार्मिक नेता, सैनिक, योद्धा, किसी दल के नेता आदि इसी प्रकार के सत्ताधारी व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों की सत्ता को लोग इस कारण स्वीकार कर लेते हैं कि इनमें कुछ ऐसे अद्वितीय या विलक्षण गुण पाए जाते हैं जो साधारण लोगों में नहीं मिलते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में इस प्रकर के विशेष गुणों के लिए श्रद्धा स्वभावत: ही होती है। इन गुणों को बहुधा दैवीय या ईश्वरीय गुणों के समान या उनके अंश के रूप में भी माना जाता है। इस कारण इस प्रकार के सत्ताधारी व्यक्ति की आज्ञा का पालन श्रद्धा-भक्ति के साथ किया जाता है। इस प्रकार के सत्ताधारी व्यक्ति को चमत्कार द्वारा अपनी विलक्षण शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ता है या युद्ध में विजय या अन्य दूसरी सफलताओं द्वारा दूसरे लोगों में यह विश्वास दृढ़ करना होता है कि वह वास्तव में कुछ अद्वितीय शक्ति का अधिकारी है। परम्परात्मक सत्ता की भाँति करिश्माई सत्ता की भी कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। परन्तु इस सत्ता की अवधि मूलत: अस्थायी होती है और इसका पतन उसी समय होने लगता है जबकि इस प्रकार के सत्ताधारी व्यक्ति अपनी विलक्षण शक्ति का प्रभावपूर्ण प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं। साथ ही, इस सत्ता की रचना या तो परम्परागत या वैधानिक दिशा में परिवर्तित हो सकती है, अर्थात् करिश्माई सत्ता परम्परात्मक या वैधानिक सत्ता में भी बदल सकती है।

नोट

टास्क सत्ता के स्वरूप या प्रकार क्या हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

23.2 सारांश (Summary)

- वेबर ने सत्ता को परिभाषित करते हुए कहा कि शक्ति को जब वैधता प्राप्त हो जाती है तो वही सत्ता बन जाती है।
- सत्ता के मुख्यत: तीन प्रकार हैं-(*i*) परंपरागत सत्ता (*ii*) तार्किक-कानूनी सत्ता (*iii*) करिश्माई सत्ता।
- वेबर ने करिश्मा के सामान्यीकरण की चर्चा करते हुए इसके परंपरागत या तार्किक-कानूनी सत्ता में परिवर्तित हो जाने की चर्चा की।

23.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सत्ता (Authority)**–दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करने और उनके संबंध में निर्णय लेने के प्रस्थापित अधिकार को सत्ता कहते हैं।

23.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सत्ता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों का विश्लेषण कीजिए।
2. करिश्माई सत्ता क्या होती है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. प्रतिपादित 2. आसीन 3. स्रोत।

23.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी-अब्राहम एवं मार्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट-जे. एच. टर्नर।
3. सोशियोलॉजी-टी.बी. बोटोमोर।

नोट

इकाई–24 : नौकरशाही (Bureaucracy)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

24.2 नौकरशाही का अर्थ (The Meaning of Bureaucracy)

24.3 नौकरशाही की परिभाषा (Definitions of Bureaucracy)

24.4 नौकरशाही की विशेषताएँ (Characteristics of Bureaucracy)

24.5 नौकरशाही के प्रकार (Kinds of Bureaucracy)

24.6 सारांश (Summary)

24.7 शब्दकोश (Keywords)

24.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नौकरशाही के अर्थ को समझना।
- नौकरशाही की विशेषता।
- नौकरशाही के प्रकारों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

19वीं सदी में कई विचारकों ने आधुनिक नौकरशाही के विषय में अपने विचारों को प्रस्तुत किया था, **मैक्स वेबर** भी उनमें से एक हैं। साथ ही, **मैक्स वेबर** ही प्रथम विचारक थे जिन्होंने कि अन्य विद्वानों की भाँति केवल नौकरशाही की उत्पत्ति तथा कार्यों का ही विश्लेषण नहीं, अपितु उसका क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया। वास्तव में,

नोट

'नौकरशाही' एक प्रकार का संस्तरणात्मक संगठन होता है। जिसका उद्‌देश्य बड़े पैमाने पर प्रशासनीय कार्यों को चलाने के काम में अनेक व्यक्तियों के काम को तर्कसंगत रूप में समन्वित करना होता है। समाजशास्त्री 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की संरचना का बोध कराने के लिए करते हैं, जिसके अन्तर्गत तर्कसंगत रूप में समन्वित असमानों का एक विशिष्ट संगठन होता है।

24.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

भारत 21वीं सदी में प्रवेश कर रहा है। और इस सदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास अपने चरम सीमा पर आ पहुँचा है। आज हम जिस युग में रह रहे हैं, उसे औद्योगिक युग (Industrial Age) कहा जाता है। औद्योगिक प्रगति के कारण मशीनों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यही कारण है कि अनेक विचारकों की धारणएँ इस ओर सोचने को अग्रसर हो रही हैं कि मनुष्य यंत्रवत हो गया है और धीरे-धीरे मनुष्य का स्थान मशीनें ग्रहण करती जा रही हैं। ऐसा नहीं कि इस प्रकार के विचार सत्य से दूर हैं, किन्तु वास्तविकता से कोई इंकार नहीं कर सकता कि मशीनों की कितनी ही प्रगति क्यों न हो जाय, उन्हें सम्हालने के लिए इंसान की कहीं न कहीं आवश्यकता पड़ेगी ही। चाहे इस युग में भले ही कम्प्यूटर सेटों का अधिकाधिक प्रयोग हो, फिर भी व्यक्तियों की आवश्यकता नितान्त आवश्यक रहेगी।

जिस तरह से मशीनों के उपयोग एवं प्रयोग के लिए मुनष्यों की आवश्यकता पड़ती है उसी तरह समाज को संचालित करने के लिए भी एक व्यवस्था होती है। इसी व्यवस्था को प्रशासकीय मशीन (Administrative Machinery) के नाम से जाना जाता है। जो बात औद्योगिक मशीन पर लागू होती है, वही बात प्रशासकीय मशीन पर भी समान रूप से लागू होती है। प्रशासन का संचानल कुशलतापूर्वक हो, इसका उत्तरदायित्व, प्रशासकीय कर्मचारियों की कर्त्तव्यनिष्ठा, सतर्कता, ईमानदारी तथा कार्यकुशलता पर आधारित होती है। इतना निश्चित है कि नियमों का निर्माण-कार्य कार्यपालिकाएँ करती हैं, किन्तु नियमों की व्याख्या और जनता पर लागू करने का काम अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सहायता से ही किया जाता है तथा अन्य अधीनस्थों की सहायता से कार्यों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया जाता है।

आज आवश्यकताओं के साथ ही साथ व्यक्ति के कार्यों में भी व्यस्तता आ गई है। वर्तमान में राज्यों के कार्यों में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। राज्य के इन बढ़ते हुए कार्यों को संचालित करने का उत्तरदायित्व प्रशासन के इन्हीं कर्मचारियों का होता है। जब राज्य के कार्यों में हस्तक्षेप (Laissez-faire) की नीति का अनुसरण किया जाता है, उस समय राज्य के कार्य उत्पन्न ही कम थे।

नोट्स इस युग में राज्य के कार्यों में अत्यन्त ही वृद्धि हुई है इसका कारण यह है कि आज का राज्य अपने को कल्याणकारी कहने का दावा करता है। इसके परिणामस्वरूप राज्य का कार्यक्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत हो गया।

24.2 नौकरशाही का अर्थ (The Meaning of Bureaucracy)

नौकरशाही अंग्रेजी शब्द में ब्यूरोक्रेसी (Bureaucracy) का हिन्दी रूपान्तर है। ब्यूरोक्रेसी शब्द फ्रांसीसी शब्द ब्यूरो (Bureau) से बना है, जिसका अर्थ है ''मेज'' या डेस्क (Desk)। मेज का यह अर्थ लिखने वाली मेज से है।

इसीलिए ब्यूरोक्रेसी को फाइनर (Finer) ने मेज प्रशासन (Desk Government) कहकर सम्बोधित किया है। ब्यूरो का दूसरा अर्थ ''पद'' अथवा ''पदस्थान'' भी होता है। इससे स्वाभाविक तौर पर ब्यूरोक्रेसी का अर्थ होता है ''अधिकारियों का शासन''।

अंग्रेजी के ''ब्यूरोक्रेसी'' के लिए हिन्दी में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे–नौकरशाही, सेवकतंत्र, अधिकारी, राज्य आदि। इन शब्दों में नौकरशाही ही सबसे अधिक प्रचलित है।

यहाँ जिन अर्थों में नौकरशाही की विवेचना की जाती है, वह आधुनिकता की उपज है। नौकरशाही उस व्यवस्था को कहते हैं जिसके अंतर्गत सरकारी कार्यों का संचालन एवं निर्देशन उन व्यक्तियों के हाथों में होता है जो प्रशासन द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त किये जाते हैं। ये कर्मचारी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर नियुक्त किये जाते हैं। इस अवस्था में कार्य स्वयं ही निर्जीव मशीन की भाँति सोपान-विधि की सहायता से होता जाता है। ये कर्मचारी जनता की अपेक्षा अपने उच्च अधिकारियों के प्रति अधिक उत्तरदायी होते हैं।

टास्क नौकरशाही का क्या अर्थ है? संक्षिप्त वर्णन करें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. यहाँ जिन अर्थों में ……… की विवेचना की जाती है, वह आधुनिकता की उपज है।
2. कर्मचारी जनता की अपेक्षा अपने उच्च अधिकारियों के प्रति अधिक ……… होते हैं।
3. कर्मचारी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर ……… किये जाते हैं।

24.3 नौकरशाही की परिभाषा (Definitions of Bureaucracy)

अब्राहम लिंकन ने जिस प्रकार की परिभाषा प्रजातंत्र की दी है, यदि इसी प्रकार की परिभाषा नौकरशाही की करें, तो कहा जा सकता है कि "नौकरशाही नौकरों की, नौकरों के द्वारा, नौकरों के लिए सरकार है।" यदि इस दृष्टि से इसकी परिभाषा करते हैं तो इसके प्रति स्वाभाविक तौर पर घृणा उत्पन्न हो जाती है। इसकी परिभाषा अनेक विद्वानों ने दी है। यहाँ हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई नौकरशाही की परिभाषाओं का अवलोकन करेंगे। ये परिभाषाएँ है:

1. **मैक्स वेबर**–"यह एक प्रकार का प्रशासकीय संगठन है, जिनमें विशेष योग्यता, निष्पक्षता तथा मनुष्यता का अभाव आदि लक्षण पाये जाते हैं।"

यदि मैक्स वेबर की परिभाषा की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें निम्न तत्त्व सम्मिलित हैं:

(*i*) यह एक प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था है,

इस प्रशासनिक व्यवस्था की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. विशेष योग्यता,
2. निष्पक्षता, और
3. मनुष्यता का अभाव।

नोट

मैक्स वेबर ने आगे लिखा है कि ये तत्व लोक प्रशासन में 'नौकरशाही सत्ता' अथवा निजी उद्योगों में 'नौकरशाही प्रबन्ध व्यवस्था' का निर्माण करते हैं। उसने लिखा है कि इसमें निम्न विशेषताएँ और पायी जाती हैं।

1. पद सोपान का सिद्धान्त (Hierachical Principle) लागू होता है,
2. अभिलेखों, फाइलों और लिखित दस्तावेजों पर आधारित,
3. आधुनिक दफ्तरी प्रबन्ध के निर्णयों पर आधारित,
4. कार्यालयीन प्रबन्ध के लिए सामान्य नियमों अथवा व्यवहारों की व्यवस्था का निर्माण,
5. कार्यालयीन प्रबन्ध के नियमों और तकनीकियों में अधिकारी प्रशिक्षण प्राप्त।

2. **लास्की**–"यह एक व्यवस्था है जिसका पूर्ण-रूपेण नियंत्रण अधिकारियों के हाथों में होता है और वे इतने स्वेच्छाचारी होते हैं कि उन्हें नागरिकों की निंदा करते समय भी शंका एवं हिचकिचाहट नहीं होती है।"

लास्की ने नौकरशाही की जो परिभाषा दी है, उससे इसकी निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं:

(*i*) यह एक प्रकार की व्यवस्था है,

(*ii*) इस व्यवस्था को वह एक नियंत्रण के नाम से भी जानता है,

(*iii*) इस व्यवस्था पर कर्मचारियों का पूर्ण नियंत्रण होता है, और

(*iv*) इन कर्मचारियों में स्वेच्छाचारिता की मात्रा अधिक पायी जाती है।

3. **ग्लैडन**–"नौकरशाही अधिकारियों द्वारा शासन है।"
4. **बर्नार्ड शा**–"सत्ता के उपासक उच्च पदाधिकारियों की सामन्तशाही का दूसरा नाम नौकरशाही है।"
5. **मोजर, किंग्सले और स्टाल**–"यह (नौकरशाही) वह क्रमिक प्रशासन रचना है, जिसकी जटिल मशीन में प्रत्येक अधिकारी एक पुर्जे के समान है। इस संगठन में कोई भी वस्तु संयोग पर नहीं छोड़ी जाती है। पहले ही सभी संबंधों को परिभाषित कर दिया जाता है तथा यही सत्ता का त्रिकोणस्तूप (Pyramid) उत्तरदायित्व के स्तरों में क्षैतिज रूप से विभाजित किया जाता है। अतएव एक अर्थ में नौकरशाही संघठनाधार के ऊपर (Supra Organic) है।"
6. **डीन पाल**–"इसको सामान्य तथा जटिल शर्तों के अन्तर्गत संयुक्त हुए अनेक व्यक्तियों के व्यवस्थित पारस्परिक कार्यों से पृथक नहीं किया जा सकता।
7. **विल्सन**–विल्सन ने नौकरशाही की परिभाषा निम्न दो रूपों में की है:–

(अ) "अपने व्यापक रूप में नौकरशाही पदाधिकारियों का एक ऐसा संगठन है जिसमें प्रशासकीय पदाधिकारियों का वर्गीकरण होता है जिसमें पद सोपन के आधार पर उप-भाग, विभाग, ब्यूरो आदि का निर्माण होता है।"

(ब) "अपने सीमित रूप में नौकरशाही की परिभाषा इस रूप में की गई है कि यह कर्मचारियों का वह समूह है जिसका संगठन पद सोपान के आधार पर किया जाता है और जो प्रभावशाली सार्वजानिक नियंत्रण से बाहर है।"

8. **फिफ्नर**-"नौकरशाही एक नमूने पर कर्त्तव्यों तथा व्यक्तियों का व्यवस्थित संगठन है, जो सामूहिक प्रयत्नों के उद्देश्यों को सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त कर सकता है।"

नोट

> क्या आप जानते हैं — नौकरशाही शासन संगठन की वह श्रेणी है जिसमें कर्मचारी मशीन के पुर्जों की भाँति संरचनात्मक और कार्यात्मक पहलुओं का सम्पादन करते हैं। ये जनता की अपेक्षा अपने उच्च अधिकारियों की कृपा पर पनपते हैं, फाइलों पर नोट लगाकर दौड़ाते रहते हैं तथा अपने बॉस (Boss) के स्वर में स्वर और लय मे लय मिलाते रहते हैं, वह चाहे उचित हो या अनुचित।

24.4 नौकरशाही की विशेषताएँ (Characteristics of Bureaucracy)

प्रत्येक कार्य के निष्पादन हेतु कुछ विधियाँ पद्धतियाँ होती हैं। नौकरशाही भी एक प्रकार की प्रशासन की पद्धति है। इस पद्धति का निर्माण अधिकारियों के द्वारा होता है। नौकरशाही की परिभाषाओं से ही इसकी विशेषताओं का आभास होता है। इन्हीं परिभाषाओं आदि को ध्यान में रखते हुए इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं–

1. **शासन संचालन की वैज्ञानिक पद्धति–**प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक हम देखते हैं कि शासन का संचालन करने के लिए अनेकानेक पद्धतियाँ हैं। इन सभी पद्धतियों की भाँति नौकरशाही भी एक विशेष प्रकार की वैज्ञानिक पद्धति है।

2. **विशिष्ट कर्त्तव्यों से परिपूर्ण–**नौकरशाही के अन्तर्गत विभिन्न कर्मचारी, अधिकारी या पदाधिकारी होते हैं। ये सभी लोग मिलकर विशिष्ट संगठन का निर्माणा करते हैं। इन पदाधिकारियों की मौलिक विशेषता यह है कि इन्हें एक विशिष्ट प्रकार के कर्त्तव्यों को पूरा करना पड़ता है। प्रत्येक पदाधिकारी के कर्त्तव्य पूर्व निश्चित और पारिभाषित होते हैं। ये पदाधिकारी इन विशिष्ट कार्य-क्षेत्रों से बाहर नहीं जाते हैं और उसी की परिधि के अंदर चक्कर लगाते हैं। प्रत्येक प्रकार की अवस्था में पदाधिकारी अपने आचरण के लिए कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्येक कर्मचारी कर्त्तव्यों के पालन में एक-दूसरे को सहयोग देते हैं। चाहे बड़ा से बड़ा अधिकारी क्यों न हो।

3. **पद-सोपान पद्धति–**अनेक प्रकार के अधिकारियों द्वारा नौकरशाही व्यवस्था का निर्माण किया जाता है। इन अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। यह नियुक्ति पद-सोपान पद्धति के आधार पर होती है। इसमें सभी अधिकारियों के पद निश्चित होते हैं। कुछ अधिकारियों का पद ऊँचा होता है, तो कुछ अधिकारियों का पद नीचा होता है। प्रत्येक निम्न श्रेणी का अधिकारी अपने से ऊँची श्रेणी के लिए उत्तरदायी होता है। इसके साथ ही इन अधिकारियों के लिए जिन कर्त्तव्यों का प्रसारण होता है, वह ऊपर से नीचे की ओर होता है। प्रत्येक अधिकारी चाहे वह ऊँचे पद का हो या नीचे पद का, कानून के द्वारा जकड़ा रहता है। इसमें कार्यों का संचालन उचित माध्यम (Through Proper Channel) के द्वारा होता है। निम्नतम अधिकारी उच्चतम अधिकारी तक पहुँचने के लिए अनेक सोपान पार करता है। इसी प्रकार उच्चतम अधिकारी को निम्नतम अधिकारी तक पहुँचने में अनेक श्रेणियाँ पार करनी पड़ती हैं। इस पद-सोपान के बिना नौकरशाही अपंग हो सकती है।

4. **कर्त्तव्यपालन के स्पष्ट आदेश–**नौकरशाही पद्धति के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था की जाती है कि इस व्यवस्था से जुड़े प्रत्येक सदस्य अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन आवश्यक रूप से करें। इस पद्धति में प्रत्येक सदस्य को विशिष्ट कर्त्तव्यों का पालन हर-हालत में करना ही पड़ता है अन्यथा सदस्यों को पदच्युत कर दिया जाता है। कर्त्तव्यों के पालन के लिए सत्ता का स्पष्ट रूप से विभाजन किया जाता है।

5. **व्यक्तित्व एवं स्वभाव में अन्तर–**प्रशासनिक व्यवस्था हेतु निर्मित नौकरशाही पद्धति की खास विशेषता यह है कि यह दो प्रकार के मानव व्यक्तित्वों एवं मानव स्वभावों को जन्म देती है।

   (*i*) दलीय व्यक्तित्व और

   (*ii*) सरकारी व्यक्तित्व।

नोट

कर्मचारी या अधिकारी जब अपने दफ्तर से बाहर रहता है तो उसका व्यक्तित्व दलीय रहता है। तब व्यक्तिगत विचारों को महत्व प्रदान किया जाता है। किन्तु कार्यालय में आने पर उस व्यक्ति का व्यक्तित्व सरकारी हो जाता है। ऐसा इसलिए किया गया है कि पदाधिकारी अपने व्यक्तिगत कार्यों में दलीय व्यक्तित्व का प्रयोग न कर पायें।

6. **कागजी कार्यवाही को महत्त्व**–प्रजातंत्र के युग में जहाँ लिखित संविधान की व्यवस्था हो,ऐसे देश में नौकरशाही के सारे कार्य कागजों पर होते हैं। व्यवहार में ये कार्य भले ही न हो अथवा देर से हों। इस कागजी कार्यवाही को 'कागजी घोड़ा दौड़ाना' भी कहा जाता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि यथार्थ रूप में काम न होकर काम फाइलों में होता है और फाइलें एक टेबुल से दूसरी टेबुल में घूमती रहती हैं। इसका पहला कारण तो यह है कि कर्मचारी लगन, उत्साह और जिम्मेदारी से काम नहीं करते हैं। साथ ही, काम की मात्रा इतनी अधिक होती है कि इसके लिए पर्याप्त समय का अभाव होता है। उनके पास कितना भी महत्त्वपूर्ण निजी काम क्यों न हो, वे साधारण से सरकारी काम को प्राथमिकता देंगे। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि 'सरकारी व्यक्तित्व' 'निजी व्यक्तित्व' पर हावी होता है। मौखिक या मुँह-जवानी बात को अधिकारी महत्त्व नहीं देते हैं।

7. **व्यवस्थित दस्तावेज या अभिलेख**–नौकरशाही पद्धति की यह भी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें कर्मचारियों या अधिकारियों को अभिलेखों और दस्तावेजों पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है। इस पद्धति में फाइलों, कागजों, अभिलेखों, लिखा-पढ़ी आदि को महत्त्व प्रदान किया जाता है। इन इस्तावेजों और अभिलेखों के अभाव में पदाधिकारी काम नहीं कर सकते हैं।

नोट्स अभिलेखों को फाइलों में बड़े ही सुरक्षित और वैज्ञानिक ढंग से रखा जाता है। पदाधिकारी इन्हीं फाइलों में उलझे रहते हैं और वे यह भूल जाते हैं कि उनका मौलिक कर्त्तव्य जनता की सेवा करना है। चाहे कितना ही जरूरी काम क्यों न हो वे बिना अभिलेख या आदेश के नहीं कर सकते हैं।

8. **सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर**–नौकरशाही की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। कर्मचारी सिद्धान्त में जो आदर्श रखते हैं, वही व्यवहार में परिवर्तित हो जाते हैं। जो कर्मचारी सिद्धान्त में जनता के रक्षक कहलाते हैं, वे ही व्यवहारिक रूप में जनता के भक्षक बन जाते हैं। वस्तुत: नौकरशाही पद्धति के अन्तर्गत कर्मचारियों के 'कथनी और करनी' में भेद पाया जाता है।

9. **योग्यता और कुशलता को महत्त्व**–नौकरशाही में उन्हीं व्यक्तियों को स्थान दिया जाता है, जो कार्यकुशल और मेधावी होते हैं। पदाधिकारियों में इतनी कुशलता होनी चाहिए कि वे अपना काम तो व्यवस्थित तरीकों से करें ही साथ ही अपने आधीन पदाधिकारियों के कार्यों पर नियंत्रण रख सकें एवं निरीक्षण कर सके। कार्यकुशल और मेधावी व्यक्ति वे होते हैं जो इसके लिए चुने जाते हैं। चाहे यह चुनाव आई.ए.एस. अधिकारी का हो या अन्य अधिकारियों का।

10. **गोपनीयता**–नौकरशाही व्यवस्था में सरकारी कार्यों की गोपनीयता को बनाये रखा जाता है। कोई भी पदाधिकारी सरकारी कार्यों की गोपनीयता को समाप्त नहीं कर सकता।

11. **प्रशिक्षण**–नौकरशाही पद्धति की अन्तिम विशेषता यह है कि इसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है। कार्यों का सम्पादन अच्छी तरह से हो, इसके लिए कर्मचारियों को इस कार्य से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता है।

24.5 नौकरशाही के प्रकार (Kinds of Bureaucracy)

नोट

शासन संचालन और प्रशासनिक व्यवस्था के लिए नौकरशाही का प्रचलन तो सभी देशों में रहा है तथा भविष्य में भी रहेगा। किन्तु इसका रूप विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रहा। वर्तमान में भारतवर्ष में योग्यता नौकरशाही का ही प्रचलन है। नौकरशाही को प्रमुख रूप से निम्न चार भागों से विभाजित किया जा सकता है–

1. **जातिगत नौकरशाही** (Caste Bureaucracy)–जातिगत नौकरशाही जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इसका आधार जाति होती है। यह वह नौकरशाही है जिसमें विशिष्ट जाति के व्यक्ति को काम पर लगाया जाता है। व्यक्ति को काम के लिए चुनाव की योग्यता 'जाति' होती है। इस प्रकार की नौकरशाही का आधार एक जाति है–एक वर्ग-विशेष होता है। मार्क्स का विचार है कि यह उन लोगों के वर्गीय सम्बन्धों से पैदा होती है जो नियंत्रण के प्रमुख स्थानों पर होते हैं। इस प्रणाली में वही व्यक्ति अधिकारी हो सकते हैं जो उच्चतर जातियों या वर्गों में पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए प्राचीन भारत में ब्राह्मण और क्षत्रिय ही अधिकारी हो सकते थे। मार्क्स ने लिखा है कि ऊँचे पदों के लिए ऐसी योग्यताएँ कर दी जाती हैं कि उसमें एक विशेष वर्ग को ही प्राथमिकता मिलती है। भारत में मुगल शासन में बाबर से लेकर औरंगजेब तक शासन जातिगत नौकरशाही के अंतर्गत ही था।

2. **अभिभावक नौकरशाही** (The Guardian Bureaucracy)–इस प्रकार की नौकरशाही में ऐसे विद्वानों का आधिपत्य होता है जो "शास्त्रोक्त आचरण में दीक्षित" होते हैं। इस प्रकार की पद्धति एक ओर न्यायपूर्ण, शुद्ध, कार्यकुशल, दक्ष और उपकारी होती है तो दूसरी ओर अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अधिकारपूर्ण भी होती है। अभिभावक नौकरशाही का एक उदाहरण दिया जा सकता है। 1640 से 1740 तक प्रशिया (Prussia) की लोक सेवा।

3 **संरक्षक नौकरशाही** (Patronage Bureaucracy)–इस प्रकार की नौकरशाही को लूट-पद्धति के नाम से भी जाना जाता है। संरक्षक नौकरशाही का घर संयुक्त राज्य अमेरिका में रहा है। यद्यपि 17वीं शताब्दी के मद्य तक 'यूनाइटेड किंग' में भी इसका बोलबाला था। इस प्रकार की नौकरशाही का बोलबाला वहाँ होता है, जहाँ सरकारी पद किसी व्यक्तिगत अनुग्रह या राजनैतिक पुरस्कार के रूप में प्राप्त होता है। मार्क्स ने इस प्रकार नौकरशाही को "प्रविधिक कुशलता की कमी, ढ़ीले अनुशासन, त्रुटिपूर्ण मार्ग, उत्साह में कमी" आदि के कारण दोषी ठहराया है।

4. **योग्यता नौकरशाही** (Merit Bureaucracy)–नौकरशाही पद्धति का अन्तिम और चौथा प्रकार योग्यता-नौकरशाही है। इस प्रकार की नौकरशाही में कर्मचारियों की भर्ती व नियुक्ति उनकी योग्यता को देखते हुए की जाती है। योग्यता के परीक्षण के आधार-लिखित, मौखिक या उपाधि सम्बन्धी या तीनों ही हो सकते हैं। इसके आधार पर प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा सेवाओं के लिए कुशल, सक्षम और योग्य कर्मचारियों की खोज की जाती है। दूसरे शब्दों में इसका प्रयत्न यह रहता है कि लोक सेवा के लिए सर्वोत्तम लोगों को भर्ती किया जाये, जिनके गुणों की माप समाज स्वीकृत मापदण्डों की सहायता से की जा सके। सभी सभ्य देशों में इस प्रकार की पद्धति का प्रचलन है। सरकारी नौकरी में नियुक्ति अब वर्ग-भेद सम्बन्धी विचारों पर आधारित है। अब यह भेंट और अनुग्रह भी नहीं रह गयी है और न ही सरकारी नौकर अब लोगों का स्वयं नियुक्ति अभिभावक ही हैं। आधुनिक युग में जबकि प्रजातंत्र का विकास होता जा रहा है इस प्रकार के अधिकारियों की दो विशेषताएँ हो गई हैं–

(*i*) इनकी नियुक्ति इसलिए की जाती है कि ये अधिक से अधिक जनता की सेवा करें, और

(*ii*) वे एक निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करें। इसके लिए उनकी नियुक्ति वांछित योग्यताओं के आधार पर की जाती है। आजकल भारत में योग्यता के आधार पर ही कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। यहाँ योग्यता-नौकरशाही ही प्रचलित और लोकप्रिय है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. नौकरशाही में ऐसे विद्वानों का ……… होता है जो 'शास्त्रोक्त आचरण में दीक्षित' होते हैं।
5. ……… को लूट-पद्धति के नाम से भी जाना जाता है।
6. नौकरशाही पद्धति का अन्तिम और चौथा प्रकार ……… है।

24.6 सारांश (Summary)

- **मैक्स वेबर** का यह भी कथन है कि शासन के प्रजातन्त्रीकरण के फलस्वरूप नौकरशाही का विकास हुआ है और इस दृष्टिकोण से प्रजातन्त्र तथा नौकशाही का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।
- राजनीतिक दलों का स्वरूप जैसे-जैसे प्रजातन्त्रीय बनता गया, वैसे-वैसे उनकी संरचना भी नौकरशाही में बदलती गई।
- जातिगत नौकरशाही जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, इसका आधार जाति होती है।

24.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **नौकरशाही (Bureaucracy):** नौकरशाही परिभाषित क्रियाकलापों संबंधी प्रतिमानों की एक ऐसी संस्तरणात्मक व्यवस्था है जिसमें बृहत स्तर पर प्रशासकीय कार्यों को चलाने हेतु व्यक्तियों के कार्यों को युक्तिसंगतता तथा औपचारिकता के आधार पर समन्वय किया जाता है।

24.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नौकरशाही की अवधारणा को समझाऐं।
2. वेबर के अनुसार नौकरशाही के कितने प्रकार हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. नौकरशाही	2. उत्तरदायी	3. नियुक्त
4. आधिपत्य	5. नौकरशाही	6. योग्यता-नौकरशाही।

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजीकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।
2. सोशियोलॉजी–टी.बी. बोटोमोर।

इकाई–25 : विल्फ्रेडो परेटो: बौद्धिक पृष्ठभूमि (Vilfredo Pareto: Intellectual Background)

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

25.2 सारांश (Summary)

25.3 शब्दकोश (Keywords)

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परेटो के जीवन संबंधी महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानना।
- परेटो के बौद्धिक पृष्ठभूमि की चर्चा करना।

प्रस्तावना (Introduction)

परेटो का उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था जो समाजशास्त्र को उस स्तर पर पहुँचा दे जिस स्तर पर भौतिक और रसायनशास्त्र हैं। उन्होंने देखा कि रसायन विज्ञान यौगिकों का विश्लेषण करता है। इसमें एक पदार्थ दूसरे पदार्थ पर निर्भर रहता है। इन विज्ञानों की तरह वे समाजशास्त्र के विभिन्न पदार्थों यानी चरों को देखना चाहते थे। *समाजशास्त्र में वे सभी चरों का अध्ययन तो नहीं करते, लेकिन कुछ चरों को व्यवस्थित रूप से देखते हैं। उन्होंने समाजशास्त्रीय विश्लेषण में केवल अतार्किक (Non-logical) चरों का ही विस्तार से अध्ययन किया है। मतलब हुआ, समाजशास्त्र अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन है।*

25.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

विल्फ्रेडो फेडेरिको दामासो परेटो का जन्म इटली में हुआ था। उनके माता-पिता इटली से निर्वासित कर दिये गये। इसके राजनीतिक कारण थे। परेटो के पिता इटली के स्वतन्त्रता सेनानी मेज़िनी और गेरीबाल्डी के प्रशंसक थे। इन

नोट

दोनों ने इटली के एकीकरण के लिए आंदोलन किये और अंत में चलकर सफल भी हुए। परेटो इन दोनों के मुरीद थे। अपने क्रियाकलापों में परेटो के पिता उदारवादी थे और वे प्रजातान्त्रिक समानता के लिये जूझने वाले व्यक्ति थे। यह सब तत्कालीन हुकूमत को स्वीकार नहीं था और इनके परिवार को देश निकाला दे दिया। परेटो तब केवल 10 वर्ष के थे। इस तरह बालक परेटो ने अपनी शिक्षा पेरिस और इटली के तूरीन में पायी।

यह संयोग की बात थी कि जब परेटो वयस्क हुए तब उन्होंने अपने पिता का विरोध किया। जब परेटो के बारे में कुछ लिखा जाता है तब यह अवश्य कहा जाता है कि वे *फासिस्टवादी* (Facist) थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में उदार विचारों का बराबर विरोध किया। अपने स्वभाव से वे प्रतिक्रियावादी थे। जब इटली की सत्ता ने कई उदारवादियों को मौत के घाट उतार दिया तब इनका समर्थन करने वालों में परेटो भी थे। *वे अपने जीवनपर्यन्त उदारवाद, स्वतन्त्रता और समाजवाद के विरोधी थे।* कहते हैं उनका रोम-रोम फासीवादी था। उनकी मौत के बाद जब इटली में पूँजीवाद को विकसित करने का प्रयास किया गया तब परेटो के विचारों को अमल में लाने की कोशिश भी वहाँ की सरकार ने की।

परेटो का जीवन एक इंजीनियर, गणितशास्त्री, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री का था। जब वे समाजशास्त्र के प्रोफेसर थे तब मुसोलिनी जैसा फासीस्टवादी उनका विद्यार्थी था। जब फासिस्टवादी अपनी किसी लड़ाई में नारे लगाते हैं और परचे बाटतें हैं तब वे परेटो के *कोटेशन* देना कभी नहीं भूलते।

नोट्स वे लोग जो अधिनायकवाद या फासीवाद को समझना चाहते हैं उनके लिये परेटो की कृतियाँ अमूल्य निधि हैं।

परेटो ऊँचे दर्जे के तार्किक थे। समाजशास्त्र के निर्माण में उन्होंने अपनी इसी तर्कना शक्ति का पूरा उपयोग किया है। जो भी समाजशास्त्री उनकी *ट्रिटाइज* (Treatise) को पढ़ता है यह स्वीकार करता है कि परेटो तर्क करने में कहीं पर भी दूसरे दर्जे के समाजशास्त्री नहीं है। तर्क के अतिरिक्त उनकी दूसरी विशेषता गणित है। उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में ही नहीं समाजशास्त्र में भी गणित का प्रयोग किया। ये परेटो ही थे जिन्होंने अर्थशास्त्र में गणितशास्त्रीय व्यवस्था को स्थापित किया है। अपने समय के इटली और फ्रान्स के अग्रणी समाचार पत्रों में वे खूब छपे हैं। वे द्विभाषी थे—इटली और फ्रान्स की भाषा को वे समझते थे और उसमें अधिकृत रूप से लिखते थे।

परेटो की कृतियों में यूरोप की दो परम्पराओं का निर्वाह पर्याप्त रूप से हुआ है। जब वे देश निकाले में फ्रान्स में रहे, वहीं शिक्षा-दीक्षा पायी तब उन्होंने अपने आपको फ्रान्स की परम्परा में ढाल दिया। इधर इटली की परम्परा भी उनके जीवन में आ गयी। उनके व्यक्तित्व विकास में ये दोनों परम्पराएँ स्पष्ट रूप से उभरकर आती हैं। इटली के बौद्धिक समाज में *मेकियावेली* (Machiavelli) का बड़ा आदर था। मेकियावेली राजनीतिशास्त्र के विशेषज्ञ थे। उनका झुकाव फासीवाद की ओर था। इसमें रुचिकर बात यह है कि परेटो मेकियावेली को अपना आदर्श समझते थे। उनका फासीवाद के प्रति जो रुझान था वह मेकियावेली के ही कारण था।

परेटो डार्विन से भी प्रभावित थे। उन्होंने हरबर्ट स्पेन्सर के उद्‌विकास की भी पड़ताल की थी। उस युग में मीड (Mead) का बड़ा नाम था। मीड ने अपनी कृतियों में व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को देखा है। उनका कहना था कि व्यक्ति के लिय समाज सबसे ऊपर है। व्यक्ति तो समाज की प्रतिकृति मात्र है। इस विचारधारा ने भी परेटो को प्रभावित किया। परेटो पर शायद सबसे बड़ा प्रभाव **मोस्का (Mosca)** का था। मोस्का ने अपनी पुस्तक *दि रुलिंग क्लास* (The Ruling Class) पर बहुत कुछ लिखा है। अपने लेखन में ये भी फासीवादी थे।

फासीवाद के अतिरिक्त परेटो तटस्थ सिद्धान्त के प्रणेता भी थे। वे पूरी शक्ति के साथ हरबर्ट स्पेन्सर और कॉम्ट के उद्विकास तथा प्रगति के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं। एक स्थान पर मुसोलिनी ने परेटो के लिये यह टिप्पणी दी: "परेटो बुर्जुआ कार्ल मार्क्स था।" इसका मतलब यह हुआ कि जिस तरह मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग की हिमायत की कुछ इसी तरह परेटो ने बुर्जुआ वर्ग की हिमायत की।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. परेटो की ········ में यूरोप की दो परंपराओं का निर्वाह पर्याप्त रूप से हुआ है।
2. मीड ने अपनी कृतियों में व्यक्ति और समाज के ········ को देखा है।
3. फासीवाद के अतिरिक्त परेटो तटस्थ सिद्धांत के ········ भी थे।

कृतित्व (Major Works)

परेटो ने बहुत कुछ लिखा है, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में। प्रारम्भ में उनके कुछ फुटकर निबन्ध अर्थशास्त्र में थे। इन्हीं के कारण वे सन् 1892 में राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economics) के प्रोफेसर हो गये। उन्होंने इटली का एक वाकया अपनी *ट्रिटाइज* में लिखा है। वे इटली में आयोजित एक सेमीनार में भाग लेने गये थे। उस समय के नामी गिरामी अर्थशास्त्री इस बैठक में उपस्थित थे। यहाँ परेटो ने कहा कि अर्थशास्त्र एक प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान (Positive Social Science) है। उनका यह कहना था कि बैठक के कई सदस्यों ने उनकी टाँग खीचनी शुरू कर दी। जैसा कि बैठकों में होता है परेटो को भी चुप्पी साधनी पड़ी। इसी बैठक के बाद शाम को परेटो भोजन प्राप्त करने के लिये किसी होटल की तलाश में निकले। बैठक में उपस्थित एक भागीदार से उनकी भेंट हो गयी। परेटो ने बैठक के भागीदार से पूछा की क्या वे उन्हें कोई ऐसा होटल बता सकते हैं जहाँ मुफ्त में खाना मिले। परेटो ने यह इसलिये पूछा कि वे उस शहर में अजनबी थे। भागीदार ने तपाक से उत्तर दिया: कहीं भी ऐसा होटल तो नहीं मिलेगा जो मुफ्त में खाना दे देवे। हाँ, यह अवश्य है कि किसी होटल में सस्ता खाना मिल जायगा और किसी में महँगा। अब परेटो के बोलने की बारी थी: "यही तो समाजशास्त्र का सिद्धान्त है।" कहने का तात्पर्य यह है कि अर्थशास्त्र को एक प्रत्यक्षवादी विज्ञान बनाने में परेटो का योगदान अमूल्य है। उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर 1896-97 में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। इसके बाद सन् 1906 में उन्होंने अर्थशास्त्र का एक मेन्युल भी तैयार किया। समाजशास्त्र में उनकी पुस्तक *दि सोशिलिस्ट सिस्टम* (The Socialist Systems) एक शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसके बाद *ट्रिटाइज ऑन जनरल सोशियोलोजी* (Treatise on General Sociology–1916) प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद न्यूयार्क से *माइन्ड एण्ड सोसाइटी* (Mind and Society) के नाम से 1935 में प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक चार खण्डों में निकली है। सामान्यतया यह पुस्तक *ट्रिटाइज* के नाम से जानी जाती है।

टास्क परेटो ने समाजशास्त्रीय विश्लेषण में किन चरों का विस्तार से अध्ययन किया है?

ट्रिटाइज में परेटो ने प्रजातान्त्रिक व्यवस्था पर कटु व्यंग्य किये हैं। इन व्यंग्यों ने ही मुसोलिनी को परेटो की ओर आकर्षित किया। यह इसी पुस्तक के कारण है कि मुसोलिनी जब सत्ता में आये तब उन्होंने परेटो को इटली की सीनेट की सदस्यता के लिये मनोनीत किया। यह दूसरी बात है कि परेटो ने इसे स्वीकार नहीं किया।

रेमण्ड एरॉ और पारसंस ऐसे सिद्धान्तवेत्ता है। जिन्होंने परेटो का विश्लेषण एक सैद्धान्तिक विचारक के रूप में किया है। इन्हीं दो लेखकों के आधार पर लेविस कोजर ने–*मास्टर्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट में,* परेटो की व्याख्या की है। ये सभी लेखक परेटो की पदावली में समाजशास्त्र की परिभाषा देते हैं। *परेटो समाजशास्त्र को ऐसा समाज विज्ञान मानते हैं जो अतार्किक क्रियाओं (Non-logical Action) का अध्ययन करता है।* हम अपनी लड़की को पराया धन-अमानत समझते हैं। जैसे मंदिर में बिना प्रसाद के पहुँचना अशिष्टता है, वैसे ही लड़की के घर बिना कुछ उपहार के जाना अशिष्टता है। लड़की के प्रति हमारी ये सब क्रियाएँ परेटो की पदावली में अतार्किक है। यह हमारी समझ में नहीं आता कि जिस लड़की का हमने पालन-पोषण किया उसे हम दूसरे घर पहुँचा देते हैं और जहाँ तक बन सके उसे कुछ-न-कुछ देते रहते हैं। तर्क तो गणितीय होता है। फिर भी समाजशास्त्र हमारे इस व्यवहार को अतार्किक होते हुए भी अध्ययन करता है। *इस भाँति समाजशास्त्र मनुष्यों की अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन करता है।*

जब अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है तब उसकी कुछ वैज्ञानिक विधियाँ भी होनी चाहिये। यदि अध्ययन की विधियाँ वैज्ञानिक नहीं होगी तो समाजशास्त्र का एक विज्ञान होने का दावा सिद्ध नहीं हो पायगा। परेटो इस समस्या का निदान देते हैं। वे कहते हैं कि *समाजशास्त्र अतार्किक क्रियाओं का तार्किक विधि से अध्ययन करता है।* ऊपर के दृष्टान्त में वह तर्क देगा कि अपनी लड़की तो आखिर अपनी लड़की है। जब हम अपने जीवन के संध्याकाल में पहुँचेंगे तब यही लड़की हमारी सहायता करेगी। हमारे दुख दर्द में हमारी लड़की ही आयेगी। यह तर्क है। इसी कारण वे कहते हैं कि समाजशास्त्र अतार्किक क्रियाओं को तार्किक रूप से देखता है।

अतार्किक अध्ययन के लिये परेटो ने दो मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं को प्रस्तुत किया है। इन अवधारणाओं में पहली अवधारणा *विशिष्ट चालक* (Residues) की है और दूसरी *भ्रान्त तर्क* (Derivations) की है। यह दोनों अवधारणाएँ मनुष्य के व्यवहार को समझने में सहायक है। परेटो इन्हें अध्ययन विधि कहते हैं। अध्ययन विधि के इस पैकेज़ को वे *तार्किक प्रयोगिक* (Logico-experimental) कहते हैं। इस पैकेज में उन्होंने यह कहा है कि विशिष्ट चालक और कुछ न होकर हमारे मनोभाव (Sentiments) हैं। ये मनोभाव सभी व्यक्तियों में होते हैं। चेतन और अचेतन अवस्था में लोग इन मनोभावों से प्रेरित होकर काम करते हैं। हम जब अपनी लड़की को उपहार देते हैं तो इसमें हमारे कोई तर्क न होकर केवल मनोभाव ही होते हैं। दूसरी ओर मनुष्य में *भ्रान्त तर्क* (Derivations) होते हैं। यह तर्क वास्तविकता से दूर है लेकिन इसका प्रयोग हम केवल मन को शांति देने के लिये करते हैं। जब हम यह कहते हैं कि हमारी लड़की हमारी कठिनाइयों में सहायता देगी तो यह एक भ्रान्त तर्क है। यह तर्क हमें भी भ्रम में रखता है और लड़की को भी। मनोभाव और भ्रान्त तर्क प्रयोगिक तार्किक व्यवस्था में सहायक होते हैं।

क्या आप जानते हैं यह अवश्य है कि रेमण्ड ऍरा और कोज़र ने यह बराबर कहा है कि परेटो की यह अवधारणाएँ स्पष्ट नहीं है। इस आलोचना के होते हुए भी समाज में होने वाली अतार्किक क्रियाओं के तार्किक अध्ययन के लिये इनकी उपयोगिता है।

25.2 सारांश (Summary)

- परेटो ने समाजशास्त्र के लक्ष्य को स्थापित कर दिया कि यह समाज विज्ञान अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन करता है। इसके बाद उन्होंने तार्किक प्रायोगिक विधि को भी प्रस्तावित किया।
- जब हम तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लेते हैं तब हमें इन दोनों के सामंजस्य पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

- परेटो ने समाजशास्त्र और उसकी विधियों का विश्लेषण किया है। उनका दूसरा कार्य अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का है। उनका यह सिद्धान्त वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त है।
- परेटो से पहले अर्थशास्त्री मार्शल ने जो सिद्धान्त रखा था उसका विरोध भी इन्होंने किया है। सब मिलाकर परेटो समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों की तरह प्रत्यक्षवादी विज्ञान बनाना चाहते थे।

25.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ (Subjective and Objective):** जब हम वस्तुओं को देखते हैं तो उन्हें अपनी वैयक्तिक दृष्टि से देखते हैं और फिर हम इसे वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखते हैं। जहाँ व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों दृष्टिकोण मिल जाते हैं तो यह निश्चित रूप से वैज्ञानिक उपागम है।

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परेटो की बौद्धिक पृष्ठभूमि पर विचार करें।
2. ट्रिटाइज में परेटो ने किस पर कटु व्यंग्य किए हैं?
3. नौकरशाही की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. कृतियों 2. संबंधों 3. प्रणेता।

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम और मार्गन।
2. महान समाजशास्त्रीय विचारक—डा. डी.एस. बघेल।

नोट

इकाई–26 : पद्धतिशास्त्र में योगदान–तार्किक पद्धति (Contribution in Methodology –Logical Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

26.2 समाजशास्त्र की परिभाषा (Definition of Sociology)

26.3 सारांश (Summary)

26.4 शब्दकोश (Keywords)

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- समाजशास्त्र को परेटो की देन।
- वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अवधारणा।

प्रस्तावना (Introduction)

परेटो का विश्वास था कि उनके पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा कोई भी अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार नहीं किए गए थे और न ही उन्होंने समाजशास्त्र के अध्ययन को वास्तविक तथ्यों पर आधारित किया था। इसलिए उनके अध्ययन या तो दार्शनिक थे या फिर केवल सैद्धांतिक। परेटो ने समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करते हुए इसे तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान का नाम दिया।

26.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

परेटो की समाज विज्ञानों को कई तरह की देन है। गणितशास्त्र में उन्होंने गणितीय, साम्यानुकूलन के सिद्धांत को बनाया। अर्थशास्त्र में उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र को अपनी ऊँचाइयों पर रखा। इसका एक *मेन्युअल* भी तैयार

किया। उन्होंने जो कुछ गणितशास्त्र और अर्थशास्त्र पर लिखा है। इसका उद्देश्य इन विधाओं को वैज्ञानिक स्तर पर रखना है। वे हर तरह से अर्थशास्त्र को एक निश्चित और प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान मानते थे। समाजशास्त्र भी उनकी देन है। उन्हें ऊँचे दर्जे का विचारक समझा जाता है। इस हैसियत से उनकी देन दो क्षेत्रों में है–

1. वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अवधारणा (Conception of Scientific Sociology)
   (*a*) तार्किक क्रिया (Logical Action),
   (*b*) अतार्किक क्रिया (Non-Logical Action),
   (*c*) विशिष्ट चालक (Residues),
   (*d*) भ्रान्ततर्क (Derivations).
2. अभिजात वर्ग का परिभ्रमण (Circulation of Elites)

परेटो की देन अनन्य है।

वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अवधारणा (Conception of Scientific Sociology)

परेटो की समाज की अवधारणा एक व्यवस्था की है। वे कहते हैं कि किसी भी व्यवस्था की तरह समाजशास्त्र भी एक व्यवस्था (System) है। व्यवस्था में अगणित भाग होते हैं। समाज में भी अगणित भाग हैं। इसमें राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म, परिवार, वर्ग आदि हैं। प्रत्येक भाग की अपनी एक पहचान है। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जो उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग है, आर्थिक क्रिया है। इसी तरह आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध धर्म का क्षेत्र है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक पृथक् शिनाख्त है। हम कह सकते हैं कि यहाँ अर्थशास्त्र शुरू होता है, और वहाँ समाप्त होता है। इस शिनाख्त के होते हुए भी परेटो कहते हैं कि समाज का एक भाग दूसरे भाग से और सम्पूर्ण भागों से जुड़ा हुआ है। राजनीति एक पृथक् भाग है लेकिन यह मालिक और मजदूरों के सम्बन्धों को निश्चित करता है। शिक्षा एक भाग है लेकिन धर्म और अर्थ दोनों ही इसे प्रभावित करते हैं। परेटो का तर्क यह है कि समाज के भाग अन्तनिर्भर है। एक भाग में परिवर्तन करते हैं तो इससे अन्य भाग परिवर्तित होते हैं। समाज की इस सम्पूर्ण व्यवस्था में मनुष्य एक अणु (Molecule) है। समाज की इस व्यवस्था को प्रभावित करने वाली तीन दशाएँ हैं–

1. मानव अतिरिक्त पर्यावरण (Extra human environment)
2. समाज से बाहर के तत्व (Other elements exterior to the society)
3. व्यवस्था के आन्तरिक तत्व (Inner elements of the system): जैसे हेतु, ज्ञान, मनोभाव, विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क।

समाज की व्यवस्था को व्यवस्थित बनाने में उपरोक्त सभी तीन कारक महत्त्वपूर्ण हैं। इन सब कारकों का विवरण परेटो ने दिया है। लेकिन सबसे अधिक विस्तार से उन्होंने मनोभावों और भ्रान्त तर्कों को दिया है। समाजशास्त्र की परिभाषा वे इन्हीं अतार्किक (Non logical) और तार्किक (Logical) अवधारणाओं द्वारा करते हैं।

नोट्स जब हम समाजशास्त्र को परिभाषित करते हैं तब हमें तार्किक, अतार्किक, विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क सभी का उल्लेख करना पड़ेगा। ये सब तत्व मिलकर ही समाजशास्त्र की परिभाषा और उसकी विषय-वस्तु को बताते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ········ की समाज विज्ञानों को कई तरह की देन है। अर्थशास्त्र में उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र को अपनी ऊँचाइयों पर रखा है।
2. अर्थशास्त्र को एक निश्चित और ········ समाज विज्ञान मानते थे।
3. हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जो उत्पादन, विनियम, वितरण और उपभोग है, ········ है।

26.2 समाजशास्त्र की परिभाषा (Definition of Sociology)

माइण्ड एण्ड सोसाइटी में परेटो ने समाजशास्त्र को परिभाषित किया है। वे यह मानकर चलते हैं कि जैसा हमने ऊपर कहा है समाज एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था के विभिन्न भाग आपस में जुड़े हुए हैं। व्यवस्था में परिवर्तन लाने वाले कारक पर्यावरण तथा आन्तरिक और बाह्य व्यक्ति और व्यवस्थाएँ हैं। उन्होंने इसी संदर्भ में समाजशास्त्र को परिभाषित किया है।

क्या आप जानते हैं समाजविज्ञानों की दुनिया में केवल अर्थशास्त्र ही ऐसा है जो निश्चित है, गणितीय है और जिसे मापा जा सकता है।

अर्थशास्त्र की तर्ज पर ही वे समाजशास्त्र को भी बाँधने का प्रयास करते हैं। ऐसा करने में वे मनुष्य के मनोभावों और तर्कों की अवधारणाा को भी काम में लाते हैं। उन्होंने समाजशास्त्र की परिभाषा इस भाँति दी है–

समाजशास्त्र अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

जब हम अतार्किक क्रिया की बात करते हैं तो स्वाभाविक रूप से तार्किक क्रिया की बात भी आती है। यानी मनुष्य की क्रियाएँ तार्किक और अतार्किक दोनों होती हैं। पहले हम दोनों की व्याख्या करेंगे।

टास्क समाजशास्त्र की परिभाषा क्या है। संक्षिप्त वर्णन करें।

26.3 सारांश (Summary)

- परेटो के वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अनेक विशेषताएँ हैं–
  1. समाजशास्त्र विशुद्ध विज्ञान की भाँति क्या है का वर्णन करेगा।
  2. यह किसी भी पूर्व धारणा के आधार पर कार्य नहीं करेगा।
  3. यह सामाजिक घटनाओं में पारस्परिक निर्भरता एवं कार्यात्मक संबंध को स्वीकार करेगा।
  4. समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक नियमों का प्रतिपादन करना है।
- परेटो की समाज की अवधारणा एक व्यवस्था की है। वे कहते हैं कि किसी भी व्यवस्था की तरह समाजशास्त्र भी एक व्यवस्था (System) है।

26.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **तार्किकः प्रयोगात्मक पद्धति (Logical Experimental Method):** वास्तविक तथ्यों पर आधारित वास्तविक निरीक्षण एवं प्रयोगों द्वारा की जाने वाली अध्ययन पद्धति।

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परेटो की वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
2. समाज की व्यवस्था को व्यवस्थित बनाने में तीन कारक कौन-से हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. परेटो   2. प्रत्यक्षवादी   3. आर्थिक क्रिया।

26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजी–टी.बी. बोटोमोर।
2. सामाजिक विचारधारा–दोषी एवं जैन।

नोट

इकाई–27 : तार्किक एवं अतार्किक क्रियाओं का वर्गीकरण (Classification of Logical and Non-Logical Action)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

27.2 अतार्किक क्रिया (Non-Logical Action)

27.3 सारांश (Summary)

27.4 शब्दकोश (Keywords)

27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परेटो की तार्किक क्रिया को समझना।
- परेटो की अतार्किक क्रिया की व्याख्या।

प्रस्तावना (Introduction)

उनका मानना था कि सामाजिक व्यवस्था में साम्यानुकूलन होता है। इसकी संरचना व्यक्तियों से बनी है। इन व्यक्तियों की गतिविधियों पर कई शक्तिशाली कारक काम करते हैं। इन शक्तिशाली कारकों में मुख्य रूप से मनोभाव यानी अवशिष्ट और भ्रान्त तर्क होते हैं। मनुष्य के सम्पूर्ण व्यवहार का एक भाग अतार्किक होता है। इस अतार्किक व्यवहार का निर्धारण अवशिष्टों और भ्रान्त तर्क द्वारा होता है। इसी अतार्किक क्रिया का अध्ययन समाजशास्त्र करता है। इस समाजशास्त्र की अध्ययन विधि तार्किक है। परेटो का तर्क आगमनात्मक (Inductive) है। वे वस्तुनिष्ठा और व्यक्तिनिष्ठा के समायोजन के परिणामस्वरूप जो क्रिया होती है उसका अध्ययन करते हैं। उन्होंने इस अवधारणात्मक (Conceptual) योजना के अनुसार कई समाजशास्त्रीय सिद्धांत रखे हैं। इन सिद्धांतों में अभिजन का चक्रीय सिद्धांत समाजशास्त्रियों में उल्लेखनीय स्थान रखता है।

27.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

नोट

तार्किक क्रिया (Logical Action)

परेटो ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए दो अवधारणाओं को प्रस्तावित किया है तार्किक क्रिया और अतार्किक क्रिया। इन दो अवधारणाओं से जुड़ी हुई और अवधारणाएँ हैं। वस्तुनिष्ठ क्रिया (Objective action) और व्यक्तिनिष्ठ क्रिया (Subjective action)। जब व्यक्ति तार्किक क्रिया करता है तब वह इन दोनों अवधारणाओं के अन्तर्गत अपने निर्णय लेता है। अवधारणाओं का एक और सेट है: साधन और साध्य (Means and End)। जब व्यक्ति किसी क्रिया को करता है तब उसके कुछ साध्य यानी उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह कुछ साधनों को प्रयोग में लाता है। साध्य-साधन के बिना क्रिया नहीं हो सकती। और अपने अतार्किक क्रिया सिद्धांत के अन्त में परेटो अवशिष्ट और भ्रान्त तर्क (Residues and Derivations) की अवधारणाएँ काम में लाते हैं। इन सब अवधारणाओं का हम यहाँ विश्लेषण करेंगे। थोड़े में परेटो द्वारा दी गयी समाजशास्त्र की परिभाषा और इसकी विधियाँ इन्हीं अवधारणाओं से जुड़ी हुई हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. परेटो ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए दो ········ को प्रस्तापित किया है तार्किक क्रिया और अतार्किक क्रिया।
2. अपने अतार्किक क्रिया सिद्धांत के अन्त में परेटो ········ तर्क की अवधारणाएँ काम में लाते हैं।
3. परेटो द्वारा दी गई समाजशास्त्र की परिभाषा और इसकी विधियाँ इन्हीं ········ से जुड़ी हुई हैं।

परिभाषा और अर्थ (Definition and Meaning)

लेविस कोजर ने तार्किक क्रिया की परिभाषा इस तरह दी है–

तार्किक क्रियाएँ वे हैं जो साध्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों को काम में लाती हैं। ये क्रियाएँ साधन और साध्य को तार्किक रूप से जोड़ती है।

कोजर ने तार्किक क्रिया की जो व्याख्या की है जिसके अनुसार यह बहुत स्पष्ट है कि व्यक्ति किसी भी क्रिया के करने से पहले अपने उद्देश्य को निश्चित करता है। यह उसका साध्य है। साध्य निश्चित होने के बाद वह तार्किक रूप से यह देखता है कि इसे प्राप्त करने का उचित साधन क्या है। लेकिन जब वह साधन के बारे में सोचता है तब दुविधा में पड़ जाता है। उदाहरण के लिए विश्वविद्यालय का छात्र अपनी परीक्षा को उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण करना चाहता है। यह उसका साध्य है। यहाँ तक तो सब ठीक-ठाक है। अब दुविधा आती है। यह उच्च श्रेणी कैसे प्राप्त की जाए? उसका मन तो करता है कि वह परीक्षा में नकल कर ले; परीक्षकों तक अपनी पहुँच करें और उच्च श्रेणी प्राप्त कर ले। उसका यह विकल्प साधन है। परेटो इसे व्यक्तिनिष्ठ क्रिया (Subjective action) कहते हैं। लेकिन वह समाज की ओर देखता है। समाज तो कहता है कि उच्च श्रेणी पाने के लिए अधिकतम मेहनत करनी चाहिए। समाज का यह कहना वस्तुनिष्ठ (Objective) है। अब छात्र क्या करे? यदि इस दुविधा को पार करने के लिए वह अपने मन को यानी स्वयं के विकल्प को छोड़ दे और वस्तुनिष्ठ विकल्प को अपना ले तो यह उसकी तार्किक क्रिया होगी। मतलब यह हुआ तार्किक क्रिया में व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ क्रिया का समायोजन हो जाता है। इसे सूत्र रूप में इस भाँति रखेंगे:

$$\text{व्यक्तिनिष्ठ} + \text{वस्तुनिष्ठ क्रिया} = \text{तार्किक क्रिया}$$

नोट

पारसंस ने तार्किक क्रिया की व्याख्या अधिक सटीक रूप में की है। उनका कहना है–क्रिया तब तार्किक होती है। जब वह समाज द्वारा निर्धारित मानकों के एक प्रकार को स्वीकार करती है।

यहाँ पारसंस स्पष्ट रूप से साध्य-साधन की बात नहीं करते। लेकिन जब वे निश्चित प्रकार के मानकों को स्वीकार करने की चर्चा करते हैं तो इससे स्पष्ट है कि वे समाज द्वारा स्वीकृत मानकों को महत्त्व देते हैं। देखा जाए तो पारसंस और मर्टन के क्रिया सिद्धांत के बाद साधन-साध्य की बात अधिक आग्रहपूर्वक उठाई गयी है। मर्टन ने एनोमी (Anomie) की अवधारणा को रखा है। उनका कहना है कि समाज में नियमहीनता तब आती है जब एक व्यक्ति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समाज के नियमों को नहीं मानता। यदि मर्टन को परेटो की साध्य-साधन की अवधारणा पर ढाला जाए तब कहना होगा कि मर्टन एनोमी से मुक्ति की बात तब मानते हैं जब व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों और साधनों दोनों को अपनाता है। साधन-साध्य की बात हमारे देश में गाँधी जी ने भी उठाई है। उनका कहना है कि व्यक्ति को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में जुट जाना चाहिए। लेकिन वह जिन साधनों को काम में लाता है वे पवित्र होने चाहिए। करोड़पति बनने के लिए यदि कोई व्यक्ति ड्रग की तस्करी करता है और रातों-रात अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तब गाँधी ही कहते हैं उसके लक्ष्य पवित्र नहीं हैं। करोड़पति हो गया तो क्या हुआ, उसने जो तरीके अपनाये हैं उसके साधन गंदे हैं।

नोट्स तार्किक क्रिया वह क्रिया है जिसमें साध्य-साधन तार्किक आधार पर जुड़े हों यानी साधन ऐसे हों जो साध्य तक पहुँचा दें। दूसरा साधन ऐसे होने चाहिए जो उपयुक्त हों। यहाँ उपयुक्त से परेटो का तात्पर्य समाज द्वारा स्वीकृत हो।

तार्किक क्रिया के लक्षण (Characteristics of Logical Action)

1. तार्किक क्रिया कार्य-कारण से जुड़ी होती है। कोई भी क्रिया तार्किक तभी बनती है। जब उसके पीछे कार्य-कारण हों। अनिवार्य रूप से तार्किक क्रिया संवेगात्मक नहीं होती। यह तो गणितीय रूप में होती है–दो और दो चार। ऐसा नहीं है कि पिता द्वारा दिये गये अपने बेटे को दो और दो चार रुपये पाँच हो जाए और पराये व्यक्ति के लिए तीन हो जाए। यह अंक तो बराबर चार ही रहता है। परेटो इसे तर्क कहते हैं।

2. वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानकों में समायोजन होता है। व्यक्ति कुछ सोचे और समाज और कुछ, इससे तार्किक क्रिया नहीं बनती है। तार्किक क्रिया के लिए वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानकों में समायोजन होना आवश्यक है।

टास्क तार्किक क्रिया के क्या लक्षण हैं? संक्षेप में वर्णन करें।

वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ मानक (Objective and Subjective Norms)

तार्किक क्रिया में वस्तुनिष्ठता और व्यक्तिनिष्ठता में गहन सम्बन्ध की बात परेटो ही नहीं उनके बाद के समाजशास्त्रियों ने भी की है। रेमण्ड एराँ ने परेटो की जो व्याख्या रखी है उसमें वे इन दोनों प्रकार के मानकों की चर्चा विस्तार से करते हैं। क्रिया की ये दो अवधारणाएँ तार्किक और अतार्किक क्रियाओं को समझने के लिए अनिवार्य है। इसे थोड़ा समझना चाहिए। जब व्यक्ति किसी क्रिया को करता है तब क्रिया के बारे में उसके मस्तिष्क में कुछ बातें होती हैं। व्यक्ति के मस्तिष्क में मनोभाव होते हैं। वह अचेतन अवस्था में भी अपने मस्तिष्क में कुछ न कुछ गतिविधि करता रहता है। परेटो इसे मस्तिष्क की अवस्था (State of Mind) कहते हैं। जब परेटो

नोट

व्यक्तिनिष्ठ मानकों की बात करते हैं कि विचारकों के इस युग में एक बहुत बड़ा द्वन्द्व था। कुछ विचारक समाजशास्त्र को मनोविज्ञान से पृथक् करना नहीं चाहते थे। वेबर ने जब क्रिया के आदर्श प्रारूप (Ideal Type) बनाये तब उन्होंने कहा कि क्रिया वह है जो व्यक्ति स्वयं परिभाषित करता है। यहाँ उन्होंने मनोविज्ञान की भूमिका को रखा। परेटो जब व्यक्तिनिष्ठ क्रिया की बात करते हैं तो स्पष्ट है कि उनके मस्तिष्क में व्यक्ति की मानसिक अवस्था का विचार है।

व्यक्ति के सामने वस्तुनिष्ठ स्थिति भी होती है। वह वस्तुनिष्ठ से अपनी आँख नहीं मूंद सकता। पिछले दृष्टान्त की बात करें तो कहेंगे कि किसी भी व्यक्ति का करोड़पति बनने का सपना, कोई गलत नहीं है। वस्तुनिष्ठा भी इसे स्वीकार करती है। समाज चाहता है कि लोग सम्पन्न रहे। लेकिन जब व्यक्तिनिष्ठा अपना मुँह वस्तुनिष्ठता से फेर लेता है तो समाज की व्यवस्था बिगड़ जाती है। चोरी-चकारी, लूट-पाट किसी को भी समाज द्वारा मान्यता प्राप्त करोड़पति नहीं बनाती। परेटो कहते हैं कि तर्कसंगत क्रिया तभी होगी जब इसमें व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा का समायोजन होगा।

रेमण्ड एराँ द्वारा दी गयी तालिका जो व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा का समायोजन बताती है, हम यहाँ देंगे:

वस्तुनिष्ठा	नहीं	नहीं	हाँ	हाँ
व्यक्तिनिष्ठता	नहीं	हाँ	नहीं	हाँ

इस तालिका को थोड़ा हम समझें। जहाँ 'नहीं' 'नहीं' श्रेणी है इसका मतलब है कि क्रिया तार्किक नहीं है। इसका मतलब हुआ न तो वास्तविकता में साधन लक्ष्यों से जुड़े हैं और न व्यक्ति के मस्तिष्क में भी साध्य का समायोजन है। 'नहीं' 'नहीं' की श्रेणी वास्तव में काम में आती नहीं है। आदमी विवेकपूर्ण है वह सोचता है और इसलिए व्यावहारिक जीवन में 'नहीं' 'नहीं' की स्थिति नहीं आती।

अब हम दूसरी श्रेणी को लें। इसमें व्यक्ति के कार्यों को वस्तुनिष्ठता 'नहीं' कहती है लेकिन व्यक्ति निष्ठा के आधार पर 'हाँ' कहता है। बढ़ते हुए समाज में आज जनसंख्या का एक बड़ा भाग वस्तुनिष्ठा की उपेक्षा करके हर चीज प्राप्त कर लेना चाहता है। वह बड़ा अफसर बनना चाहता है, अव्वल दर्जे का प्रोफेसर होना चाहता है और इनकी प्राप्ति के लिए जिन साधनों को अपनाता है, वस्तुनिष्ठा उन्हें मान्यता नहीं देती है। यह भी तर्कसंगत क्रिया नहीं है।

तीसरी श्रेणी में स्थिति दूसरी हो जाती है। यहाँ वस्तुनिष्ठा तो साध्य प्राप्त करने की स्वीकृति देती है लेकिन व्यक्ति इसकी सुविधा नहीं अपनाता। आदिवासियों को विकास योजना के अन्तर्गत कई विकास सुविधाएँ दी गयी हैं। यह वस्तुनिष्ठा है। लेकिन आदिवासी इसका लाभ नहीं ले पाता।

तालिका की चौथी श्रेणी वह है जिसमें वस्तुनिष्ठा और व्यक्तिनिष्ठा दोनों में 'हाँ-हाँ' हैं। यानी यहाँ इन दोनों में समायोजन है। यह क्रिया तर्कसंगत क्रिया है।

27.2 अतार्किक क्रिया (Non-Logical Action)

परेटो का अतार्किक क्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से हैं जो तार्किक नहीं है। दूसरे शब्दों में वह क्रिया जो तार्किक नही हैं, वह अतार्किक है। इस दृष्टि से अतार्किक क्रिया एक अवशिष्ट श्रेणी (Residual Category) है। इसकी कुछ परिभाषाएँ लीजिए:

लेविस कोजर के अनुसार, "अतार्किक क्रिया केवल वह क्रिया है जो परेटो की परिभाषा में तार्किक नहीं है। सम्पूर्ण क्रिया में तार्किक क्रिया निकाल दीजिये। जो अवशिष्ट हैं। वह अतार्किक क्रिया है।"

पारसंस ने अतार्किक क्रिया को अधिक खुलासे से रखा है। वे कहते हैं कि मनुष्य की सभी क्रियाओं को हम (A) कहते हैं। ये क्रियाएँ बहुत विस्तृत और विशाल हैं। हम रोटी-रोजी के लिए सुबह से शाम तक जुटे रहते हैं। इसी

नोट

तरह लोग विभिन्न क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। इन सबको हम (A) की श्रेणी में रखते हैं। अब हम इस सम्पूर्ण क्रिया (A) में से तार्किक क्रिया जिनका नाम (L) देते हैं निकाल लेते हैं तो शेष जो बचता है, यानी जो अवशिष्ट है, वह अतार्किक क्रिया है। हम अपने व्यवसाय, परिवार, समुदाय, वर्ग आदि में कई क्रियाएँ करते हैं। इनमें अधिकांश क्रियाएँ तार्किक हैं। लेकिन हम मनोरंजन करते हैं, लिखते हैं, चित्र बनाते हैं, ये सब हमारे शौक हैं। इन दोनों प्रकार की क्रियाओं में से जो बचता है यानी साहित्य, कला आदि अतार्किक क्रिया है। दूसरे शब्दों में यदि सम्पूर्ण क्रिया में से तार्किक क्रिया को निकाल दें तो जो अवशिष्ट बचेगा वह अतार्किक क्रिया होगी।

परेटो की परिभाषा में समाजशास्त्र एक ऐसा समाजविज्ञान है जो मनुष्य की अतार्किक अन्त:क्रिया का अध्ययन करता है। तार्किक अन्त:क्रियाओं का अध्ययन तो अर्थशास्त्र करता है। अतार्किक क्रिया का अध्ययन समाजशास्त्र की विषय-वस्तु है। परेटो कहते हैं कि अतार्किक क्रिया के अध्ययन की तार्किक पद्धति है। यानी अतार्किक क्रिया के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधि है, इसका एक सिद्धांत है।

अतार्किक क्रिया के अध्ययन की विधि (Methods of the Study of Non-Logical Action)

परेटो अतार्किक क्रिया का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करना चाहते थे। उन्होंने समाजशास्त्र को जब परिभाषित किया तब कहा कि वे तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लायेंगे। अतार्किक क्रिया के अध्ययन में उन्होंने सबसे पहले तर्क को लगाया है। उनका यह तर्क आगमनात्मक (Inductive) है। वे वृहद आनुभविक सामग्री को एकत्र करते हैं। यह सामग्री विभिन्न समाजों के इतिहास में बिखरी है। उनके अध्ययन का यह प्रायोगिक पहलू है। जो तथ्य उन्होंने एकत्र किये है। उनमें जो समान तथ्य (Similar data) है उन्हें व्यवस्थित कर देते हैं। इन तथ्यों में कुछ तथ्य स्थिर (Constant) होते हैं और कुछ चर (Variable)। स्थिर तथ्यों को लेकर वे नियम बनाते हैं और ये नियम ही अतार्किक क्रिया के अध्ययन में सहायक होते हैं। इसे हम दृष्टान्त में रखेंगे। समाज में हम लोगों को देखते हैं—नाम के लिए वे मोहन, सोहन और रोहन हैं। हम देखते हैं कि ये सब एक न एक दिन मर जाते हैं। ये सब मनुष्य हैं और यह स्थिर तथ्य है कि मनुष्य मरण धर्मा है। यह समान रूप से इन्हीं तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। इस भाँति इस आगमनात्मक नियम द्वारा वे अतार्किक क्रिया के अध्ययन के सिद्धांत को बनाते हैं।

पारसंस ने परेटो के अतार्किक क्रिया के सिद्धांत की व्याख्या की है। उनकी व्याख्या में तीन तथ्य हैं—

(A) कर्ता यानी एक्टर (Actor); मस्तिष्क की अवस्था (State of Mind)

(B) गतिविधियाँ (Acts)

(C) मनोभावों की अभिव्यक्ति (Expressions of Sentiments)

इसकी हम व्याख्या करें इससे पहले निम्न चित्र में इसे प्रस्तुत करेंगे।

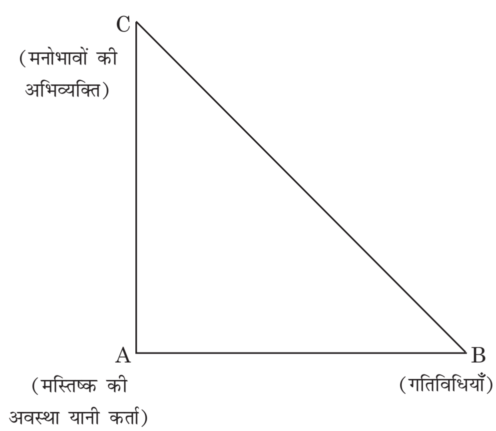

नोट

उपरोक्त त्रिभुज के आधार पर परेटो के अतार्किक क्रिया की व्याख्या की जा सकती है। इसमें जब हम 'A' की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य कर्ता से है। कर्ता की एक मानसिक दशा होती है वह मस्तिष्क की एक अवस्था में होता है और जब वस्तुओं को देखता है तो वह उन्हें अपने मस्तिष्क की दशा के आधार पर देखता है। 'B' वह स्थिति है जब वह गतिविधियाँ करता है—काम करता है, हँसता है, क्रोध करता है। 'C' की अवस्था वह है जब वह अपनी गतिविधियों में अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है। इस चित्र में हम पायेंगे कि 'C' और 'B' देखें जा सकते हैं। जिन्हें हम परम्परा, धार्मिक संस्कार, कर्मकाण्ड, गीत-संगीत आदि कहते हैं वे ऐसी गतिविधियों हैं जो नंगी आँखों से देखी जा सकती है। आये दिन हम 'B' और 'C' को देखते हैं यानी कर्ता के कार्यों और मनोभावों की अभिव्यक्ति को इन्द्रियों द्वारा समझते हैं। माता-पिता बच्चों की देखभाल करते हैं, उन्हें शिक्षा-दीक्षा देते हैं। उनके परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के लिए व्रत-त्यौहार करते हैं, मनौती लेते हैं। ये सब गतिविधियों और मनोभावों की अभिव्यक्ति है यानी 'B' और 'C' है। इन्हें परेटो स्थूल रूप में देखा जाने वाला तथ्य (Concrete, observable data) कहते हैं। अतार्किक क्रिया का यह पहला पहलू है। दूसरा पहलू 'A' है। 'A' में क्या है यानी मानव के मस्तिष्क में क्या है इसे नंगी आँखों से या स्थूल रूप में नहीं देखा जा सकता। यह तो कहा जा सकता है कि 'B' और 'C' जुड़े हुए हैं। मनोभाव, भाषा आदि क्रिया से जुड़े हैं। लेकिन मस्तिष्क में क्या है इसका यदि कोई अनुमान लगाया जा सकता है तो वह मानसिक अवस्था से है। यह मानसिक अवस्था वही है जो 'C' और 'B' द्वारा पैदा की गयी है। देखा जाए तो मानसिक अवस्था, बाह्य क्रियाएँ और संवेग और मनोभाव ऐसे हैं जिन्हें देखा नहीं जा सकता। इस तरह 'A' 'B' और 'C' यानी मानसिक अवस्था, गतिविधियाँ और क्रियाकलाप और इनसे जुड़े हुए संवेग और मनोभाव अतार्किक क्रिया है। सूत्र रूप में इसे इस भाँति रखेंगे।

अतार्किक क्रिया = मानसिक अवस्था + क्रियाकलाप + संवेग और मनोभावों की अभिव्यक्ति।

त्रिभुज के ये तीनों कोण एक दूसरे पर निर्भर हैं। मानसिक अवस्था, क्रियाकलाप और मनोभावों की अभिव्यक्ति के बीच में कार्य-कारण ढूँढ़ना बहुत कठिन है। सच्चाई यह है कि ये तीनों एक दूसरे पर निर्भर हैं और अतार्किक क्रिया के सिद्धांत को बनाते हैं।

क्या आप जानते हैं अवशिष्ट और भ्रान्त तर्क: मानसिक अवस्था, मनोभावों की अभिव्यक्ति और क्रियाकलाप से जुड़ा हुआ।

27.3 सारांश (Summary)

- परेटो का मानना है कि मानवीय क्रियाएँ तर्कसंगत हो सकती है और अतर्कसंगत भी। तर्कसंगत क्रिया ही वास्तव में प्रामाणिक होती है। क्योंकि इस प्रकार की क्रियाएँ निरीक्षण और अनुभव के क्षेत्र के अंतर्गत होती है।
- परेटो का अतार्किक क्रिया से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं से हैं जो तार्किक नहीं है। दूसरे शब्दों में वह क्रिया जो तार्किक नही हैं, वह अतार्किक है।
- परेटो अतार्किक क्रिया का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करना चाहते थे। उन्होंने समाजशास्त्र को जब परिभाषित किया तब कहा कि वे तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लायेंगे।

नोट

27.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **तर्कसंगत क्रिया (Logical Action)** : वे क्रियाएँ जो तर्कपूर्ण रीति से साधन को लक्ष्य के साथ जोड़ती है।
2. **वस्तुनिष्ठ क्रिया (Objective actions)** : जब व्यक्ति तार्किक क्रिया करता है तब वह इस अवधारणा के अन्तर्गत अपना निर्णय लेता है।

27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परेटो के तर्कसंगत क्रिया का अर्थ बताएँ।
2. परेटो के अतर्कसंगत क्रिया की विवेचना करें तथा इनमें अंतर स्पष्ट करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अवधारणाओं 2. अवशिष्ट और भ्रान्त 3. अवधाणाओं।

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजी–टी.बी. बोटोमोर।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–28 : विशिष्ट चालक या अवशिष्ट (Residues)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

28.2 विशिष्ट चालक या अवशिष्ट (Residues)

28.3 सारांश (Summary)

28.4 शब्दकोश (Keywords)

28.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विशिष्ट चालक या अवशिष्ट की अवधारणा एवं विशेषताएँ समझना।
- सम्मिलन, स्थायित्व, अभिव्यक्ति, सामाजिकता एवं व्यक्तित्व के संगठन को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

आमतौर पर मानव व्यवहार के दो पक्ष होते हैं–स्थिर एवं अस्थिर या परिवर्तनशील पक्ष। स्थिर पक्ष को परेटो ने विशिष्ट चालक या अवशिष्ट कहा है।

28.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

परेटो ने समाजशास्त्र को मनोविज्ञान से जोड़ा है और यह उस युग की अकादमिक परम्परा थी। अतार्किक क्रिया मानसिक अवस्था से भी जुड़ी है। मनोभावों का सम्बन्ध क्रियाकलापों से है और ये सब तत्व अतार्किक क्रिया को बनाते हैं। इन तत्वों को इस तरह रखेंगे–

नोट

1. अवशिष्ट (Residues)
2. भ्रांत तर्क (Derivation)

(भ्रांत तर्क का उल्लेख इकाई 29 में किया गया है)

28.2 विशिष्ट चालक या अवशिष्ट (Residues)

अवशिष्ट को समझने के लिए थोड़ा सा हम तार्किक क्रिया की ओर लौटे। तार्किक क्रिया साध्य और साधन को इस तरह जोड़ती है कि साध्य प्राप्त हो जाता है। यह क्रिया अर्थशास्त्र या गणितशास्त्र की तरह है। लेकिन मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियाओं में केवल तार्किक क्रिया ही नहीं होती, इसलिए परेटो कहते हैं कि मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियाओं में से तार्किक क्रिया को निकाल दिया जाए तो जो बचेगा वह अवशिष्ट है। मोटे रूप में मनुष्य के विश्वास, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, संस्कृति आदि अवशिष्ट है। हम अपने अध्यापक को प्रणाम करते हैं। हमारी यह क्रिया इस विश्वास से बंधी है कि यदि हम अपने अध्यापक का आर्शीवाद पा लें तो हमें सुगम मार्ग मिलेगा। यह क्रिया अवशिष्ट क्रिया है। एम.एन. श्रीनिवास जातियों के परिवर्तन में जब संस्कृतिकरण की बात करते हैं तो संस्कृतिकरण के ये तत्व ही–मानक, मूल्य, विश्वास–अवशिष्ट क्रिया है।

परेटो ने अवशिष्ट क्रिया के छः वर्ग बनाये हैं। ये वर्ग अतार्किक क्रिया को सैद्धान्तिक स्वरूप देते हैं। इन वर्गों का हम बहुत थोड़े में विवरण देवें उससे पहले इनके महत्त्व को रखेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... को समझने के लिए थोड़ा सा हम तार्किक क्रिया की ओर लौटे।
2. मोटे रूप में मनुष्य के विश्वास, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, संस्कृति आदि .... है।
3. .... जातियों के परिवर्तन में जब संस्कृतिकरण की बात करते हैं तो संस्कृतिकरण के ये तत्व ही-मानक, मूल्य, विश्वास-अवशिष्ट क्रिया है।

अवशिष्ट क्रिया का महत्त्व (Importance of Residues)

1. अवशिष्ट क्रियाएँ मनुष्य के मनोभाव और संवेग को अभिव्यक्ति देती हैं। दशहरा और दीवाली वास्तव में हमारे मनोभावों की अभिव्यक्ति है। हम मन में सोचते हैं कि 14 वर्ष वन में रहने के बाद राम को पुनः अयोध्या का राज्य मिला। यह प्रसन्नता का विषय है। इस मनोभाव की अभिव्यक्ति हम दीवाली पर दीपक जलाकर करते हैं। होली पर होलिका दहन भी हमारी मनोभावना की अभिव्यक्ति है।

नोट्स हम जब अपने दुश्मन के सामने घूँसा तानकर बोलते हैं हमारे जो मनोभाव हैं उसकी यह अभिव्यक्ति मात्र है। इस भाँति अवशिष्ट क्रिया हमारे दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में स्पष्ट रूप से दिखायी देती है

2. अवशिष्ट समाज के साम्यानुकूलन को बनाये रखते हैं। यदि मनुष्य में मनोभाव, संवेग आदि न हो तो वह केवल लोहे के रोबोट की तरह यंत्रवत बन जायेगा। कहीं हम अपनी क्रियाओं को हँसकर करते हैं तो कहीं रोकर करते हैं तो कहीं मौन हो जाते हैं। सुख-दुख का उतार-चढ़ाव समाज के साम्यनुकूलन को बनाये रखता है।

नोट

3. अवशिष्ट समाज के लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। वे केवल इन व्यवहारों को नियंत्रित ही नहीं करते निर्धारित भी करते हैं।

टास्क विशिष्ट चालक या अवशिष्ट किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

अवशिष्ट के वर्ग (Classes of Residues)

परेटो ने अवशिष्ट यानी मनोभाव और संवेगों को छः वर्गों में रखा है–(1) सम्मिलन (Combination), (2) स्थायित्व (Persistence), (3) अभिव्यक्ति (Manifestation), (4) सामाजिकता (Sociability), (5) व्यक्तित्व का संगठन (Integrity of Personality), और (6) यौन (Sex)।

1. सम्मिलन (Combination): सम्मिलन में समान या विरोधी तत्वों को मिलाया जाता है। लेकिन इस तरह से मिलाना तार्किक नहीं होता। हम यह सम्मिलन मानसिक दशा के आधार पर करते हैं। उदाहरण के लिए हमने सुबह ही सुबह कोयल के संगीत को सुना तो हमने कहा कि यह वर्षा का मौसम है और पानी अवश्य गिरेगा। इसमें हमने कोयल और सुखद वर्षा दोनों का सम्मिलन कर दिया। या एक और दृष्टान्त है। बिल्ली हमारा रास्ता काट जाती है। हम सोचते हैं कि हमारा दिन आज बिगड़ गया। कोई काम नहीं होगा। यहाँ हमने बिल्ली के रास्ता काटने और बुरे दिन के अनुमान में सम्मिलन कर दिया। जादू में भी समान वस्तु समान परिणाम निकालती है। आटे की गुड़िया को पिन चुभाई जाए तो दुश्मन के शरीर में भी चुभन होगी, यह भी समान का समान से सम्मिलन है।

2. स्थायित्व (Persistence): ये वे प्रेरणाएँ हैं जो मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों को स्थायित्व प्रदान करती हैं। जिसे हम आदर का व्यक्ति समझते हैं उसे याद करने के लिए हम बराबर उसका जन्म दिवस मनाते हैं। यह स्थायित्व के मनोभाव को अभिव्यक्ति देना है। राजघाट पर गाँधीजी को पुष्प चढ़ाना गाँधी के प्रति जो आदर है उसे स्थायित्व देना है।

3. अभिव्यक्ति (Manifestation): अवशिष्ट के इस वर्ग में हम हमारी आन्तरिक भावनाओं को बाहरी क्रियाओं द्वारा व्यक्त करते हैं। शादी एक ऐसा अवसर है जो मनुष्य की अवशिष्ट भावनाओं को जन्म देता है। हम समझते हैं यह उत्तरदायित्व कम हुआ। इस मनोभाव की अभिव्यक्ति गाने-बजाने और खाने-पीने के माध्यम से होती है। मतलब यह है कि अवशिष्ट की अभिव्यक्ति हम हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के दौरान करते हैं।

4. सामाजिकता (Sociability): अवशिष्ट का यह वर्ग हमें समाजीकरण प्रदान करता है। इस वर्ग में व्यक्ति समाज की रीतियों को अपनाता है।

5. व्यक्तित्व का संगठन (Integrity of Personality): इस वर्ग के अन्तर्गत वे प्रेरणाएँ आती है जो व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों या लक्षणों को संगठित या संयोजित करती है। इसके अन्तर्गत हम उन प्रयत्नों का विरोध करते हैं जो सामाजिक या व्यक्तित्व सम्बन्धी संतुलन को नष्ट करने वाले होते हैं। उचित और अनुचित का ज्ञान हमें इसी वर्ग के अवशिष्ट से होता है। इसीलिए बहुधा हम अपने ऊपर तथा अपने समाज के ऊपर होने वाले अनैतिक या अनुचित आक्रमण का विरोध करते हैं।

6. यौन (Sex): इस वर्ग में वे तत्व आते हैं जो काम वासनाओं से जुड़े हैं। यौन से जुड़े हुए व्यवहार इतने जटिल होते हैं कि समाज इन पर नियंत्रण लाता है।

क्या आप जानते हैं अवशिष्ट तो अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, कभी भाषा के रूप में, कभी संकेतों में और कभी छेड़-छाड़ में। इस पर समाज नियंत्रण लाता है।

नोट

28.3 सारांश (Summary)

- विशिष्ट चालक या अवशिष्ट मानवीय व्यवहार को निर्धारित करने में ही नहीं बल्कि उसे नियंत्रित करने में भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।
- सम्मिलन में समान या विरोधी तत्वों को मिलाया जाता है। लेकिन इस तरह से मिलाना तार्किक नहीं होता।

28.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **विशिष्ट चालक या अवशिष्ट (Residues):** विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है।
2. **स्थायित्व (Persistence):** वे प्रेरणाएँ हैं जो मनुष्य के पारस्परिक संबंधों को स्थायित्व प्रदान करती हैं।

28.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'अवशिष्ट' से क्या तात्पर्य है? संक्षिप्त वर्णन करें।
2. परेटो ने अवशिष्ट को कितने वर्गों में बाँटा है। संक्षेप में वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अवशिष्ट   2. अवशिष्ट   3. एम.एन. श्रीनिवास।

28.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।
2. सामाजिक विचाराधारा–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–29 : भ्रांत तर्क का सिद्धांत (Theory of Derivatives)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 भ्रान्त तर्क (Derivations)

29.2 सारांश (Summary)

29.3 शब्दकोश (Keywords)

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भ्रांत तर्क के अर्थ को समझना एवं प्रकारों की व्याख्या।
- मनोभावों की अनुरूपता, प्राधिकार, दृढ़कथन तथा मौखिक प्रमाण की जानकारी प्राप्त होती है।

प्रस्तावना (Introduction)

आमतौर पर मानव व्यवहार के दो पक्ष होते हैं–स्थिर एवं अस्थिर या परिवर्तनशील पक्ष। परेटो ने परिवर्तनशील पक्ष को भ्रांत तर्क कहा है।

29.1 भ्रान्त तर्क (Derivations)

परेटो को हम यहाँ फिर दोहरायेंगे। समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि यह वह समाजविज्ञान है जो अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन करता है। इन क्रियाओं के अध्ययन के लिए वे तार्किक-प्रायोगिक विधि को काम में लाते हैं। वे क्रियाएँ जो तार्किक है उनका अध्ययन परेटो कहते हैं अर्थशास्त्र करता है। तार्किक क्रियाओं के क्षेत्र से बाहर जो भी व्यवहार है वह अतार्किक है और इसका अध्ययन और केवल इसी का अध्ययन समाजशास्त्र करता है। इससे आगे परेटो कहते हैं कि अतार्किक क्रिया अवशिष्ट और भ्रान्त तर्कों से बनती है। आगे चलकर परेटो

नोट

जब अभिजात वर्ग के परिभ्रमण का सिद्धांत रखते हैं तो इसकी व्याख्या भी वे अवशिष्ट और भ्रान्त तर्कों के माध्यम से करते हैं।

अब हम लौटते हैं भ्रान्त तर्क की व्याख्या पर। बोगार्डस ने भ्रान्त तर्क की व्याख्या करते हुए कहा है कि मनुष्य जैसा भी भावनात्मक या संवेगात्मक व्यवहार करता है और उसका औचित्य भ्रांत तर्क द्वारा स्थापित करता है। यह है कि वह अपनी क्रियाओं को करता है और इन क्रियाओं के प्रति समाज की कुछ अपेक्षाएँ होती हैं। जब समाज की अपेक्षाओं और व्यक्ति की क्रियाओं में अन्तर होता है तब व्यक्ति का यह प्रयास होता है कि वह अपनी क्रियाओं का औचित्य प्रस्तुत करे। यह औचित्य प्रस्तुत करना ही भ्रान्त तर्क है।

टास्क भ्रान्ति तर्क किसे कहते हैं? संक्षेप में वर्णन करें

एक दृष्टान्त है। व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति क्रूरता का व्यवहार करता है। मौका पड़ जाए तो मार-पीट भी करता है। समाज की यह अपेक्षा है कि वह अपनी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार न करे। इस अवस्था में वह तुलसीदास का हवाला देता है। इस महान कवि ने कहा था कि 'ढोल, गँवार, शुद्र और नारी' तो पीटने के ही पात्र हैं। यह अपनी क्रिया के लिए भ्रांत तर्क देना है। इधर दूसरी ओर एक पति अपनी पत्नी को पूरी शक्ति के साथ सराहना करता है वह जो कुछ चाहती है दौड़ कर देता है। आम भाषा में यह पति जोरु का गुलाम है। समाज की अपेक्षा है कि वह पत्नी के सामने अपने-आपको इतना नीचा नहीं गिराये। अधिक से अधिक समान दर्जे पर रखे। लेकिन वह कहता है जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहीं देवताओं का निवास होता है। इस तरह का कथन भ्रान्त तर्क है। भ्रान्त तर्क में व्यक्ति यह विश्वास करता है कि वह जो कुछ करता है यानी उसके मनोभाव, संवेग आदि सब तर्क संगत है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि यह वह समाजविज्ञान है जो ········· क्रियाओं का अध्ययन करता है।
2. क्रियाओं के अध्ययन के लिए वे ········· विधि को काम में लाते हैं।
3. परेटो कहते हैं कि ········· क्रिया अवशिष्ट और भ्रांत तर्कों से बनती है।

जैसाकि परेटो के सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया है अवशिष्टों की तरह वे भ्रान्त तर्क के भी वर्ग बताते हैं। इस तर्क के चार वर्ग हैं–

1. दृढ़कथन (Assertions)
2. प्राधिकार (Authority)
3. मनोभावों की अनुरूपता (Accord with Sentiments)
4. मौखिक प्रमाण (Verbal Proof)

1. दृढ़कथन (Assertions): अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति दृढ़कथन का सहारा लेता है। वह यह दावा करता है कि जो कुछ उसने किया है वह सही है। जब वह अपने दृढ़कथन को रखता है तो इसमें बल की धमकी भी देता है। अपने कथन को ऊँची आवाज में रखता है। मुट्ठियाँ बाँधता है और पूरी शक्ति के साथ अपने अवशिष्ट को सही बताता है।

2. प्राधिकार (Authority): जब दृढ़कथन को लोग तार्किक रूप से स्वीकार कर लेते हैं तब यह प्राधिकार बन जाता है। एक बार समाज ने मान लिया कि पुरुष को अपनी स्त्री को पिटने का अधिकार है तब यह अधिकार प्राधिकार बन जाता है। इसमें यह होता है कि जिस क्षेत्र में एक व्यक्ति प्राधिकार को काम में लेता है दूसरे क्षेत्रों में भी उसका प्राधिकार स्थापित हो जाता है। उदाहरण के लिए शिक्षा मंत्री परिवार नियोजन में भी प्राधिकार वाला व्यक्ति समझा जाने लगता है।

3. मनोभावों की अनुरूपता (Accord with Sentiments): ये वे भ्रान्त तर्क है जो किसी कार्य के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए व्यक्ति प्रस्तुत करता है। इस तरह के तर्क कुछ भावनाओं पर आधारित होते हैं और उन्हीं भावनाओं पर कार्य को उचित मान लिया जाता है।

4. मौखिक प्रमाण (Verbal Proof): इस तरह का व्यवहार जिसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता मौखिक कथन पर स्वीकार कर लिया जाता है। इसमें मिथ्या तर्क, कुतर्क और द्विअर्थक बातें आती हैं जो वास्तविक तथ्यों के अनुरूप नहीं होती लेकिन इनका प्रयोग आचरण के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया जाता है।

परेटो ने ट्रिटाइज में अवशिष्टों और भ्रान्त तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। जब वे भ्रान्त तर्क की व्याख्या करते हैं तब यह भी स्वीकार करते हैं कि इस तरह के तर्क सत्य नहीं होते। ये तर्क केवल समाज को भ्रमित करते हैं। इस कमजोरी के होते हुए भी भ्रान्त तर्क की सामाजिक अन्तःक्रियाओं में अवहेलना नहीं की जा सकती। दुनिया भर में और विशेषकर हमारे देश में जो महिला मुक्ति आंदोलन चल रहे हैं उनकी बहुत बड़ी लड़ाई इन भ्रान्त तर्कों के विवाद में ही है। पति के मरने पर स्त्री विधवा हो जाती है और पत्नी के मरने पर पुरुष दूसरा विवाह कर लेता है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था भ्रान्त तर्क पर निर्भर है। किसी भी समाज में पुरुष और स्त्री की यह गैर बराबरी नहीं चल सकती। फिर भी यह चल रही है। पुराणों, उपनिषदों और ब्राह्मणों में ऐसे कई दृष्टान्त मिल जाएँगे जो वैधव्य को महिमामण्डित करते हैं और इसी कारण विधवाएँ कलपति रहती है। यह भ्रान्त तर्क का करिश्मा है।

क्या आप जानते हैं परेटो ने समाजशास्त्र की व्याख्या ट्रिटाइज में की है। यहीं पर उन्होंने इसकी विधि को भी बताया है और वे समाजशास्त्रीय सिद्धांत निर्माण की चर्चा भी यहीं पर करते हैं।

उन्होंने सम्पूर्ण समाजशास्त्र को कुछ महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं में बाँध दिया है। परेटो के सिद्धांतों को समझने के लिए उनकी समाजशास्त्र की व्याख्या को समझना अनिवार्य है। इस समाजशास्त्र की कुछ कुंजी अवधारणाएँ हैं: अतार्किक क्रिया, तार्किक क्रिया; वस्तुनिष्ठा, व्यक्तिनिष्ठा; अवशिष्ट और भ्रान्त तर्क। ये सब अवधारणाएँ परेटो के सिद्धांतों को समझने में भी सहायक है।

नोट्स मनुष्य का जो भी अतार्किक व्यवहार है वह अवशिष्टों और तर्क धारणा से बना हुआ है। और यह व्यवहार ही समाजशास्त्र की विषय-वस्तु है।

29.2 सारांश (Summary)

- परेटो का मानना है कि अनेक भ्रांत तर्क ऐसे भी होते हैं जो सामाजिक व्यवस्था में एकता बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध होते हैं।

नोट

- बोगार्डस ने भ्रान्त तर्क की व्याख्या करते हुए कहा है कि मनुष्य जैसा भी भावनात्मक या संवेगात्मक व्यवहार करता है उसका औचित्य भ्रान्त तर्क द्वारा स्थापित करता है।
- परेटो ने ट्रिटाइज में अवशिष्टों और भ्रान्त तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। जब वे भ्रान्त तर्क की व्याख्या करते हैं तब यह भी स्वीकार करते हैं कि इस तरह के तर्क सत्य नहीं होते।

29.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्राधिकार (Authority):** दृढ़कथन को लोग तार्किक रूप से स्वीकार कर लेते हैं तब वह प्राधिकार बन जाता है।
2. **दृढ़कथन (Assertions):** अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति दृढ़कथन का सहारा लेता है।

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'दृढ़कथन' से क्या तात्पर्य है? संक्षिप्त वर्णन करें।
2. परेटो के भ्रांत तर्क के अवधारणा की विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अतार्किक 2. तार्किक-प्रयोगिक 3. अतार्किक।

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट–जे.एच. टर्नर।
2. सोशियोलॉजिकल थ्योरी–अब्राहम एवं मार्गन।

नोट

इकाई–30: सामाजिक परिवर्तन का सिद्धान्त–अभिजनों के प्रकार, उनका वर्गीकरण, अभिजनों का परिभ्रमण

(Theory of Social Changes–Types of Elite, Classification, Circulation of Elite)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

30.2 सारांश (Summary)

30.3 शब्दकोश (Keywords)

30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परेटो के सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांत की जानकारी।
- अभिजात वर्ग के परिभ्रमण की अवधारणा।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक काल एवं समाज में सामान्यता दो प्रमुख वर्ग–उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग–देखे जाते हैं। उच्च वर्ग के हाथों में शक्ति एवं सत्ता होती है और वे प्राय: समाज के शासक होते हैं।

30.1 विषय-वस्तु (Subject Matter)

परेटो के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना में ऊँच-नीच का संस्तरण होता है, वह मोटे तौर पर दो वर्गों द्वारा होता है-उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग। इनमें कोई भी स्थिर नहीं होता, अपितु इनमें 'चक्रीय गति' पाई जाती है। चक्रीय गति

नोट

इस अर्थ में समाज के इन दो वर्गों में निरन्तर ऊपर से नीचे या अधोगामी और नीचे से ऊपर या ऊर्ध्वगामी प्रवाह होता रहता है। और भी स्पष्ट रूप से चक्रीय गति को इस प्रकार समझाया जा सकता है कि जो वर्ग सामाजिक संरचना में ऊपरी भाग में होते हैं। वह कालान्तर में भ्रष्ट हो जाने के कारण अपने पद और प्रतिष्ठा से गिर जाते हैं, अर्थात् अभिजात-वर्ग अपने गुणों को खोकर या असफल होकर निम्न वर्ग में आ जाते हैं। दूसरी ओर, उन खाली जगहों को भरने के लिए निम्न वर्ग में जो बुद्धिमान, कुशल, चरित्रवान तथा योग्य होते हैं, वे नीचे से ऊपर की ओर जाते रहते हैं। इस प्रकार उच्च वर्ग का निम्न वर्ग में आने या उसका विनाश होने और निम्न वर्ग का उच्च वर्ग में जाने की प्रक्रिया चक्रीय ढंग से चलती रहती है। इसी चक्रीय गाति के कारण सामाजिक ढाँचा परिवर्तित हो जाता है या सामाजिक परिवर्तन होता है। इसलिए इसे 'चक्रीय गति का सिद्धान्त' या 'सामाजिक परिवर्तन का चक्रीय सिद्धांत कहा जाता है।

नोट्स स्मरण रहे कि यह चक्रीय गति या सामाजिक परिवर्तन की गति परिस्थितियों के अनुसार कभी कम और कभी अधिक होती है। भिन्न-भिन्न समय में सामाजिक परिवर्तन की गति भी भिन्न-भिन्न होती है।

अपने इस 'सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय सिद्धान्त' को परेटो ने दो श्रेणी के विशिष्ट-चालकों-(अ) सम्मिलन के विशिष्ट-चालक तथा (ब) समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक के आधार पर समझाया है। ऐसे कुछ व्यक्ति तथा समूह होते हैं जिनमें कि स्थायित्व के विशिष्ट-चालक की अधिकता पाई जाती है, तो कुछ में सम्मिलन के विशिष्ट चालक का आधिक्य होता है। सामाजिक परिवर्तन इन्हीं दो श्रेणी के विशिष्ट चालक वाले वर्गों की क्रियाशीलता का परिणाम होता है। प्रथम वर्ग, जिसमें कि सम्मिलन के विशिष्ट-चालक का प्रभुत्व होता है, तात्कालिक स्वार्थों पर बल देता है, जबकि दूसरा, वर्ग जिसमें कि समूह के स्थायित्व का विशिष्ट-चालक अधिक क्रियाशील होता है, आदर्शवादी लक्ष्यों में विश्वास करता है, इन दो प्रकार के विशिष्ट-चालकों की क्रियाओं से किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन सम्भव होता है, यह निम्न विवेचना से स्पष्ट हो जाएगा।

सामाजिक परिवर्तन के चक्र के **तीन** मुख्य पक्ष हैं-राजनीतिक, आर्थिक तथा आदर्शात्मक। राजनीतिक क्षेत्र में चक्रीय परिवर्तन तब गतिशील होता है जब शासनसत्ता उस वर्ग के लोगों के हाथों में आ जाती हैं जिनमें समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक अधिक शक्तिशाली होते हैं। इन्हें 'शेर' कहा जाता है। समूह के स्थायित्व के विशिष्ट-चालक द्वारा अत्याधिक प्रभावित होने के कारण इन 'शेर' लोगों का कुछ आदर्शवादी लक्ष्यों पर दृढ़ विश्वास होता है और इन आदर्शों की प्राप्ति के लिय ये शक्ति का भी सहारा लेने में नहीं झिझकते। शक्ति प्रयोग की प्रतिक्रिया भयंकर हो सकती है, इसलिए यह तरीका असुविधाजनक होता है। इस कारण वे कूटनीति का सहारा लेते हैं और 'शेर' से अपने को 'लोमड़ियों' में बदल लेते हैं और लोमड़ी की भाँति चालाकी से काम लेते हैं। लेकिन निम्न वर्ग में भी लोमड़ियाँ होती हैं और वे भी सत्ता को अपने हाथ में लेने की फिराक में रहती हैं अन्त में, एक समय ऐसा भी आता जबकि वास्तव में उच्च वर्ग की लोमड़ियों के हाथ से सत्ता निकलकर निम्न वर्ग की लोमड़ियों के हाथ में आ जाती हैं। तभी राजनीतिक क्षेत्र में या राजनीतिक संगठन और व्यवस्था में परिवर्तन होता है। परेटो का कथन है कि प्रत्येक भूतकालीन तथा वर्तमान समाज तर्क की अपेक्षा शक्ति का प्रयोग अधिक करता है, समस्त देश शक्ति प्रयोग करने वाले 'अल्पजनतन्त्रों' से शासित है। जब शासक-वर्ग के लोगों में शक्ति के प्रयोग के भयंकर परिणामों को सोचकर शक्ति के स्थान पर कूटनीति या लोमड़ियों की भाँति चालाकी और धूर्तता से काम लेने लगते हैं तो निम्न वर्ग या शासित वर्ग के कुछ चालाक, धूर्त और कुशल व्यक्ति उस चालाकी और धूर्तता का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए तत्पर

नोट

होते हैं और देते भी हैं जिसके फलस्वरूप सरकार की बागडोर उन्हीं के हाथों में चली जाती है। सामाजिक व्यवस्था के राजनीतिक पक्ष में परिवर्तन इसी प्रकार होता है।

जहाँ तक **आर्थिक क्षेत्र** या आर्थिक संगठन और व्यवस्था में परिवर्तन का प्रश्न है, **परेटो** हमारा ध्यान समाज के दो आर्थिक वर्गों की ओर आकर्षित करते हैं। वे दो वर्ग हैं–(1) सट्टेबाज और (2) निश्चित आय वाला वर्ग। पहले वर्ग के सदस्यों की आय बिल्कुल अनिश्चित होती है, कभी कम तो कभी ज्यादा; पर जो कुछ भी इस वर्ग के लोग कमाते हैं वह अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर ही कमाते हैं। इसके विपरीत, दूसरे वर्ग की आय निश्चित या लगभग निश्चित होती है क्योंकि वह सट्टेबाजों की भाँति अनुमान पर निर्भर नहीं है। सट्टेबाजों के सम्मिलन के विशिष्ट–चालक की प्रधानता तथा निश्चित आय वाले वर्ग में समूह के स्थायित्व के विशिष्ट–चालक की प्रमुखता पाई जाती है। इसी कारण पहले वर्ग के लोग आविष्कर्त्ता, उद्योग के नेता या कुशल व्यवसायी आदि होते हैं। यह वर्ग अपने आर्थिक हित या अन्य प्रकार की शक्ति के मोह से चालाकी और भ्रष्टाचार का स्वयं शिकार हो जाता है। जिसके कारण उसका पतन होता है और दूसरा वर्ग उसका स्थान ले लेता है। समाज की समृद्धि या विकास इसी बात पर निर्भर है कि सम्मिलन का विशिष्ट–चालक वाला वर्ग नए–नए सम्मिलन और आविष्कार के द्वारा राष्ट्र को नवप्रवर्तन की ओर ले जाए और समूह के स्थायित्व के विशिष्ट–चालक वाला वर्ग उन नए सम्मिलनों से मिल सकने वाले समस्त लाभों को प्राप्त करने में सहायक है। आर्थिक प्रगति या परिवर्तन का रहस्य इसी में छिपा हुआ है।

उसी प्रकार आदर्शात्मक क्षेत्र में अविश्वास और विश्वास का चक्र चलता रहता है। किसी एक समय–विशेष में समाज में विश्वासवादियों का प्रभुत्व रहता है परन्तु वे अपनी दृढ़ता या रूढ़िवादिता के कारण अपने पतन का साधन अपने–आप ही जुटा लेते हैं और उनका स्थान दूसरे वर्ग के लोग लेते हैं।

उपर्युक्त ढंग से राजनीतिक, आर्थिक तथा आदर्शात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन होता रहता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. राजनीतिक क्षेत्र में चक्रीय परिवर्तन तब गतिशील होता है जब ········ उस वर्ग के लोगों के हाथ में आ जाती है।
2. इस कारण से ········ का सहारा लेते हैं और शेर से अपने को लोमड़ी में बदल लेते हैं और लोमड़ी की भाँति चालाकी से काम लेते हैं।
3. एक समय ऐसा भी आता जबकि वास्तव में उच्च वर्ग के लोमड़ियों के हाथ से ········ निकलकर निम्न वर्ग के लोमड़ियों के हाथ आ जाती है।

अभिजन का चक्रीय सिद्धान्त (Theory of Circulation of Elites)

समाज में गैर बराबरी रहती है। कोई लम्बा है तो कोई ठिगना; कोई गोरा है तो कोई सांवला; कोई अमीर है तो कोई गरीब; कोई प्रखर बुद्धि है तो कोई मंद बुद्धि। मतलब है, शारीरिक, भौतिक, बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से प्रत्येक समाज में गैर बराबरी होती है। यह संभव है कि किसी समाज में गैर बराबरी बहुत तीव्र होती है, और किसी में न्यून। लेकिन गैर बराबरी का आलम तो रहता ही है।

परेटो ने अभिजन के चक्रीय सिद्धान्त को रखा है। लेकिन यह उनका केवल कोई एक सिद्धान्त हो ऐसा नहीं है। उनके सिद्धान्तों में कुछ और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त भी है। उदाहरण के लिये उन्होंने *सामुदायिक उपयोगिता* (Community Utility), फासीवाद आदि के कतिपय सिद्धान्त भी रखे हैं। इन सिद्धान्तों में अभिजन का चक्रीय सिद्धान्त बहुत

नोट

चर्चित रहा है। रेमण्ड एरॉ, बोगार्डस, लेविस कोज़र आदि ने इस चक्रीय सिद्धान्त की बहुत अधिक बड़ी व्याख्या की है। इसका एक बहुत बड़ा कारण है। परेटो बुनियादी रूप से मुसोलिनी, मेकियावेली के विचारधारा से प्रभावित थे। मुख्य रूप से वे फासीवादी थे। यदि उनके सिद्धान्तों को एक गठरी में बाँध दिया जाय और इसकी शिनाख्त के लिये यदि किसी *टेग* को लगाने की आवश्यकता हो तो इस *टेग* पर लिखा जाना चाहिये: *फासीवाद*।

नोट्स अभिजन के चक्रीय सिद्धान्त के पीछे परेटो की जो मूल भावना है वह यह कि समाज को चलाने का काम अभिजन का है।

परेटो के अनुसार, समाज अभिजन द्वारा ही संचालित होता है। हर युग और हर देश में समाज का सूत्रधार अभिजन ही रहा है। उसकी अंगुलियों की गति समाज को नचाती है। लोग तो बस अभिजन के संकेत पर सांस लेते हैं, सांस छोड़ते हैं। समाज की इस बुनियादी धारणा या समझ के बाद परेटो चक्रीय सिद्धान्त रखते हैं।

अभिजन की परिभाषा

परेटो ने अभिजन को परिभाषित किया है। वे व्यक्ति जो समाज के किसी एक निश्चित क्षेत्र में श्रेष्ठ होते हैं, अभिजन कहलाते हैं। समाज के विशिष्ट क्षेत्र हैं–साहित्य, कला व्यवसाय, धर्म आदि। इन क्षेत्रों मे कई व्यक्ति अभिजन होते हैं और लोगों की तुलना में अभिजन अधिक विशेष होते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद और भगवती चरण वर्मा अभिजन है। कुछ इसी तरह फिल्मी जगत में अभिताभ बच्चन और माधुरी दीक्षित अभिजन हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में अम्बानी, बिड़ला, गोदरेज आदि अभिजन हैं। समाज के विभिन्न क्षेत्रों मे यदि अभिजन की तालिका बनायी जाय तो उसका आकार थोड़ा बड़ा ही होगा। कुछ अभिजन को विवादास्पद भी समझा जा सकता है। अभिजन हर क्षेत्र में हैं लेकिन परेटो ने केवल प्रशासनिक अभिजन का उल्लेख किया है। जब वे अभिजन के चक्रीय सिद्धान्त की बात करते हैं तब उनका तात्पर्य हुकुमत करने वाले या शासन करने वाले अभिजनों से है। उनका आग्रह है कि समाज पर शासन तो अभिजन ही करते हैं लेकिन अभिजन का वर्ग बन्द वर्ग नहीं हैं। जो आज शासन करने वाले हैं, कल उन्हें धकेल दिया जाएगा और उनका स्थान नये अभिजन ले लेंगे। समाज मे अभिजन का यह चक्र चलता ही रहता है।

अभिजन के प्रकार (Types of Elites)

अभिजन की श्रेणी में वे लोग आते हैं *जिनमें आम लोगों की तुलना में अधिक बौद्धिकता होती है, कुशलता होती है और किसी काम को करने की क्षमता होती है।* काम तो सभी करते हैं लेकिन अभिजन का काम दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ होता है। परेटो अपने सिद्धान्त में मिचेल्स से प्रभावित थे। मिचेल्स मूल में जर्मन थे लेकिन स्थायी रूप से इटली में बस गये थे। उन्होंने अपने सिद्धान्त को *दि रुलिंग क्लास* (The Ruling Class) में रखा है। *उनका सिद्धान्त है कि बड़ी उम्र के नेता धीरे-धीरे बदनाम होते जाते हैं, उनकी शाख गिरने लगती है और वे नये खून के लिये अपना स्थान छोड़ना प्रारम्भ करते हैं। इस तरह के परिवर्तन से समाज की व्यवस्था बनी रहती है।*

मिचेल्स की तर्ज पर परेटो ने सम्पूर्ण अभिजन में दो वर्ग पाये हैं: (1) प्रशासनिक वर्ग (Ruling elite) और (2) गैर प्रशासनिक वर्ग (Non-Ruling Class)। इन दो वर्गों में चक्र की तरह पुराने लोग जाते हैं और नये अभिजन आते हैं। इस भाँति अभिजन के चक्रीय सिद्धान्त का मूल यह है कि प्रशासनिक अभिजन कमज़ोर हो जाते हैं या उन्हें कमज़ोर कर दिया जाता है और उनका स्थान नये अभिजन ले लेते हैं। यही चक्र है। इसे कई बार अभिजन का *परिभ्रमण* (Circulation) भी कहते हैं।

अभिजन के इन दो वर्गों में दो तरह के अभिजन होते हैं। एक अभिजन को परेटो लोमड़ी (Fox) कहते हैं। लोमड़ी से उनका तात्पर्य उन अभिजनों से हैं जो *चालाक, धूर्त, छलिया और कपटी होते हैं।* जब परेटो *फोक्स* (Fox)पद का प्रयोग करते हैं तब उनका तात्पर्य ऐसे लोगों से हैं जो चालक और धूर्त हैं। संस्कृत साहित्य में हितोपदश की कहानियाँ वस्तुत: जानवरों से जुड़ी कहानियाँ हैं। इन जानवरों में लोमड़ी सबसे अधिक चालक और धूर्त समझी जाती है। हितोपदेश की एक कहानी में जब ब्राह्मण पिंजरे में बन्द शेर को मुक्त कर देता है तो वही ब्राह्मण को खा जाने के लिये उतावला हो जाता है। यहाँ लोमड़ी को निर्णायक बनाया जाता है। और लोमड़ी की चतुराई देखिये कि वह शेर को पुन: पिंजरे में बंद देखना चाहती है। जिससे उसे विश्वास हो सके कि इतना भारी भरकम शेर पिंजरे में समा सकता है। उसकी सलाह पर शेर पिंजरे में प्रवेश करता है और लोमड़ी उसका द्वार बन्द कर देती है। लोमड़ी चतुर है, चालाक है।

ऐसे अभिजन जो लोमड़ी की तरह सत्ता के लिये उखाड़-पछाड़ करते हैं वे सत्ता भोगने वाले अभिजन को धकेल देते हैं। वे अभिजन जो सभा में हैं यानी जिनके पास शक्ति है उन्हें परेटो नाहर (Lion) कहते हैं। नाहर की एक खासियत है। वे जो कुछ सत्ता उन्हें मिली है उस पर कुण्डली डालकर बैठ जाते हैं। सत्ता के सिंहासन पर बैठे हुए ये अभिजन वास्तव में *नर-नाहर* होते हैं। और वे अपनी पूरी ताकत को लगाकर अपनी सभा को बनाये रखते हैं। परेटो की सैद्धान्तिक योजना में लोमड़ी और नाहर दोनों ही अभिजन हैं। दोनों ही सत्ता को ललचाई आँख से देखते हैं। अभी नर-नाहर सत्ता में है और थोड़े समय बाद लोमड़ी यानी चालाक और धूर्त अभिजन उन्हें सभा से धकेल देते हैं। परेटो का यही चक्रीय सिद्धान्त है। यही अभिजन का परिभ्रमण है। अभिजन की नियति एक ही है। नर-नाहर हो या लोमड़ी दोनों को एक दूसरे के लिये सिंहासन छोड़ना पड़ेगा। इस चक्रीय सिद्धान्त का मूल यह है कि समाज पर हुकूमत तो अभिजन की ही होगी। चाहे ये अभिजन आज के नर-नाहर हों या कल की लोमड़ी।

टास्क अभिजन के कितने प्रकार हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

आलोचना (Criticism)

अभिजन वर्ग के चक्रीय सिद्धान्त की कई समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है। इस सिद्धान्त पर की गयी टिप्पणियाँ निम्न बिन्दुओं में रखते हैं;

(1) समाज मे साम्यानुकूलन बराबर बना रहता है। उस पर हुकूमत करने वाला कोई न कोई अभिजन समूह ही होगा। आज का अभिजन वर्ग पदच्युत हो जायगा तो कल नया अभिजन आयगा।

क्या आप जानते हैं परेटो का अभिजन का सिद्धान्त इस अर्थ में एकांगी है कि यह इस बात को स्वीकार नहीं करता कि जनता के कुछ वर्ग भी जो खाली हाथ और फटी जेब हैं बहुमत के आधार पर सत्ता में आ सकते हैं।

(2) अभिजन का यह सिद्धान्त अवशिष्टों पर निर्भर है। अभिजन लोगों के मनोभावों और संवेगों को सहलाते हैं और सभा में आ जाते हैं। भ्रान्त तर्क द्वारा बताते हैं कि वे आसमान के स्वर्ग को धरती पर ले आयेंगे। अवशिष्टों और भ्रान्त तर्कों पर आधारित यह सिद्धान्त पूरी तरह से संस्कृति की अवहेलना करता है। देखा जाए तो परेटो की सिद्धान्त निर्माण योजना में संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं है।

नोट

30.2 सारांश (Summary)

- परेटो ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया कि समाज का विशिष्ट उच्च वर्ग अभिजन या अभिजात वर्ग है किंतु यह वर्ग स्थायी नहीं होता और इसके आने जाने का क्रम चलता रहता है।
- परेटो ने अभिजन को परिभाषित किया है। वे व्यक्ति जो समाज के किसी एक निश्चित क्षेत्र में श्रेष्ठ होते हैं, अभिजन कहलाते हैं।
- अभिजन की श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनमें आम लोगों की तुलना में अधिक बौद्धिकता होती है, कुशलता होती है और किसी काम को करने की क्षमता होती है।

30.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अभिजन-परिभ्रमण (Circulation of Elite):** उच्च वर्ग के शेर (Lion) एवं लोमड़ी (Fox) के बीच सत्ता का बार-बार हस्तांतरण।

30.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अभिजात वर्ग के परिभ्रमण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. अभिजन का चक्रीय सिद्धांत क्या है?
3. मिचेल्स की तर्ज पर परेटो ने सम्पूर्ण अभिजन में कौन-से दो वर्ग पाये हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. शासनसत्ता 2. कूटनीति 3. सत्ता।

30.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोशियोलॉजिकल थ्योरी—अब्राहम एवं मॉर्गन।
2. स्ट्रक्चर ऑफ सोशियोलॉजिकल थॉट—जे. एच. टर्नर।
3. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त—दोषी एवं जैन।
4. सामाजिक विचारधारा—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in